जिन-भक्ति सिंधु

ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्'

श्री वर्द्धमान न्यास (पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)
अमायन, भिण्ड (म.प्र.) - 477227
मो. 9826225580

जिन-भक्ति सिंधु

ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्'

प्रथम नवीन संस्करण : 3,000 प्रतियाँ
(श्री कुन्दकुन्द नगर, सोनागिर सिद्धक्षेत्र में दशलक्षण पर्व पर आध्यात्मिक संगोष्ठी दिनांक : 31 अगस्त से 9 सितम्बर 2022 के अवसर पर प्रकाशित)

सहयोगी :

1. स्व. पं. अरविन्द कुमार जैन की स्मृति में
   ध.प. श्रीमती करूणा जैन, करहल (उ.प्र.)
2. शाह निर्मला बेन महेन्द्र भाई, अहमदाबाद (गुज.)
3. श्रीमती मनीषा बेन विंदेश भाई शाह, अहमदाबाद (गुज.)
4. श्रीमती भावना सचिन शाह, मुम्बई (महा.)
5. श्री दि. जैन स्वाध्याय ग्रुप तिलक नगर, इन्दौर (म.प्र.)
6. श्रीमती सारिका जैन बांकल, जबलपुर (म.प्र.)
7. श्री अरुण जैन, दिल्ली
8. श्री विराग जैन, कोटा (राज.)
9. श्री पंकज कुमार जी, सूजल, सक्षम जैन, भोपाल (म.प्र.)
10. श्रीमती वीणा जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, जलगांव (महा.)

प्रकाशक :
श्री वर्द्धमान न्यास
(पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)
अमायन, भिण्ड (म.प्र.)-477227
मो. : 09826225580

न्योछावर : 50/- रुपये

Jin-Bhakti Sindhu
by Br. Ravindraji "Aatman"
Price : 50.00

प्रकाशकीय

भेदज्ञान पूर्वक सतत् बहुमान रहना ही अंतरंग भक्ति है। भेदज्ञान के बिना सच्ची भक्ति नहीं होती। भक्ति में दीनता नहीं है, भक्ति में याचना नहीं है, भक्ति में कषाय (लौकिक प्रयोजन) नहीं है। परमार्थ भक्ति वीतराग रूप है, व्यवहार भक्ति शुभभाव रूप है। गुणों में अनुराग ही भक्ति है। आचार्य समन्तभद्र ने कहा है–

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दर रूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपो निधिषु।।

जो जिनरूप को निहारते हैं, उन्हें सुन्दर रूप मिलता है, जो जिन वचनों को सुनते हैं, उनके वचनों को सुनने के लिए तरसते हैं, उनके वचन श्रवण भी भक्ति है।

अन्तर–बाहर से जिन–भक्ति में दत्त चित्त, वीतरागी पथ के निरपेक्ष पथिक श्रद्धेय **आदरणीय ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्'**– जैसे परिपूर्ण जल से भरा घट बाहर स्वतः छलकने लगता है, ऐसे ही इन पदों का सृजन, शब्दों ने कब लेखनी का रूप ले लिया, लिखने के लिए कुछ भी नहीं लिखा गया।

सागर में से गागर भरने जैसा आपके पद्य भजनों के विविध प्रसंगों पर समुद्र मंथन के मोती जिन्हें **भक्ति–भावना, जिनवर–स्तवन, स्वरूप–स्मरण एवं जिन–भक्ति सिन्धु** में पिरोने का प्रयास किया है। संकलन में कुछ भक्ति अज्ञात हैं, भाव पक्ष मजबूत होने से उनको पृथक करना संभव नहीं हो सका। आज भी कुछ मोती बिखरे पड़े हैं, भविष्य में एकत्रित करने का प्रयास करूँगा।

इन पदों के माध्यम से हम और आप भक्ति के यथार्थ स्वरूप को समझें। अपनी परिणति परमार्थ भक्ति में तल्लीन हो तभी गुरुजनों के प्रति हमारी सच्ची भक्ति होगी।

सभी सहयोगियों के हृदय से आभारी हैं। ये पद्य निज पद का भान करायें, ऐसी भावना के साथ...

अखिल जैन
मंत्री, श्री वर्द्धमान न्यास अमायन (भिण्ड) म.प्र.

गुरु चरणों में समर्पित...

इस कलम के शब्द,
आपके नाम करता हूँ।
मैं आपको नमन,
बारम्बार करता हूँ।।
प्रतिकूलताओं में जब
बीता समय, याद करता हूँ।
आपको रुलाये सारे आँसू,
घूँट-घूँट पीता हूँ।।
अनसुनी कर आपको,
न जाने कितना सताया होगा।
शूल चुभोकर,
आपका हृदय दुखाया होगा।।
जब कोई तीर,
मेरे कटु शब्दों का छूटा होगा।
न जाने आपके मन का,
कौन सा कोना टूटा होगा।।
मैं सताता रहा,
आप सहते रहे।
मैं रुलाता रहा,
आप दुलारते गये।।
दीप शिखा बन,
स्वयं जलते रहे।
उसी रोशनी में,
हम पलते रहे।।
गुरु शब्द की गहराई,
मुझे अब समझ आई।
नाम स्मरण करते,
मेरी आँख भर आई।।
इस विचार ने मुझे सिखा दिया
कि-अवज्ञा क्या होती है?
चोट अंग को लगे,
तो आँख क्यों रोती है?
एक ही पल में,
मैं जी गया सारे अहसास।
उसी पल बन गए,
आप मेरे लिए।
सबसे खास।।

आपका...

विषय-सूची

क्र.	भक्ति	पृ. संख्या
	1. श्री जिनवर-भक्ति	
1.	जागो-जागो, आलस त्यागो	15
2.	आओ-आओ रे सभी मिल आओ	15
3.	आओ-आओ हो जिनालय आओ	16
4.	जिनमंदिर है जग में अशरण-शरण	17
5.	जिनमंदिर है हमको मंगल शरण	18
6.	जिनमंदिर में आओ-आओ	18
7.	आओ-आओ मिलकर आओ	19
8.	मंगल अवसर आज	19
9.	जिनमंदिर में धर्म महोत्सव	20
10.	जिनमंदिर आते सुखकारी है	21
11.	जिनमंदिर में आओ रे आओ	22
12.	मंगल अवसर आज	23
13.	जिनमंदिर में धर्म महोत्सव	23
14.	पूजें अकृत्रिम जिनमंदिर	24
15.	पंच प्रभु की भक्ति करें हम	24
16.	भक्ति श्री जिनराज की	25
17.	अर्हन् जिनेन्द्र भगवान	26
18.	अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय	27
19.	पंच-परमेष्ठी प्रभु सार	28
20.	मंगलमय मंगलकरण अहो !	28
21.	पंच परम पद मंगलकारी	29
22.	मंगलमय निजरूप महान	29
23.	हमारे प्रभु परमेष्ठी अविकार	30
24.	जैसो समकित महा सुख दान	30
25.	जय-जय जिनदेव शास्त्र सुगुरु	31
26.	अहो! जिनराज मेरे ज्ञान में	32
27.	देव दर्शन हुए मुझको	33
28.	प्रभुवर ये ही भावना	34
29.	तीन लोक के स्वामी	35
30.	अहो! जिनेश्वर, हे परमेश्वर!	35
31.	प्रभु आप सा कोई दाता नहीं है	36
32.	धन्य प्रभो दर्शन कर मैं	37
33.	शोभे प्रभु, स्वरूप अविकार	37
34.	सुनलो प्रभु अरज हमारी	38
35.	नाथ तेरी पूजा को मैं आऊँ	38
36.	मेरी परिणति में आनंद अपार	39
37.	प्रभु को देखे भक्ति उल्लसे	39
38.	ना जाने कितना सुख प्रभु को	41
39.	नाथ मोहि ऐसी शक्ति हो	41
40.	धन्य है स्वरूप प्रभु	42
41.	आया है अवसर भक्ति करेंगे	42
42.	जब से प्रीति लगी	43
43.	नाथ तेरी वीतराग छवि भावे	44
44.	परम सौभाग्य है जिनवर	44
45.	जयवन्तो जिनराज-जयवन्तो...	45
46.	जयवन्तो भगवंत जगत में	46
47.	मेरा मन उमगे प्रभु दर्शन को	46
48.	दर्श जिनराज का पाया	47
49.	जिनकर भक्ति आनंदमय हो	47
50.	जिनवर दर्शन मंगलकारी	48
51.	गाओ-गाओ-गाओ, जिनवर के	49
52.	आओ हम सब मिल आज	50
53.	प्रभुवर तुम साक्षी अहो	50
54.	कोई महिमा है अद्‌भुत नाथ	51
55.	प्रभु रूप लखत मेरे सुमति भई	52
56	निज निधि पाई प्रभु सुखदायी	52
57.	धन्य-धन्य जिनरूप अहो	52
58.	अहो! जिनेश्वर तुम ही मेरे	53
59.	मैं वीतराग सर्वज्ञ प्रभु गुण गाऊँ रे	54
60.	कल्पतरू से प्राप्त भोगों की	55
61.	दर्शकर जिनराज के आनंद	55
62.	प्रभु शांत रूप सुखदाई	56
63.	धन्य दिवस धनि घड़ी	57
64.	जिनेश्वर प्रभुता अपरम्पार	58
65.	पायो-पायो रे शरण सुखकार	58
66.	धन्य-धन्य भयो आज	59
67.	अहो! परम उपकार जिनेश्वर	59

68. आओ जी जिनदर्शन को 60
69. मैं भी अपने ही भरोसे 61
70. प्रभु वीतराग पद वंद्य रे 61
71. चित्स्वरूप दर्शायो स्वामिन् 62
72. जिनमुद्रा हमको लागे प्यारी 62
73. ओम् जय केवलज्ञानी 62
74. चिदानंद स्वामी, चिदानंद स्वामी 63
75. देखा-देखा अनंग रूप जिनवर का 64
76. शरण में जिनवर की आए 64
77. दया निधि वीतरागी देव 65
78. आयो प्रभुवर शरण तिहारी 66
79. हे धर्म पिता सर्वज्ञ 66
80. करूँ भक्ति जिनराज 67
81. अहो! भाग्य है मेरा 67
82. आओ-आओ जिनवर की शरण में 68
83. भगवंत भजो, भव अंत लहो 69
84. देखे हैं जिनराज कैसे मगन 69
85. मंगल अवसर आया रे, आया रे 70
86. जय-जय हो प्रभु, जय-जय हो 71
87. चरणों में प्रभुवर के आयेंगे हम 71
88. प्रभुजी मन मंदिर में आओ 72
89. ज्यों है अकृत्रिम भाव सुखमय 73
90. हे प्रभुवर तुम चरण प्रसाद 73
91. दर्शन पायो आनंद छायो 73
92. तोडिबे मोह रूप जंजाल 74
93. हमको भी बुलवा लो भगवन् 74
94. निज स्वभाव की महिमा जागी 75
95. प्रभु सम नहीं कोई उपकारी 76
96. धन्य कृत्कृत्य हुआ,दर्श करके 77
97. महाभाग्य से मैंने जिन दर्शन पाया 78
98. वंदन हम करते हैं मंगलमय 78
99. करलो प्रभु गुणगान,करलो... 80
100. जिनवर भक्ति सुखकारी 81
101. म्हारो मन लागो जिन भक्ति में 82
102. धन्य-धन्य जिन रूप अहो 84
103. धन्य हुए प्रभु दर्शन करके 84
104. देखो-देखो श्री जिनवर को 85
105. छोड़ो-छोड़ो रे विषय-कषाय 86
106. जिनवर का मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग 86
107. जय-जय सहज रूप जिननाथ 87
108. जय-जय हो आदिनाथ 88
109. हे आदीश्वर! तुम प्रभुता का 89
110. आदीश्वर जिनराज आज मैंने सपने 90
111. आया शरण में तेरी हे आदिनाथ 91
112. जय आदीश्वर-जय आदीश्वर 91
113. महाभाग्य से दर्शन पाया 92
114. स्तुति चन्द्रप्रभ जी की 92
115. गाड़ी खड़ी रे खड़ी रे तैयार 93
116. जय-जय चन्द्र जिनेश 94
117. अहो! अहो! श्री चन्द्र प्रभो! 94
118. हे चन्द्रप्रभ जिनराज! 95
119. जय-जय चन्द्र प्रभो भगवान 96
120. शांतिनाथ-शांतिनाथ जयवन्तो 96
121. विराजें शांतिनाथ भगवान 97
122. शांति प्रभो, शांति प्रभो 98
123. शांति विधायक मंगल दायक 99
124. शांत स्वरूप अरे अंतर में 100
125. शान्ति जिनवर झलकती है 100
126. आज तो बधाई शान्तिनाथ 101
127. बाल ब्रह्मचारी अविकारी 101
128. जय नेमिनाथ-जय नेमिनाथ, दर्शन 102
129. बाल ब्रह्मचारी प्रभो! 103
130. जय-जय नेमीश्वर भगवान 103
131. जयवन्तो नेमिनाथ, जयवन्तो... 104
132. धन्य-धन्य नेमी जिनेश्वर 105
133. जय नेमीश्वर-जय नेमीश्वर 105
134. श्री नेमि प्रभो! जिन नेमि जिन 106
135. कैसे ध्यानमग्न नेमिनाथ भगवान 106
136. दर्शन नेमिनाथ का सबको 107
137. मेरे हृदय विराजो नेमीश्वर 108

138. मेरो जन्म सफल भयो आज हो 108
139. पारसनाथ-पारसनाथ, दर्शन पाये 109
140. धन्य-धन्य श्री पारस स्वामी 110
141. महाभाग्य से पार्श्व प्रभु दर्श पाया 111
142. प्रभु पार्श्वनाथ की जय बोलो 112
143. रे पार्श्व प्रभो शिवदाता 112
144. हे पार्श्व प्रभो! दर्शन कर 113
145. जय पारस-जय पारस 114
146. आदर्श रहो-आदर्श रहो 115
147. महावीर का है सन्देश 115
148. दीपक सम्यक् ज्ञान उजारो 116
149. जय महावीर-जय महावीर 117
150. जय-जय महावीर भगवान 117
151. महावीर-महावीर-महावीर हो 118
152. वीर प्रभु के गुण गाओ 118
153. मुक्तिपथ के आदर्श 119
154. देखी वीर जिनेन्द्र मूरत ज्ञानमयी 120
155. वीर बनेंगे, महावीर बनेंगे 120
156. परिणति भी होवे तुम सम ही 121
157. हे वीरनाथ तुम दर्शन कर 122
158. आत्मन् हृदय के पट खोल 123
159. वीर वाणी बरसे रे 123
160. जयवन्तो प्रभु वीर हमारे 124
161. महावीर-महावीर-महावीर हो 125
162. आओ-आओ महावीर 125
163. भक्ति भाव से पूरित हो हम 126
164. वीरनाथ के दर्शन करके अति हर्षाये 126
165. शिव सुख दायक त्रिभुवन नायक 127
166. बोलो-बोलो-बोलो भाई 128
167. महावीर-जय महावीर 128
168. वीर जिनेश्वर, वीरपना प्रगटाऊँ 129
169. वीर प्रभु के शुभ शासन में 129
170. गूँजे जय-जयकार,गूँजे जय... 130
171. ओम जय महावीर प्रभो 132
172. आओ भवि जिनवर की भक्ति करेंगे 132
173. महावीर ने क्या किया 133
174. पंच बालयति जिनराज 134
175. सीमंधर आदि सु तीर्थंकर 135
176. बाहुबली की शांत मुद्रा 135
177. बाहुबली स्वामी! वन्दूँ मैं बारम्बार 136
178. चरणों में बाहुबली के 137
179. बाहुबली स्वामी! दर्शन की 137
180. भले विराजे बाहुबली प्रभु! 138
181. जय बोलो बाहुबली स्वामी की 138
182. जय बाहुबली-जय बाहुबली 139
183. प्रभु बाहुबली जय-जय-जय-जय 139
184. वीर भज ले, वीर भज ले 140
185. मैं उस पथ का अनुगामी हूँ 141
186. होड़ लगी है होड़ लगी 141

2. श्री जिनवाणी भक्ति

187. संसार सागर पार करने को 142
188. परमेष्ठी वाचक ओंकार को 143
189 जिनवाणी माँ की वंदना 143
190. जिनवाणी साँची माता हमारी 144
191. जिनवाणी हम सबको सुखकारी 145
192. जिनवाणी साँची माता हमारी 145
193. बड़ी भली जिनवाणी माँ 146
194. जिनवाणी अमृत झरे 147
195. नमो-नमो जिनवाणी माता 148
196. वीतरागता की पोषक अरु 149
197. हे मात करुणा कर मुझे 149
198. लोकोत्तर माता सुखकारी 149
199. बाह्याचार विधान कहे 151
200. आया रे अवसर महान 151
201. पाया जिनागम सार 152
202. आज का दिवस है मंगलकारी 153
203. ओ मेरे मन, जिनवाणी सुन 153
204. जिनवाणी सुनि उपजे आनन्द 154
205. भैया! जगा रही जिनवाणी 154
206. जय जिनवाणी माँ, जिनवाणी माँ 155

207. निज स्वभाव को जो दर्शावे 155
208. माँ जिनवाणी ज्ञायक बताय दियो रे 156
209. करलो जिनवाणी अभ्यास 156
210. जिनवाणी जग में सुखदाय 157
211. बोलो जय-जयकार 158
212. नित्य बोधिनी जिनवाणी 158
213. जिनवाणी माता बोधि समाधि... 159
214. हे माँ जिनवाणी आत्म रूप... 160
215. मैं महाभाग्य से पाई 160
216. अहो! अहो! जिनवाणी माता 161
217. जिनवाणी सुनो सुखकार 162
218. जिनवाणी सुखकारी है 162
219. जब हि सुनी हम श्री जिनवाणी 163
220. जिसने जिनवाणी को अपनी 163
221. जय जिनवाणी माता 165
222. जय-जिनवाणी-जय जिनवाणी 165
223. जिनवाणी माता, मेरे शीश 166
224. जिनवाणी सुन हितकारी 166
225. जिनवाणी जीवन का आधार है 167
226. परम उपकारी जिनवाणी 168
227. मंगलमय है जिनवाणी 168
228. हे द्वादशांग वाणी जय हो 169
229. धन्य-धन्य जिनवाणी माता 169
230. नमों मैं सदा ही श्री जैनवाणी 170
231. नित जयवंत प्रभु दर्शाती 171
232. माँ जिनवाणी मुझ अन्तर में 171
233. सुन चेतन चतुर सुजान 172
234. जिनवाणी साँची माँ 172
235. सुन प्राणी जिनवाणी 173
236. जिनवाणी जीवन में 173
237. शिव सुखदानी है जिनवाणी 174
238. अंतरंग प्रीति से सुनना 175
239. समयसार अविकारा जी 175
240. ध्यावो समयसार अविकार 176
241. अहो! अहो आराधूँ भगवन् 177
242. जानूँ मैं जाननहार रे! 177
243. स्वयं- स्वयं में सार है 178
244. जय-जय समयसार 179
245. तीन भुवन में सार है 179
246. दीनपनो तज प्रभु भजो 180
247. ध्रुव ध्येय रूप निज समयसार 181
248. निरुपचार शुद्ध रत्नत्रय ही 181

3. श्री जिनगुरु भक्ति

249. आतम रूप अनुभव मुनिवर 182
250. आवे गुरुवर याद तुम्हारी 183
251. निर्ग्रन्थ गुरुवर कब दर्श पाऊँ 183
252. धन्य मुनीश्वर निज आतम में 184
253. अहो झूलते प्रथम भाव में 185
254. निर्ग्रन्थ मार्ग मोहि लागे प्यारा 185
255. कब सहज दिगम्बर साधु दशा 186
256. मुनिवर का जीवन आनंदमय 186
257. होगी धन्य घड़ी जब प्रभुवर 187
258. ज्ञानी मुनिवर सुखी महान 187
259. भक्ति से मुनिवर नमन करूँ 188
260. देखो मुनिराज निज ध्यान में मगन 188
261. गम्भीर गुरुता वाले हैं 190
262. इस दुखमा पंचमकाल में 190
263. गुरुवर साँचे शरण हमारे 191
264. जयवन्तो गुरुदेव हृदय में जयवन्तो 191
265. मेरे हृदय विराजो गुरुवर 192
266. निर्ग्रन्थ पद की भावना भाऊँ 192
267. धन्य-धन्य वे ज्ञानी मुनिवर 193
268. प्रभुवर ! संयम कब प्रगटे 194
269. निर्ग्रन्थ जीवन, सहज शांत जीवन 194
270. प्रभु यही भावना होती है 195
271. कब मुनिवर दर्शन पाऊँ 196
272. धन्य-धन्य निर्ग्रन्थ दशा है 196
273. देखो हैं मुनिराज कैसे मगन 197
274. पूर्ण तत्व ही ध्याते गुरुवर 198
275. पूर्णिमा के चंद्र सम जो ज्ञान सिंधु 199

276. मेरे गुरु निर्ग्रन्थ वीतराग होई 201
277. हो दिगम्बर ध्याऊँ निजपद 201
278. जिनदीक्षा ले के जंगल में जाऊँ 202
279. धनि मुनिराज हमारे हैं 203
280. निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु 203
281. धन्य-धन्य मुनिवर का जीवन 204
282. धन्य मुनिराज की समता 204
283. जंगल में मुनिराज अहो 205
284. वनवासी सन्तों को नित ही 206
285. कब सहज दिगम्बर साधु दशा मैं 207
286. निर्ग्रन्थ महा मुनिराज आज मैंने 207
287. निर्ग्रन्थ दशा कब पाऊँ 209
288. आवे अहो ! निर्ग्रन्थ दशा 210
289. गुरुवर तुम ही शरण हमारे 211
290. होवे साधु दशा सुखकारी 213
291. निर्ग्रन्थ पद हितकार 214
292. आनंद का दिन आयेगा आयेगा 215
293. जैसो मुनिवर करें उपकार 216
294. निर्दोष तत्व की दृष्टि धरूँ 217
295. गुण चिन्तत-श्री मुनिवर के 219
296. मुनीश्वर के गुण गाओ रे 219
297. अहो ! निर्ग्रन्थ गुरुवर का 220
298. रहूँ जंगल में एकाकी 221
299. मुनि दर्शन को चित हुलसाय 221
300. मुनिवर कब दर्शन पाऊँ 222
301. देखो ज्ञानमयी मुनिराज 222
302. जयवन्तो निर्ग्रन्थ साधु सुखकार 223
303. साधु दशा प्रगटायेंगे 224
304. किया अनंत उपकार, मुनीश्वर 224
305. धन्य-धन्य मुनिराज रमें 225
306. जग में संत चरण सुखकार 226
307. धन्य हैं मुनि मंगल दातार 227
308. अलौकिक वृत्ति अहो मुनिराज 227
309. मेरे गुरुवर ने ज्ञायक दर्शाय दियो रे 228
310. अज्ञानी प्राणी से कहें गुरु ज्ञानी 229
311. भवि कहना गुरु का मान 230
312. अपना करना हो कल्याण 230
313. मुनीश्वर मग्न रहे निज माँहि 231
314. कब मैं अलौकिक वृत्ति धरुँगा 231
315. निज ज्ञायक ही आनन्दधाम 232
316. मन मंदिर में तिष्ठो श्री मुनिराज 234
317. अब जिनदीक्षा लेना चाहिए 234
318. होवे कब निर्ग्रन्थ दशा 235
319. संयत का लक्षण समता है 236
320. मुनिराज बनेंगे, अहो ! जिनराज 237
321. कब मुनिवर दर्शन पाऊँ 238
322. वन्दों नित आचार्य मुनीश्वर 239
323. मोह क्षोभ विहीन निज परिणाम 239
324. अपनी शक्ति सम्हार, करलो निज 240
325. धर्मी होवे पाहुने धनि भाग्य हमारे 241
326. मुक्ति का मार्ग तो निर्ग्रन्थ है 242
327. गुरु निर्ग्रन्थ परिग्रह त्यागी 242
328. आचार्य कुन्दकुन्द जो मारग.. 243
329. जय-जय कुन्दकुन्द भगवान 244
330. धन्य दिवस यह आज का 244
331. तुमसे लगनी लागी मुनिवर 245
332. आचार्य कुन्दकुन्द श्री भारत में फिर 246
333. आचार्य कुन्दकुन्द हैं आदर्श हमारे 246
334. धन्य-धन्य कुन्दकुन्द धन्य-धन्य 247
335. हे कुन्दकुन्द शिवचारी, गुरुवर 248
336. जय-जय कुन्दकुन्द आचार्य 249

4. श्री जिनधर्म भक्ति

337. जिनधर्म के हम हैं अनुयायी 249
338. पाऊँ हो सुखकार धर्म जिनेश्वर 250
339. जिनधर्म इमको है प्राणों से प्यारा 251
340. धनि जिनधर्म हमारा है, प्राणों से 252
341. सत्य सनातन जैन धरम 252
342. जय-जय बोलो जय-जय बोलो 253
343. जिनधर्म हमको लागे प्यारा 255
344. धनि जिनधर्म हमारा है 255

345. समझो- समझो रे धरम को सार 256
346. धन्य-धन्य जिनशासन पायो 257
347. जय जिनवाणी, जय शुद्धातम 258
348. गाओ-गाओ-गाओ जिनशासन... 259
349. श्री जिनधर्म महान, जग में 260
350. अहो जिनधर्म मंगलमय 261
351. जिनशासन अम्लान, भविजन 261
352. जयवन्तो नित जिनशासन 262
353. धर्म दिगम्बर जजो भव्य मंगलकारी 263
354. मंगलमय आतम अविकारा 264
355. शिवसुख दाता जैनधर्म 265
356. अनेकांतमय वस्तु स्वरूप 265
357. पाया मंगलमय जिनधर्म 266
358. जयवन्तो नित जैनधर्म 267
359. जिनवर के गुण गाओ-गाओ रे 267
360. आज का दिवस है मंगलकारी 268
361. आज का दिवस है मंगलकारी 268
362. बाह्य जग के दृश्य न देखूँ 269
363. मंगल विहार, मंगल विहार.. 269
364. गावहु आज बधाई, बधाई 270
365. महाभाग्य जिनशासन पाया 270

5. श्री सिद्धचक्र विधान भक्ति

366. सिद्धचक्र का पाठ रचाया 271
367. भरे हुए हैं सिद्धों के गुण 272
368. रचा सिद्धचक्र मण्डल विधान 272
369. अहो! परमामृत बरसावे 273
370. सिद्धचक्र मंडल विधान हो रहा 273
371. सिद्ध स्वरूप सु भावें 274
372. देखो सिद्धचक्र का पाठ 275
373. सिद्ध प्रभु की भक्ति करते 275
374. आनंद छाया रे, सिद्धचक्र के 276
375. सिद्धचक्र को पाठ रचाया 277
376. देखो सिद्धचक्र का पाठ 278
377. सिद्धचक्र मण्डल विधान सुखकार 278

6. श्री नंदीश्वर भक्ति

378. नंदीश्वर पूजूँ भक्ति 279
379. नंदीश्वर-नंदीश्वर, वन्दों मैं 280
380. पर्व अठाई आया है 280
381. आयो आयो रे! अठाई पर्व 281
382. नंदीश्वर का पाठ 282
383. नदीश्वर में बावन मंदिर 283

7 श्री दशलक्षण भक्ति

384. अहो! दशलक्षण धर्म महान. 283
385. जिनतीर्थ नाथ जग में 284
386. क्रोध है दु:खमय, निज क्षमा 285
387. जगत में क्षमा भाव उर धार 286
388. उत्तम संयम प्रभु मेरे 287
389. ब्रह्मचर्य सुख रूप भासे 288
390. दशलक्षण महा सुखकार 289
391. पर्व दशलक्षण मंगलकार 289
392. श्री दशलक्षण धर्म अमोलक 291
393. क्षमा भाव है मंगलमय 291
394. स्वाभाविक कोमलता मार्दव 292

8. श्री तीर्थक्षेत्र भक्ति

395. तीर्थ वंदना करें भव्यजन 293
396. तीर्थराज पहिचान हमारी 294
397. तीर्थराज है हृदय हमारा 295
398. तीर्थ आना सफल तेरा 295
399. प्राणों से भी प्यारा है 296
400. सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर जयवंत रहे 297
401. सम्मेदशिखर-सम्मेदशिखर,हम करें 297
402. सम्मेदशिखर-सम्मेदशिखर, शाश्वत 298
403. सम्मेदशिखर हमको प्राणों से प्यारा 298
404. चलो चलें सम्मेदशिखर 299
405. ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाला है 299
406. आज मेरे प्रगट्यो है आनंद अनंत 300
407. मैं तो जाऊँ, शिखरजी वन्दन को 301
408. सम्मेदशिखर-सम्मेदशिखर 301
409. आज गिरराज निहारा 303

410. मैं पूजूँ-पूजूँ शिखर सम्मेद महान 303

9. प्रासंगिक भक्ति

411. आज का दिवस है मंगलकारी 303
412. अक्षय तृतीया पर्व महान 304
413. राजुल-भोगों में संग का 305
414. हम सब ही मिलकर मंगलमय 306
415. रक्षाबंधन पर्व पर तुम 308
416. ओ भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना 309
417. कैसा बन्धन ? कैसी रक्षा ? 309
418. जय-जय मुनिवर विष्णु कुमार 311
419. श्री भक्तामर का पाठ करो 312
420. सत्य महिमा उर में लाओ 313
421. दिवस आज का मंगलकारी 314
422. जिनधर्म का झंडा केशरिया 314
423. झण्डा जैन धरम का 315
424. ध्वजा मंगलमय फहरावे 316
425. जिन वेदी का शिलान्यास 316
426. जय-जयकार जय-जयकार 317
427. माता पुत्र तुम्हारा, नाथ हमारा 318
428. श्री वीर जयन्ती को सब मिलके 319
429. जन्मे महावीर भगवान 320
430. जन्म जयंती महावीर की 320
431. गाओ रे बधाई केवलज्ञान की 321
432. जयवंतो महावीर का शासन 322
433. श्री वीर का शासन मंगलमय 322
434. श्री जिनवर का मंगल शासन 323
435. प्रभुवर मोक्ष पधारे हैं. 324
436. उपकार जिनवर आपका है 325
437. प्रभुवर ऐसी दीवाली मनाऊँ 325
438. मंगलमय अवसर अहो 326
439. मंगलमय निर्वाण की बेला 326

10. आध्यात्मिक भक्ति

440. आत्म अनुभव का अवसर मिला 327
441. सहज पवित्र, सहज सुख धाम 328
442. जैसो अपनो ज्ञायक भगवान 329
443. परिग्रह सों सदा काल रूप मम 330
444. पुरुषार्थ किए ना हमने कभी 331
445. पुण्य पर भी भरोसा हमें है नहीं 332
446. भोजन स्वरूप नहिं मेरा 333
447. सम्यक्त्व की रक्षा करो 334
448. जिनके हृदय जिनराज बसे 336
449. हे परमात्मन्! तुझको पाकर 336
450. भविजन काहे को मोह करे 337
451. मोह दुःखमय दुख का कारण 338
452. मिथ्या मोह निवारो चेतन 338
453. रत्नत्रय ही सच्चा धन है 339
454. निरपेक्ष रहो, निरपेक्ष रहो 340
455. जानो जानो-जानो,जाननहार को 341
456. पर की चिन्ता त्याग आत्मन्! 342
457. प्रभु जैसा ही ध्यान लगावें 343
458. प्रभु सहज भावना है 343
459. सहज रहो, कुछ नहीं कहो 344
460. आत्मा सदाकाल निरोग 345
461. ऐसो ज्ञानी क्यों न महासुख 345
462. जितना देखेगा बाहर में 346
463. प्रभु! स्वाश्रित जीवन हो 346
464. अहो! स्वाश्रय से हो पुरुषार्थ 347
465. भैया मेरे सम्यक् रतन सम्भालो 348
466. ओम् जय-जय अविकारी 348
467. सुख का है यही उपाय मात्र 349
468. दया कर दया कर, दया धर्म 350
469. प्रभु यही भावना होती है 351
470. आया है अवसर समझो 351
471. मत सुनो जगत की चेतन 352
472. आया अवसर भव्य समझ लो 354
473. चेतन स्वयं बनो भगवान 354
474. आओ भविजन आओ आओ 355
475. चेतन! अब तो मोह को छोड़ो 355
476. ऐसो मोही क्यों न महा दुख पावे 356
477. आतम अनुभव करना रे भाई! 356

478. आत्मा स्वतंत्र है, सत्ता स्वतंत्र है 357
479. क्या क्या कहूँ निज वैभव की 358
480. जानो-जानो रे रतन को मोल 358
481. अन्तर्मुखी हो प्रभुवर जिन भावना 359
482. ये दिन मत विवेक बिन खोओ 360
483. उत्तम ब्रह्मचर्यमय जीवन 360
484. व्यर्थ भटको नहीं 361
485. ज्ञान सुधा रस पीजे रे भाई 362
486 आत्मन्! सोच तजो झूठा 362
487. अब निहारें अरे ! आत्म अन्तर 363
488. चिन्ता चाहे जितनी कर लो 364
489. कोई न रोकन हार मुक्ति मारग में 365
490. विजय करो-विजय करो कर्योदय.. 366
491. स्वावलम्बी निरवलम्बी 367
492. देखो! अन्तर माँहि विराजे 367
493. ज्ञान का ज्ञेय बनाते चलो 368
494. लगन सु मेरे एकहि लागी 369
495. प्रभु निर्ग्रन्थ स्वरूप निरखते 370
496. भो आत्मन्! तजो विकल्प सभी 370
497. शुद्ध-बुद्ध है रूप तुम्हारा 371
498. जानूँ जाननहार सहज ही 372
499. लगनी लागी आतम की 373
500. अब तो ज्ञाता-दृष्टा रहना 373
501. ज्ञान ही सुख है 374
502. ज्ञानी आत्मा ही निज रूप 375
503. ज्ञान गंगा में नित प्रति नहाओ 376
504. सम्यग्दर्शन बिना जगत में 377
505. अपने चेतन का सु ध्यान धरूँगा 378
506. जरा सी सम्पदा पाकर, अरे ! 379
507. फल भोगत नहीं जड़ कर्मों का 379
508. द्रव्य प्राणों का होवे वियोग 380
509. मेरी परिणति में चार-चार भूल 380
510. जगत व्यवस्था यदि देखोगे 381
511. सम्यग्दर्शन मूल धर्म का 381
512. शुद्ध चैतन्य भाव अनुभवते 382
513. सम्यग्दर्शन मित्र हमारा 383
514. स्वतंत्र है प्रत्येक वस्तु 384
515. परमार्थ से गुरु आत्मा का 384
516. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र 386
517. आ जा रे ! आ जा रे !! ... 387
518. जिया अब आतम हितकर रे 388
519. चेतन प्रभु के गुण गा ले 388
520. कालिमा मत पोत रे 389
521. जन्म सफल कर लो भवि प्राणी 389
522. आत्मन् दुश्चिंतन नहीं करो 390
523. ज्ञानाभ्यास करो, मुक्तिमार्ग मिले 390
524. सहज स्वयं में तृप्त सदा ही 391
525. कर्त्ता तो नित मरता है 392

11. विविध भक्ति

526. वह शक्ति हमें दो दया निधे 393
527. बाहर से मीचो आँख रे 393
528. मेरे लागी है लगन 394
529. जागो-जागो रे जागो रे 394
530. करलो करलो सम्यक् ज्ञान 395
531. भविजन! बिन विवेक मत खोओ 396
532. माला समझ बूझ कर फेर 396
533. देखो रे मेला, झूठा ये मेला 397
534. प्रभु नाम का सुमरन कर ले 397
535. शुद्ध वस्त्र तन पर धारण कर 398
536. घर-घर मंगल दीप जलावो 400
537. तुम मान अनिष्ट न क्रोध करो 400
538. त्यागो लोभ महा दुखकार 401
539. देख दूसरों के वैभव अरु 401
540. प्रभु भक्ति आनंदमय 402
541. रत्नत्रय ही शिव स्वरूप 402
542. बहुत घूमे जगत में हम 403

1. श्री जिनवर भक्ति

(1)

जागो-जागो, आलस त्यागो, करो आत्म कल्याण रे।
अवसर मिला महान रे।। टेक।।
मोह नींद में सोते-सोते, काल अनंत गँवाया।
पर्यायों से तन्मय माना, भव-भव में भरमाया।।
अति पुण्य खिला, जिनदर्श मिला, पहिचानो निज भगवान रे।।1।।
जिनवाणी सी मात मिली है, सुनो सीख सुखकारी।
तत्त्वों का निर्णय उर लाओ, भेदज्ञान ही दुखहारी।।
शुद्धातम भाओ, अनुभव लाओ, होवो सम्यक्वान रे।। 2।।
जल बुद-बुद सम जग की माया, चंचल अस्थिर जानो।
मानुष भव की थिति अति थोड़ी, हित का उद्यम ठानो।।
गृहवास तजो, वनवास भजो, धर मुनिपद आनंदखान रे।। 3।।
तत्त्व भावना भाते-भाते, लीन स्वयं में होओ।
ज्ञान सिन्धु में हो निमग्न, तुम सकल कर्म मल धोओ।।
निज ध्यान बढ़े, गुणस्थान चढ़े, फिर पाओ पद निर्वाण रे।।4।।

(2)

(तर्जः गाड़ी खड़ी रे खड़ी...)

आओ आओ रे सभी मिल आओ, श्री जिनमंदिर में।। टेक।।
धन्य भाग्य हमको मिला, जिनमंदिर अविकार।
मारवाड़ संसार में, धर्म कल्पतरू सार।। 1।।

जिनमंदिर में शोभते, मनहारी जिनबिम्ब।
जिनके दर्शन से दिखे, अन्तर में चिद्बिम्ब।। 2।।
जिनमंदिर में गूँजती, जिनवाणी अविकार।
सुनते ही आनन्द हो, समझत हो भव पार।। 3।।
जिनमंदिर में सहज हो, साधर्मी सों मेल।
जिनके सत्संग में लगे, मुक्तिमार्ग भी खेल।। 4।।
जिनमंदिर में हो रही, जिनभक्ति सुखकार।
जिससे पाप विनष्ट हों, बढ़े पुण्य भंडार।। 5।।
जिनमंदिर में हो रहा, पंचकल्याणक पाठ।
देखत अति आनन्द हो, देखो कैसा ठाठ।। 6।।

(3)

(तर्जः मैंने तेरे ही...)

आओ-आओ हो जिनालय आओ, प्रभु दर्शन पाओ।
गाओ-गाओ हो प्रभु गुण गाओ, निज प्रभुता पाओ।। टेक।।
जिनमंदिर मुक्ति का मण्डप, समवशरण सम जानो।
सौम्य शान्त छवि लखि प्रभुवर की, अपनो रूप पिछानो।। 1।।
भिन्न असार जानकर पर-पद, निज पद में चित लाओ।
निजानन्द निज में ही पाओ, तृप्त सदैव रहाओ।। 2।।
भूल रहे हो जिस माया में, वह तो साथ न जाये।
जिनकी चिन्ता में व्याकुल, सभी यहीं रह जाये।। 3।।
व्यर्थ नहीं भरमाओ 'आत्मन्' उत्तम अवसर आया।
आतम हित का करो सु उद्यम, श्री जिनधर्म है पाया।। 4।।

(4)

(तर्जः जैनमंदिर हमको लागे प्यारा ...)

जिनमंदिर है जग में अशरण-शरण,
जिनमंदिर है जग में तारण-तरण।
जिनमंदिर में होवे पूजन भजन,
जिनमंदिर में प्रवचन हों आनन्द करण।।टेक।।
मोह मिटावे, ज्ञान जगावे,
पाप नशावे, निर्मलता आवे।
धर्म ध्यान की लागे लगन।। 1।।
धन्धा छूटे, संज्ञा छूटे,
विकथा- निद्रा- आलस छूटे।
तत्त्वों की श्रद्धा होवे पावन।। 2।
प्रभुवर को देखे, शुद्धातम दीखे,
रागादि न्यारे निस्सार दीखे।
वैराग्य-भावना हो सुख करण।। 3।।
करें, करावें, अनुमोदन लावें,
धर्म के नाना उत्सव रचावें।
होवे प्रभावना मंगलकरण।। 4।।
आओ जिनमंदिर में आओ,
दर्शनकर सब दुःख मिटाओ।
धर्मी में होवे जीवन अर्पण।। 5।।

(5)

(तर्ज: जैन मंदिर हमको लागे प्यारा...)

जिनमंदिर है हमको मंगल शरण।। टेक।।

श्री जिनबिम्ब विराजत ऐसे, मानो हों प्रत्यक्ष तारण-तरण।
दर्शन करत सफल हो जीवन, हो भेद-विज्ञान मोह हरण।।1।।
जिनश्रुत की चर्चा सुखकारी, वस्तु स्वरूप स्पष्ट करन।
तत्त्वों का सम्यक् निर्णय करावे, आत्मानुभव की लागे लगन।।2।।
विषय आरम्भ कुसंगति छूटे, धर्मीजनों का सहज हो मिलन।
आराधन में उत्साहित हो, स्वयमेव थिर होय चंचल सु मन।।3।।
भाव विशुद्धि आत्म शान्ति के निमित्तभूत मंदिर को नमन।
निज मंदिर में निवसूँ शाश्वत, चैतन्य प्रभु में ही होऊँ मगन।।4।।

(6)

(तर्ज: लखी-लखी...)

जिनमंदिर में आओ-आओ, भविजन मिलकर आओ।
बालयती प्रभु के दर्शनकर, ब्रह्म भावना भाओ ।। टेक।।
क्यों अनित्य अशरण दुःखकारी, भोगों में भरमाओ।
अति दुर्लभ नरभव जिनशासन, फिर पीछे पछताओ।। 1।।
मूढ़ों के सम विषयों में फँस, क्यों निज धर्म गँवाओ ।
ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके, मुक्तिमार्ग में आओ।। 2।।
महाभाग्य से पाये जिनवर,हरष-हरष गुण गाओ।
भेदज्ञान नित ही अभ्यासो, भाव विशुद्धि बढ़ाओ।। 3।।
हो अकलंक समान प्रभु की, जय से नभ गुँजाओ।
परम अहिंसा की जग भर में, धर्म ध्वजा फहराओ।। 4।।

महा भयानक अक्ष सुखों को, नहीं स्वप्न में चाहो।
निज स्वभाव का आराधन कर,अक्षय सुख प्रगटाओ।। 5।।
इधर-उधर मत देखो भाई! प्रभु की ओर लखाओ।
प्रभु के पथ का करो अनुशरण, जीवन सफल बनाओ।। 6।।

(7)

(तर्ज : चाल म्हारा...)

आओ आओ मिलकर आओ,जिनमंदिर में आज रे।
देखो! अद्‌भुत धर्म महोत्सव, जिनमंदिर में आज रे।। टेक।।
मूरति प्रभुवर की मनहारी, गंध कुटी की शोभा न्यारी।
शोभे तीन छत्र सिर ऊपर, तीन लोक सिरताज रे।। 1।।
ढुरते चमर सहज सिखलावें, जो जिनवर को शीस नवावे।
भेदज्ञान करते शिव पावे, होवे जय-जयकार रे।। 2।।
प्रभु मूरति से शान्ति बरसती, लखते ही मिथ्यामति भगती।
अन्तर्दृष्टि सहज ही होती, खुले मुक्ति का द्वार रे।। 3।।
भक्ति भाव से प्रभु गुण गाओ, अपना जीवन सफल बनाओ।
करो स्वानुभव निज पद साधो, यही जगत में सार रे।। 4।।

(8)

(तर्ज: जिनवाणी अमृत रसाल...)

मंगल अवसर आज, आओ जिनमंदिर में।
अपने हित के काज, आओ जिनमंदिर में।। टेक।।
अद्‌भुत वीतराग छवि प्रभु की, कैसी सुन्दर सोह रही।
शान्ति सुधा बरसाती जग में, भव्यों का मन मोह रही।।
प्रत्यक्ष निहारो आज।। आओ.।। 1।।

इन्द्रादिक भी भक्ति करके, भाव विशुद्धि बढ़ाते हैं।
जिनवर के गुण चिन्तन कर, वैराग्य भावना भाते हैं।।
मिलकर सकल समाज।। आओ.।। 2।।
परम हर्ष से दर्शन करके, भक्ति कर मंगलकारी।
जिनवाणी का श्रवण करो, फिर सामायिक आनन्दकारी।।
देखो निज साम्राज्य।। आओ.।। 3।।
मिथ्या जगत प्रपंच छोड़कर, सम्यक् तत्त्व स्वरूप विचार।
प्रभु सम ही पुरुषार्थ जगाओ, निज निर्ग्रन्थ स्वरूप निहार।।
पाओ सिद्ध समाज।। आओ.।। 4।।

(9)

(तर्ज: अमायन नगर में पंचकल्याणक...)

जिनमंदिर में धर्म महोत्सव।
छाया हर्ष महान रे, पावें पथ निर्वाण रे।। टेक।।
हिल-मिलकर सब भक्ति रचावें,हर्ष-हर्ष प्रभु के गुण गावें।
करें भेद-विज्ञान रे।। पावें.।। 1।।
प्रभु की वाणी सुनें-सुनावें,मोह-महातम दूर भगावें।
करें स्व-पर कल्याण रे।। पावें.।। 2।।
पाप वासना हो निर्मूल,समझें जगत विभव सब धूल।
धारें आतम-ध्यान रे।। पावें.।। 3।।
मलिन विकल्प न हों दुखकारी,होवें अप्रमत्त अविकारी।
नशें कर्म दुखखान रे।। पावें।। 4।।
दुखमय आवागमन मिटावें,निज अक्षय प्रभुता प्रगटावें।
बनें स्वयं भगवान रे।। पावें.।। 5।।

(10)

(तर्जः दरबार तुम्हारा...)

जिनमंदिर आते सुखकारी है,
दर्शन करके आनन्द हुआ।
जिन प्रतिमा अति मनहारी है,
दर्शन करके आनन्द हुआ।। टेक।।
संसार मरूस्थल में स्वामिन्,
है कल्पवृक्ष सम जिनमंदिर।
यह मिथ्यामोह नशाता है,
दर्शन करके आनन्द हुआ।। 1।।
चिन्तामणि से भी अधिक हमें,
जिनबिम्ब लगें मंगलकारी।
बिन चिन्ते ही शिवसुख देवें,
दर्शन करके आनन्द हुआ।। 2।।
अद्‌भुत आतम वैभव दीखे,
अक्षय प्रभुता दिखलाती है।
वैराग्य उमड़ता है उर में,
दर्शन करके आनन्द हुआ।। 3।।
हे जिनवर जब से देखा है,
पर-आश्रित भाव पलाया है।
समता का भाव जगाया है,
दर्शन करके आनन्द हुआ।। 4।।

चरणों में शीस सहज झुकता,
भक्ति का वेग बहे जब ही।
सन्तुष्ट हुआ, कृतकृत्य हुआ,
दर्शन करके आनन्द हुआ।। 5।।

(11)

जिनमंदिर में, आओ रे आओ।
प्रभुवर के गुण, गाओ रे गाओ।।
बोलो जय-जयकार रे।। टेक।।
देखो प्रभु को, देखो स्वयं को,
देखो प्रभु सम, आज स्वयं को।
केवल जाननहार रे।। 1।।
व्यर्थ भटकते फिरे जगत में,
अपना सर्वस्व है अपने में।
जिनवर दर्शावनहार रे।। 2।।
पाप गठरिया व्यर्थ न बाँधो,
भेदज्ञान कर शिवपद साधो।
पाओ सुख अविकार रे।। 3।।
वीतराग प्रभु कर्त्ता नाहीं,
फिर भी भवि जावें शिव माँही।
महिमा अपरम्पार रे।। 4।।

(12)

(तर्जः मंगल अवसर आज सुरगण आये नगर में ...)

मंगल अवसर आज, आओ जिनमंदिर में।
जिनमंदिर में, जिनमंदिर में।। टेक।।
दर्शन करेंगे, पूजा करेंगे, भक्ति करेंगे, ध्यान धरेंगे।
उत्तम अवसर आज।। आओ.।। 1।।
जिनवाणी सुनें, भेदज्ञान करेंगे,आतम अनुभव सहज करेंगे।
धन्य भाग्य है आज।। आओ.।। 2।।
प्रभुवर मुक्ति का मार्ग दिखाते, शुद्धातम महिमा दर्शाते।
छोड़ के जग जंजाल।। आओ.।। 3।।
श्री जिनधर्म परम हितकारी, भव आताप विनाशनहारी।
शरणभूत अविकार।। आओ.।। 4।।
श्री जिनवर को शीस नवाओ, जन्म-जन्म के पाप नशाओ।
पाओ शिवपद सार।। आओ.।। 5।।

(13)

(तर्जः अमायन नगर में पंचकल्याणक ...)

जिनमंदिर में धर्म महोत्सव, गूँजे जय-जयकार रे।
आनन्द अपरम्पार रे।। टेक।।
जन्म-जन्म का पुण्य खिला है, उत्तम अवसर आज मिला है।
भक्ति करें सुखकार रे।। आनन्द.।। 1।।
पंच-परमेष्ठी को शीस नवावें, निर्मल भेदज्ञान प्रगटावें।
भाव धरें अविकार रे।। आनन्द.।। 2।।

अरहंत मंगल,सिद्ध सु-मंगल, साधु मंगल धर्म सु-मंगल।
ध्रुव मंगल समयसार रे।। आनन्द.।। 3।।
अरहंत उत्तम,सिद्ध सु उत्तम,साधु उत्तम,धर्म उत्तम।
परमोत्तम शुद्धात्म रे।। आनन्द.।। 4।।
अरहंत शरणं,सिद्ध सु शरणं,साधु शरणं,धर्म सु शरणं।
अनन्य शरण शुद्धात्म रे।। आनन्द.।। 5।।
भक्ति से पूजें जिनराज, पावें निश्चय सिद्ध समाज।
आवागमन निवार रे।। आनन्द.।। 6।।

(14)

पूजें अकृत्रिम जिनमंदिर,पूजें अकृत्रिम जिनबिम्ब।
जानें अकृत्रिम निजभाव,ध्यावें अकृत्रिम चिद्‌बिम्ब।। 1।।
आज सु-मंगल अवसर आया, सबके मन में आनन्द छाया।
भक्तिभाव से पाठ रचावें,दुखमय सर्व विभाव नशावें।। 2।।
यद्यपि शक्ति गमन की नाहिं,तो भी मन में अति उत्साह।
करें जिनागम से निरधार,ज्ञान माँहि सम्यक् सु-विचार।। 3।।
जाना सर्व जगत निस्सार,जिनवर साँचे तारणहार।
मंगल-उत्तम-शरण चितार, करते प्रभु की जय-जयकार।।4।।

(15)

श्री पंच-परमेष्ठी भक्ति

पंच प्रभु की भक्ति करें हम, धारें आतम ध्यान रे।
आतम हित का एकहि साधन, वीतराग-विज्ञान रे।। टेक।।
देखो-देखो परमेश्वर को, कैसे निज में लीन हैं।
रागादिक मल दूर हुए हैं, कर्म हुए प्रक्षीण हैं।।
युगपत् लोकालोक प्रकाशक, प्रगटा केवलज्ञान रे।। 1।।

देखो-देखो सिद्ध प्रभु को, ज्ञान शरीरी अविकारी।
अहो! अतीन्द्रिय परमानंदमय, निर्मल परिणति के धारी।।
प्रगटे सम्यग्दर्शन आदिक, गुण अनंत अम्लान रे।। 2।।
देखो-देखो आचार्यों को, सकल संयमाचरण धरें।
पात्र जानकर भव्यजनों का, यथायोग्य कल्याण करें।।
जिनशासन के परम प्रभावक, मोह-तिमिर हर भानु रे।। 3।।
देखो-ज्ञान प्रदायक पाठक, उपाध्याय गुणवंत हैं।
विशेषज्ञ आगम के अध्यातम में निपुण महंत हैं।।
स्वानुभूत शिवमार्ग प्रकाशक, साधो सहित महान रे।। 4।।
देखो-देखो साधुजनों की मुद्रा, परम सौम्य सुखकार।
सहज प्रशम रस छलके वाणी,निर्मल तत्त्व प्रकाशनहार।।
उपसर्गों में समता धारें, करें कर्म की हान रे।। 5।।
पंच-परमेष्ठी पर उपकारी, ध्रुव परमेष्ठी दर्शावें।
मोह-नशावें ज्ञान-जगावें, आत्मीक गुण प्रगटावें।।
मन-वच-काय की शुद्धि, धर नित प्रति करें प्रणाम रे।। 6।।

(16)

(तर्जः तीरथ कर लो...)

भक्ति श्री जिनराज की कर लो अवसर आया है।
मोक्षमार्ग में बढ़ जाने का अवसर आया है।। टेक।।
मंगल श्री अरहंत सिद्ध साधु मंगल जानो।
वीतराग जिनधर्म अहो! मंगलमय पहिचानो।।
करो सत्य श्रद्धान यही सत् निमित्त बताया है।। 1।।
छोड़ पराई आश अहो! जिनवाणी अभ्यासो।

तत्त्वज्ञान का कर प्रकाश, दुर्मोह तिमिर नाशो।।
महाभाग्य से मानुष भव अरु जिनवृष पाया है।। 2।।
पर भावों से भिन्न स्वयं में, पूर्ण सदा लेखो।
विन्मूरति-चिन्मूरति अनुपम, शुद्धातम देखो।।
शाश्वत मंगलमय आतम, श्री गुरु दर्शाया है।। 3।।
करो स्वानुभव से प्रमाण, ध्रुव आतम ही ध्याओ।
तोरि सकल जग द्वन्द्व फन्द, निज में ही रम जाओ।।
सिद्ध समान स्वगुण विलसेंगे, आगम गाया है।। 4।।

(17)

(तर्जः प्रभु शांत छवि तेरी अंतर में ...)

अर्हन् जिनेन्द्र भगवान, तुम विश्व विजय पाई।
यह शान्ति रूप मुद्रा, नैनों में आ समाई।। टेक।।
महिमा समवशरण की, जग ने अपार जानी।
शत् इन्द्र तुम्हें पूजें, चरणों में शीस नाई।। 1।।
देवाधिदेव मेरे, अरहन्त देव मेरे।
संसार सिन्धु तिरके, तुम सिद्ध दशा पाई।। 2।।
ओंकार रूप वाणी, निर-अक्षरी बखानी।
सब देश-वासियों को निज भाष परिणमाई।। 3।।
सप्तभंग स्याद्वादी, गणधर गूँथी अनादि।
याके प्रसाद भविजन, पंचम गति सु पाई।। 4।।
आचार्य गुरु निरंजन, उवझाय साधु भगवन।
जग से उदास हो के, तप ध्यान धुनि रमाई।। 5।।
मिथ्यात्व को मिटाया, संयम सु पंथ ध्याया।

सब छोड़ मोह माया, शुद्धात्म लौं लगाई।। 6।।
महिमा परम गुरु की, वरनी न जाय सेवक।
करते हैं ध्यान हरदम, त्रय योग को मिलाई।। 7।।

(18)

(तर्जः जन गण मन...)

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय,
सर्व साधु सुखदाता।
इन्द्र-नरेन्द्र यथा सुर जेते, पण्डित बुधजन सारे,
भव दुख भंजन, शीस नमावत, रक्षक तुम्हीं हमारे।
जब शुभ मानस ध्याये,
तब शुभ आशिष पाये।
गाये तव यह गाथा,
भव दुख बाधा हरो हमारी, तुम्हें नमावत माथा।
जय हे- जय हे- जय हे, सर्व साधु सुख दाता।।
चारों गति में भ्रमत फिरे हैं, दुःख अनेक उठाए,
ज्ञान चक्षु जब खुले हमारे, तब तुम दर्शन पाये।
सुख की आश लगाए,
हम सब तुम्हारे ढ़िंग आए।
कहाँ मिले सुख साता।।
नाथ तुम्हारे पथ पर चलकर, मुक्ति पथ मिल जाता।
जय हे- जय हे- जय हे, सर्व साधु सुखदाता।।

देव-शास्त्र-गुरु पाये,
मंगल तत्त्व सुनाए।
भव्य हृदय हरषाता।।
तव चरणाम्बुज सेवन करके, निज वैभव मिल जाता।
जय हे-जय हे-जय हे, सर्व साधु सुखदाता।।

(19)

पंच-परमेष्ठी प्रभु सार, इस असार संसार में।। टेक।।
अरहंत प्रभु जी सर्व के ज्ञाता, राग-द्वेष जीतनहार।। 1।।
सिद्ध परमात्मा मोक्ष में राजे, अक्षय सुख अविकार।।2।।
आचार्य चतुर्विध संघ के नायक, पालें पलवावें आचार।।3।।
उपाध्याय गुरु पढ़ें-पढ़ावें, ज्ञान बगीचे रमनार।। 4।।
साधु अट्ठाईस गुणों से शोभें, रत्नत्रय भंडार।। 5।।
संसार के सुख दुःखरूप हैं, सुख अतीन्द्रिय सार।।6।।
आत्मन्! सो सुख धर्म से मिलता, धर्म शरण सुखकार।।7।।

(20)

मंगलमय मंगलकरण, अहो! मंगलमय।
आनंदमय आनंदकरण, अहो! आनंदमय।। टेक।।
मंगलमय अरहंत जिनेश्वर, मंगलमय श्री सिद्ध महेश्वर।
हैं परम दिगम्बर साधु अहो! मंगलमय।। 1।।
मंगलमय जिनधर्म है जाना, रत्नत्रयमय धर्म पिछाना।
उत्तम दशलक्षण धर्म लखो मंगलमय।।2।।
मंगलमय है श्री जिनवाणी, स्वानुभूति से सहज प्रमाणी।
उत्तम अवसर पढ़ो-सुनो मंगलमय।।3।।

करो-करो अब भेद-विज्ञान,सम्यग्दर्शन हो सुखखान।
भासे शुद्धातम ही ध्रुव मंगलमय।।4।।
शुद्ध-बुद्ध चिन्मूरति आतम, परमानंदमयी परमातम।
है स्वाधीन अखण्ड सु प्रभुता अक्षय।।5।।
हो निर्ग्रन्थ निजातम ध्याओ, कर्म-कलंक समूल नशाओ।
रहो-रहो निर्मुक्त निराकुल निर्भय।।6।।

(21)

(तर्जः यह विधि मंगल...)

पंच-परम पद मंगलकारी, भव्य भजो नित ही सुखकारी।
अरहंत अनन्त चतुष्टय धारी,वीतराग तिहुँ, जग हितकारी।।1।।
सकल कर्म-रिपु सिद्ध निवारी, निजपद दर्शावे अविकारी।
आचारज छत्तीस गुण धारी, सकल संघ नायक दुखहारी।।2।।
उपाध्याय शिक्षा मनहारी, देवें शिष्य लें शिवकारी।
मूल अट्ठाईस गुण के धारी, साधु जजों जन आनन्दकारी।।3।।
दुर्धर ब्रह्मचर्य व्रतधारी, सम्यक् रत्नत्रय दातारी।
पंच-परमेष्ठी के गुण गावें, वे निश्चय ही शिव पद पावें।।4।।

(22)

मंगलमय निजरूप महान, मंगल परमेष्ठी भगवान।
सिद्ध पितामह तुल्य सुजान, श्री अरहंत पिताजी मान।। 1।।
मंगलमय माता जिनवाणी, चाचा तुल्य साधुजन जान।
सम्यग्दृष्टि सहोदर मान, शिष्यादिक सन्तान समान।। 2।।
व्यवहारिक कुटुम्ब यह जान, निश्चय कुटुम्ब स्वयं में जान।
मंगल चैत्य-चैत्यालय जान, श्री जिनधर्म महा सुखखान।।3।।

मंगल सप्त तत्त्व पहिचान, मंगल स्व-पर भेद-विज्ञान।
मंगल निर्मल निज श्रद्धान, मंगलमय है सम्यग्ज्ञान।। 4।।
सम्यक् चारित्र सुख का धाम, निश्चय मंगल निज को मान।
निज का निज से हो कल्याण, आत्मन् निज का कर श्रद्धान।।5।।

(23)

हमारे प्रभु परमेष्ठी अविकार।
पाँचों पद के पैंतीस अक्षर, मंत्र जपो नवकार।। टेक।।
सिद्ध प्रभु-गुण आठ सुमरि ले, श्री जिनेन्द्र छियालीस।
श्री सूरि-गुण छत्तीस राजें, उपाध्याय पच्चीस।।
मूल अट्ठाईस सर्व साधु के कहता नय व्यवहार।। 1।।
निश्चय से गुण अनन्त विराजें, उनका कथन न होय।
केवलज्ञान प्रकट होते ही, खुद प्रतिबिम्बित होय।।
अतः भाव निज स्वानुभूति से, गहो महा सुखकार।। 2।।
परमेष्ठी निज रूप बतावें, जानत दुःख मिट जाय।
सुखमय शिवपद प्रीति जगे, उर मोह जाल कट जाय।।
तातें श्री गुरु कहत भव्य! उर निज परमेष्ठी धार।। 3।।

(24)

श्री देव-शास्त्र-गुरु भक्ति

(तर्जः जैसो गुरुवर करें उपकार ...)

जैसो समकित महा सुख दान, दूजो कोई नहीं।। टेक।।
सच्चे देव-शास्त्र-गुरु ध्यावो, हिरदै श्रद्धा और न लावो।
जैसा जिनवाणी बतलावे, तामे शंका नेक न लावो।।
जो तप धर्म करो मन भावो, सुख तामें न चाहो बुधवान।। 1।।

काय मलिन लखि गुण न चितारे, हिरदै तत्त्व कुतत्त्व विचारे।
साधर्मी के दोष छिपा रे, डिगते को तू धर्म दृढ़ारे।।
धर्मिन देख मोद मन धारे, जिनधर्म दिपावों सु भानु।। 2।।
तुम ना ज्ञान गर्व उर धारो, ना कुल, पूजा, जाति उचारो।
धन के बल को क्या पतियारो, क्या तप,देह गर्व विस्तारो।।
ये सब गर्व समझ परिहारें, यासों समकित होत अम्लान।। 3।।
कुगुरु-कुदेव-कुवृष न ध्यावो, इनके सेवक को न सराहो।
छह अनायतन दूर हटाओ, ना गुरु लोक मूढ़ता ध्यावो।।
देव मूढ़ता दूर भगावो, तब ही धारो सो समकित भान।। 4।।

(25)

जय-जय जिनदेव शास्त्र सुगुरु महान।
दिखलाया मुझको, आत्म तत्त्व सुखखान ।। टेक।।
आतम ही है शाश्वत परमातम, परम गुरु आतम भाई।
द्वादशांग का सार आत्मा, आत्मधर्म ही सुखदाई।। 1।।
आतम दर्शन सम्यग्दर्शन, आत्मज्ञान ही सम्यग्ज्ञान।
आत्मलीनता सम्यक् चारित्र, ये ही जग में तीर्थ प्रधान।। 2।।
आतम ही अविनाशी मंगल, आतम ही है लोकोत्तम।
एक मात्र बस शरणभूत, निज शुद्धातम ही जाना हम।। 3।।
है मेरा सर्वस्व स्वयं में, पर में मेरा लेश नहीं।
आत्मन्! हो निश्चिंत स्वयं में, अन्य कार्य कुछ शेष नहीं।।4।।
है सम्बन्ध नहीं कुछ पर से, नहीं विकार कदापि है।
प्रभुता विभुता ध्रुवता अनुपम, सिद्ध स्वरूप सदा ही है।। 5।।

धन्य-धन्य है घड़ी आज की, ऐसा तत्त्व दिखाया है।
रहे अछिन्न अनन्तकाल, आनन्द प्रवाह बहाया है।। 6।।

(26)

अहो! जिनराज मेरे ज्ञान में हैं आये।
परमानन्द मेरे उर न समाये।। टेक।।
मोह-क्षोभ आदि सब दोषों से हीन हैं।
ज्ञानमय निज आनन्द माँहि लीन हैं।।
वीतराग देव मेरे ज्ञान में हैं आये।। 1।।
लोक अरु अलोक ज्ञान माँहि प्रतिभासे।
तीन लोक युगपत् प्रत्यक्ष भासे।।
सर्वज्ञ देव मेरे ज्ञान में हैं आये।। 2।।
नहिं होवे जिनके ज्ञप्ति परिवर्तन।
चेतन चैतन्य अरु चिद् विवर्तन।।
चिद्रूप प्रभु मेरे ज्ञान में हैं आये।। 3।।
साक्षी में प्रभुवर के शिवपन्थ जाना।
प्रभु सा ही प्रभु रूप निज में पिछाना।।
ज्ञाता स्वरूप मेरे अनुभव में आये।। 4।।
प्रभु के समान में करूँगा आराधना।
निर्ग्रन्थ साधु हो करूँगा निज साधना।।
शुद्ध भाव मेरे हृदय में जगाये।। 5।।
ज्ञायक के आश्रय से उत्कृष्ट साधक हो।
साध्य दशा पाऊँगा कोई नहिं बाधक हो।।
चरणों में भक्ति से सिर हैं नवाये।। 6।।

(27)

(तर्जः पतित पावन तरन तारन मेरी...)

देव दर्शन हुए मुझको, सहज आनन्द छाया है।
आज संसार सागर का, किनारा पास आया है।। टेक।।
अनन्तों पर्यायों में प्रभु भूल निज को मैं भटका हूँ।
सुखों की आश ले लेकर, कंटकों में ही अटका हूँ।।
विषय अंगारों से झुलसित, शरण बस प्रभु को पाया है।। 1।।
गुरु गम्भीर वाणी सुन, मैं सच्चा मार्ग पाया है।
है शुद्धातम ही इक शरण, आज विश्वास आया है।।
रत्नत्रय मार्ग ही है श्रेय, अब निज रूप भाया है।। 2।।
आत्म परिचय बिना विभुवर, पराये मोह में अटका।
विषय किंपाक में रीझा, चाह की दाह में झुलसा।।
अब अन्तस्तल में शाश्वत, सत्य का आलोक पाया है।। 3।।
सभी चेतन-अचेतन परिणमन, स्व-स्व में ही करते।
फटे में टाँग उलझाकर, व्यर्थ ही आहें हम भरते।।
अकर्त्तृत्व रूप ज्ञायक लख, दुःख सब ही पलाया है।। 4।।
कहाँ अक्षय निधि मेरी, कहाँ पर्यय विनाशी है।
कहाँ त्रिकाल सुखमय ध्रुव, कहाँ पर्यय जरा सी है।।
परिणति तुच्छ अति भासी, स्व का माहात्म्य आया है।। 5।।
धन्य हैं वे ऋषि ज्ञानी, निहारें शान्त ज्ञायक जो।
असीमित सुख प्रकट होता, रहें निज में ही स्थिर जो।।
जिन्होंने मोही भव्यों को, ज्ञान दीपक दिखाया है।। 6।।

हे भगवन् एक ही है चाह, परम ज्ञायक में रम जायें।
शीघ्र कल्पित विकारों पर, प्रभु सम हम विजय पायें।।
धन्य प्रभु रूप मंगलमय, शीश सविनय नवाया है।। 7।।

(28)

(तर्जः म्हारी दीन तणी...)

प्रभुवर ये ही भावना, मगन रहूँ निज माँहि हो।। टेक।।
निज को पहिचाने बिना, पाये दुःख अपार हो।
भेदज्ञान प्रभु दर्श तैं, अब उपज्यो सुखकार हो।। 1।।
देखन योग्य स्वरूप निज, दीख्यो प्रभुता रूप हो।
नित्य-निरंजन ज्ञानमय, शुद्ध चिद्रूप अनूप हो।। 2।।
दुर्वेदन दुर्विकल्पमय, अब तो सहो न जाय हो।
लीनी चरण-शरण प्रभु, आकुलता मिट जाय हो।। 3।।
परमानन्दमय ध्येय निज, ध्याऊँ क्षण-क्षण नाथ हो।
एकाकी निर्ग्रन्थ रहूँ, नहीं चाहूँ कुछ साथ हो।। 4।।
तृप्त निजानंद में अहो, झलके ज्ञेय अनन्त हो।
सहजहिं केवलज्ञान में, प्रभुता को नहीं अन्त हो।। 5।।
सर्व जीव आनन्दमय, समझें आत्म स्वभाव हो।
अविनाशी शिव सुख लहें, नाशें सर्व विभाव हो।। 6।।
ईति-भीति व्यापे नहीं, नहिं आधि-व्याधि हो।
अखण्ड ज्ञानमय भावना, वर्ते सहज समाधि हो।। 7।।
सहज नमन आनन्दमय निर्विकल्प जिनराज हो।
आवागमन विमुक्त हो, पाऊँ सिद्ध समाज हो।। 8।।

(29)

(तर्ज: जिनवाणी जग मैया जनम दुख मेट दो...)

तीन लोक के स्वामी, सहज सुख रूप हो।
तीन लोक के स्वामी, शुद्ध चिद्रूप हो।। टेक।।
रागादिक कर्मों से न्यारे, वीतराग अविकारी।
दर्शन ज्ञान अनन्त विराजे, सुख अनन्त बलधारी।। 1।।
ज्ञायक हुए विश्व के प्रभुवर, कर्त्ता भाव नशाया।
ज्ञायक रूप सहज अपनो लखि, आनंद उर न समाया।। 2।।
तृप्त हुआ, बाहर का वैभव प्रभु निस्सार दिखावे।
दर्शन पाकर अहो जिनेश्वर! चाह दाह विनशावे।। 3।।
कैसे भक्ति करूँ आपकी, गुण अनन्त विलसन्त।
सहज नमन हो, भाव नमन हो, होवे भव का अन्त।। 4।।

(30)

(तर्ज: अजित जिनेश्वर साँचे ईश्वर ...)

अहो जिनेश्वर! हे परमेश्वर! परम शरण सुखकार तुम्हीं।
भव सागर में नाव पड़ी है, साँचे तारणहार तुम्हीं।। टेक।।
अरे! स्वार्थमय बाह्य जगत से, दिखे नहीं कुछ नाता है।
अवलम्बन जिसका भी लेवें, भव में वही फँसाता है।।
बिन स्वारथ के तुम्हीं हितैषी, मोह नशावनहार तुम्हीं।। 1।।
शुद्ध तत्त्व को नहीं पिछाना, पर में ही भरमाया था।
तत्त्वज्ञान की कला सिखाकर, प्रभुवर! तुम्हीं जगाया है।।
प्रभु प्रसाद से निज पद जाना, बंध छुड़ावनहार तुम्हीं।। 2।।

दिव्य दर्श पाकर हे स्वामी! सम्यक् भेदविज्ञान हुआ।
अपनी अक्षय प्रभुता देखी,अक्षय सुख का भान हुआ।।
हो निर्ग्रन्थ रमूँ निज में ही, मार्ग दिखावनहार तुम्हीं।। 3।।
अहो! आपका शासन पाया, भव में नहीं भरमाऊँगा।
हुआ सहज विश्वास महेश्वर, निश्चित शिवपद पाऊँगा।।
भाव नमन हो, द्रव्य नमन हो, शाश्वत पद दातार तुम्हीं।। 4।।

(31)

(तर्जः अरहंत सा कोई दाता नहीं है ...)

प्रभु आप सा कोई दाता नहीं है।
जो ध्याता है वह कष्ट पाता नहीं है।। टेक।।
प्रभो! है तुम्हारी तो नासाग्र दृष्टि,
मिटी है समस्त विकारों की सृष्टि।
कि इस जग में तुझसा सुहाता नहीं है।। 1।।
धर्मरूप अमृत की तुमसे हो वृष्टि,
जिसे पान कर हों सुखी भव्य सृष्टि।
मुझे तुम सिवा कुछ सुहाता नहीं है।। 2।।
तुम्हीं हो प्रभु देव देवों के देवा,
करें भक्ति सेवा लहे ज्ञान मेवा।
उसे फिर करम भी सताता नहीं है।। 3।।
गुण-द्रव्य-पर्याय से जान ले जो,
तुम सा ही निज को श्रद्धान ले जो।
उसे मोह मिथ्यात्व आता नहीं है।। 4।।
भेदज्ञान होता है लखने से तुमको,

पद तुम सा मिलता है भजने से निज को।
फिर वह जगत में भ्रमाता नहीं है।। 5।।
हे प्रभु! तुम्हीं सा मैं श्रद्धान धारूँ,
निज को ही साधूँ, सभी कुछ विसारूँ।
मुझे अब विषय सुख भाता नहीं है।। 6।।

(32)

धन्य प्रभो दर्शन कर मैं निज तत्त्व लखाया।
निज से निज में शान्तिमयी शिव पंथ सुझाया।। 1।।
झूठी पर की आश मिटी, स्व-पर विवेक जगाया।
हो निशंक निज नाथ जिनेश्वर शीश नवाया।। 2।।
पामर परिणति होते भी, प्रभु रूप दिखावे।
प्रभुता के आश्रय से, पामरता नश जावे।। 3।।
पर्याय भी प्रभु बने, अलौकिक तत्त्व आपका।
हुआ आज विध्वंस दुखमय मोह पाप का ।। 4।।

(33)

(तर्जः शोभे समवशरण सुखकार प्रभु का ...)

शोभे प्रभु स्वरूप अविकार।
निज स्वरूप देखन को निर्मल दर्पण सम सुखकार।। टेक।।
दर्शन-ज्ञान अनन्त सु शोभें, सुख भी अनंत अपार।
वीर्य अनन्त प्रगट भयो स्वामी, प्रभुता को नहीं पार।। 1।।
ज्ञाता-दृष्टा रहो सहज ही, नहीं कर्तृत्व विकार।
अहो! परम निर्दोष जिनेश्वर, नहीं रागादि लगार।। 2।।
इन्द्रादिक चरणों में नत हैं, महिमा अपरम्पार।

वंदन स्तुति भेदज्ञान कर, लहें आनंद अपार।। 3।।
सहज चतुष्टयवन्त पूज्य प्रभु, चित्स्वरूप अविकार।
लख अन्तर में सहजपने ही, होय नमन सुखकार।। 4।।

(34)

(तर्ज: जन्म मरण का दुखिया...)

सुनलो प्रभु अरज हमारी, मोहि जिनवर शरण तुम्हारी।। टेक।।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु तुम, अशरण शरण कहाते हो।
शरणागत आए आत्मार्थी, वापस ना लौटाते हो।।
निरखत ही निज ज्योति जगे, निज आनन्द होत अपारी।। 1।।
चिदानन्द चिद्रूप अनुपम, अचल अमल अविनाशी हो।
शाश्वत निज सुख दिखा रहे, तुम स्वाभाविक सन्यासी हो।।
ऐसो ही प्रभु हमको दीजो, शाश्वत सुख अविकारी।। 2।।
मैं हूँ एक अरूपी पूरण, शुद्ध सर्वज्ञ स्वभावी हूँ।
भाव शुभाशुभ रहित आत्म ध्रुव,कारण समय स्वरूपी हूँ।।
अनेकान्त स्व-चतुष्टय ज्ञायक, सिद्ध स्वयं अविकारी।। 3।।
धन्य जनम श्रावक कुल पायो, धन्य सु संगति जिनगुरु की।
धनि जिनवाणी ज्ञान कला,सिखलायी हमको निज गुण की।।
धन्य भयो मैं आज प्रभु जी, आप मिले भवतारी।। 4।।

(35)

(तर्ज: केशरिया चावल रंगवा दो ...)

नाथ तेरी पूजा को मैं आऊँ।। टेक।।
थारी पूजा करते बहु दिन बीते, निज की पूज रचाऊँ।
तुम जैसा स्वभाव है मेरा, उसको अब लख पाऊँ।। 1।।

तुम सी निज स्वभाव रुचि करके, और सभी विसराऊँ।
राग-द्वेष दु:ख द्वन्द्व तोरिके, निज में ही रम जाऊँ।। 2।।
तजि भव फाँसी हो निज वासी, नाशा दृष्टि लगाऊँ।
निज की प्रभुता निज से ही प्रभु, निज में ही प्रगटाऊँ।। 3।।
जब तक ऐसी दशा नहीं भई, नित जिन दर्शन पाऊँ।
तेरी स्थिरता लखकर प्रभु, निज पुरुषार्थ बढ़ाऊँ।। 4।।

(36)

(तर्ज: निर्ग्रन्थ महा मुनिराज आज मैंने सपने में ...)

मेरी परिणति में आनन्द अपार, नाथ तेरे दर्शन से।
दर्शन से, तेरे दर्शन से।। टेक।।

मूरति प्रभु कल्याणरूप है, स्वानुभूति की निमित्तभूत है।
भेद-विज्ञान हो सुखकार, नाथ तेरी वाणी से।। 1।।
अनादिकाल का मोह नशाया, निज स्वभाव प्रत्यक्ष लखाया।
प्रभु मोह नशे दु:खकार, शुद्धातम दर्शन से ।। 2।।
रागादिक अब दु:खमय जाने, ज्ञान भाव सुखमय पहिचाने।
मैं तो आज लखो भवपार, नाथ तेरे चिन्तन से।। 3।।
तीन लोक तिहुँ काल मँझारा, निज शुद्धातम एक निहारा।
शिव स्वरूप शिवकार, नाथ तेरे दर्शन से।। 4।।
तोड़ सकल जग द्वंद्व-फंद प्रभु, मैं भी निज में रम जाऊँ विभु।
भाव अहो अविकार, नाथ तेरे दर्शन से।। 5।।

(37)

प्रभु को देखें भक्ति उल्लसे।। टेक।।
धन्य स्वरूप है, धन्य है परिणति,

धन्य है मुद्रा, धन्य है वाणी।
धन्य भयो मैं जिनदर्शन से।। 1।।
धन्य अलौकिक अंतरंग वैभव,
अद्भुत जग में बाहरी वैभव।
इन्द्रादिक चरणों में नमते।। 2।।
चरण नखों की दिव्य प्रभा से,
इन्द्रादिक के मुकुट प्रकाशे।
लोकालोक ज्ञान में भासे।। 3।।
समवशरण की शोभा न्यारी,
देखत भागें भाव विकारी।
अन्तरीक्ष निर्लिप्त विराजे।। 4।।
भक्त निहारें प्रभो आपको,
आप निहारें स्वयं आपको।
अविचल अन्तर्दृष्टि धरते।। 5।।
प्रभो! आपके ही प्रसाद से,
निज प्रभुता निज में ही दरसे।
परमानन्द प्रगट्यो अनुभव से।। 6।।
अहो! अहो!! आदर्श हो जिनवर,
दशा आपसी होवे सत्वर।
भक्ति सहित चरणों में नमते।। 7।।

(38)

ना जाने कितना सुख प्रभु को, नयन पलक नहिं मारें।
निर्निमेष नासाग्र दृष्टि धर, आपहि आप निहारें।। टेक।।
स्वयं-स्वयं में तृप्त रहें नित, शांत दशा प्रभु कहती,
दर्शन करते भव्यजनों के, ज्ञान ज्योति उर जगती।
धन्य दशा है आत्म ध्यान की, सर्व विभाव निवारें।। 1।।
निर्विकार श्रृंगार बिना, तन नग्न दिगम्बर सोहे,
अस्त्र-शस्त्र की नहीं जरूरत प्रभु को, बैरी को है।
अहो! जितेन्द्रिय परम अतीन्द्रिय, आतम रूप संभारे।। 2।।
दर्शन ज्ञान अनन्त है जिनका, है सुख वीर्य अनन्त,
शक्ति अनन्त सु व्यक्त हुई है, प्रभुता को नहीं अन्त।
ज्ञानानन्दमय, परमानन्दमय, शुद्धातम रूप निहारें।। 3।।

(39)

नाथ मोहि ऐसी शक्ति हो।
ध्याऊँ शुद्ध स्वरूप अपना, चित्त न विचलित हो।। टेक।।
भावे शान्त दशा तुम स्वामी, और न कछु सुहाय।
रहूँ मग्न अपने स्वरूप में, यही भाव उमगाय।। 1।।
पापोदय में नहीं घबराऊँ, पुण्योदय नहीं चाहूँ।
पाप-पुण्य भावों से न्यारा, चित्स्वरूप नित भाऊँ।। 2।।
नहीं अभिलाषा ख्याति लाभ की, रहूँ सहज निर्ग्रन्थ।
हो निःशंक एकाकी निस्पृह, चलूँ मुक्ति के पन्थ।। 3।।
सहज स्व-संवेदन आनंदमय, वर्ते काल अनंत।

तुष्ट स्वयं में तृप्त स्वयं में, स्वयं सदा विलसंत।। 4।।
तुमसे स्वामी पाये उर में, आनंद अपरम्पार।
द्रव्य नमन हो, भाव नमन हो, सहज नमन अविकार।। 5।।

(40)

धन्य है स्वरूप प्रभु, धनि स्वरूप लीनता।
धन्य वीतरागता, धन्य सर्वज्ञता।। टेक।।
सहज ज्ञानगम्य प्रभु, ज्ञानमय स्वरूप है।
ज्ञानमयी परिणमन, परमानंद रूप है।। 1।।
अहो! कर्त्तृत्व शून्य, परम कृतकृत्य रूप।
दिव्य रूप शान्तरूप, निर्विकल्प चित्स्वरूप।। 2।।
विश्व रूप तेजपुंज, एक रूप ज्ञान रूप।
ध्येय रूप ज्ञेय रूप, सहज समयसार रूप।। 3।।
हेय रूप पक्ष शून्य, सहज आराध्य रूप।
दर्शकर देखते भव्य निज आत्म रूप।। 4।।
धन्य हुआ तृप्त हुआ, जिनराज दर्श से।
सहज पाऊँ प्रभु स्वरूप,परम आह्लाद से।। 5।।
भावना यही सहज स्वरूप रमण हो प्रभो।
हूँ निःशंक शांत चित्त, भाव नमन हो प्रभो।। 6।।

(41)

(तर्ज : जिनवर की परमार्थ भक्ति करेंगे...)

आया है अवसर भक्ति करेंगे।
प्रभु सम ही अन्तर्दृष्टि धरेंगे।। टेक।।
प्रभु गुण गायें, भेद-ज्ञान पायें,

अज्ञानमय दुर्विकल्प नशायें।
आतम परमातम है, अनुभव करेंगे।। 1।।
प्रभु दर्शन कर भाव उमगता,
ज्ञान-वैराग्य सहज ही बढ़ता।
अकर्त्ता हो, हाथ पर हाथ धरेंगे।। 2।।
जगत विभव निस्सार दिखाया,
विषयों का सब राग नशाया।
निर्ग्रन्थ हो, मुक्ति साधन करेंगे।। 3।।
परम ब्रह्ममय रूप हमारा,
चिदानंद चिद्रूप अविकारा।
सहज परम ब्रह्मचर्य धरेंगे।। 4।।
अशरण जगत में एक शरण है,
ज्ञायक ही साँचा तारण-तरण है।
ज्ञायक के आश्रय से भव से तिरेंगे।। 5।।
उपकार आपका कैसे हम गायें,
भक्ति भाव से शीस नवायें।
पावें परम पद, तृप्त रहेंगे।। 6।।

(42)

(तर्ज : तुमसे लागी लगन...)

जब से प्रीति लगी, ज्ञान ज्योति जगी, जिनवर प्यारा।
छूटा-छूटा जी संशय हमारा।। टेक।।
पल नहिं छोड़ूँ शरण, सुखकर तेरे चरण, संकटहारा।
हमने आतम स्वरूप निहारा ।। 1।।

अब तक पर को थे अपना बताकर ,जड़-चेतन का भेद न पाकर।
जीवन खोया वृथा, पाली मिथ्या प्रथा, धर्म विसारा।। 2।।
पाई दर्शन से सच्ची निधि है,सुखकर ग्रन्थों से वरणी विधि है।
सम्यक् ज्ञानी बनें, आत्म ध्यानी बनें, दृढ़ चित धारा।। 3।।
मोह ममता को दूर भगावें, होके मुनिवर निजातम को ध्यावें।
आवे कब वह घड़ी, टूटे कर्मन लड़ी, मंगलकारा।। 4।।
निज को निज में ही निशदिन ध्यावें,मुक्ति का राज्य निज में ही पावें।
विकृति सब तजें, सिद्धालय में बसें, निर्विकारा।। 5।।

(43)

नाथ तेरी वीतराग छवि भावे।
रागादिक तें भिन्न ज्ञानमय, निज महिमा दरशावे।। टेक।।
सिन्धु-यान-पक्षी सम प्राणी, चहुँगति शरण न पावे।
ज्ञानभाव की महाशरण से, अविचल पद प्रगटावे।। 1।।
तुम दर्शन कर, मुक्तिमार्ग पा, मेरो मन हरषावे।
तुम सम ही निज में थिर होऊँ, यही भाव उमड़ावे।। 2।।
अखिल विश्व मम ज्ञेय मात्र हो, मोह क्षोभ नहीं आवे।
निजानन्द में तृप्त परिणति, परम साम्य प्रभु पावे।। 3।।
हे आसन्न उपकारी जिनवर, 'आत्मन्' शीस नवावे।
मुक्त-मुक्त मैं सदा मुक्त हूँ, आनंद उर न समावे।। 4।।

(44)

(तर्ज : तिहारे ध्यान की मूरत...)

परम सौभाग्य है जिनवर, दर्श आनंदमय पाया।
सहज अनुभूति निज प्रगटी, निजानंद सिंधु उछलाया।। टेक।।

अनन्तानन्त शक्तियाँ उछलती, देखी अन्तर में।
हुआ सन्तुष्ट निज में ही, प्रभो! सर्वांग विलसाया।। 1।।
अहो! अव्यक्त निज स्वरूप, हुआ व्यक्त हे स्वामी।
आप सम आपकी प्रभुता, लखी मम चित्त हुलसाया।। 2।।
विदेही रूप निज देखा, अहो! निष्कर्म नीरागी।
हुआ अन्तर्मुखी निर्मद कि जाननहार जनाया।। 3।।
अहो! निष्काम निरंजन, सहज चिद्‌ब्रह्म प्रभु निहारा।
हुआ निष्पाप अति पावन, परम ब्रह्मचर्य पाया है।। 4।।
अहो! सर्वस्व पाने योग्य, पाया है स्वयं में ही।
छूटने योग्य सब छूटा, नमन अद्वैत है भाया।। 5।।

(45)

जयवन्तो जिनराज, जयवन्तो जिनराज।
महाभाग्य से दर्शन पाये, सफल भये सब काज।। टेक।।
तीनलोक में जीव अनंत, सुख चाहें दुःख से भयवंत।
प्रभुवर दर्शायो शिवपंथ, शाश्वत सुखरूप भगवंत।। 1।।
तत्त्व प्रयोजनभूत बताये, हेयादेय सर्व समझाये।
कियो जिनेश्वर परम उपकार, तुम ही साँचे तारणहार।। 2।।
दिखे सर्व संसार असार, तजें परिग्रह का विस्तार।
धारें निर्ग्रन्थ पद अविकार, ध्यावें समयसार सुखकार।। 3।।
पुण्य-पाप बंधन विनशाय, निज अक्षय प्रभुता प्रगटाय।
यही भाव धर नावें शीस, चरणन माँहि अहो जगदीश।। 4।।

(46)

(तर्जः वीरनाथ का मंगल शासन...)

जयवंतो भगवंत जगत में, जयवंतो भगवंत रे।
जयवंतो अरहंत जगत में, जयवंतो अरहंत रे।। टेक।।
तुम्हारे दर्श-ज्ञान-सुख-वीरज, प्रगट भये सु अनंत रे।
लोकालोक ज्ञान में स्वामिन्, सहज रूप झलकंत रे।। 1।।
सर्व दोष बिन वीतराग छवि, इक टक निरखत भवि रे।
स्वानुभूति की निमित्तभूत है, परम शांत विलसंत रे।। 2।।
अहो! आपकी दिव्यध्वनि में, धर्म तीर्थ प्रगटंत रे।
ध्वनित होय शाश्वत शुद्धातम, अनुपम महिमावंत रे।। 3।।
धन्य भाग्य पहिचाना प्रभु निज, चिदानंद भगवंत रे।
स्वाश्रय से सब कर्म नशावें, लहें सु भव का अंत रे।। 4।।

(47)

(तर्जः मनवा म्हारो लाग्यो...)

मेरा मन उमगे प्रभु दर्शन को, दर्शन को, स्पर्शन को।। टेक।।
प्रभु की मूरति मंगलकारी, मोह महातम नाशनहारी।
सम्यक् ज्ञान कला सिखलाती, अनुपम ज्ञायक रूप दिखाती।। 1।।
जग में कोई शरण न पाया, भरमाया था अति अकुलाया।
प्रभु को पा मन शांत हुआ है, सहज रूप संतुष्ट हुआ है।। 2।।
भव-भव का सब क्लेश नशाया, मुक्तिमार्ग जिनवर से पाया।
विषय सुखों की चाह नहीं है, कर्मों की परवाह नहीं है।। 3।।
जिनवर अहो परम उपकारी, भाव वंदना हो अविकारी।
तुम समान समवृत्ति धारी, होऊँ मैं चैतन्य विहारी।। 4।।

(48)

(तर्जः घड़ी जिनराज दर्शन की...)

दर्श जिनराज का पाया, सहज आनंद विलसाया।
सर्व संक्लेश विनशाया, भ्रमण का अंत ही आया।। टेक।।
प्रभो! दर्शन का फल पाऊँ, दशा निर्ग्रन्थ प्रगटाऊँ ।
स्वयं में तृप्त हो जाऊँ, स्वयं में लीन हो जाऊँ ।।
यही इक भाव उमगाया।। सहज.।। 1।।
उपाधिमय है संसारा, देव! प्रत्यक्ष निहारा।
सर्व सम्बन्ध हैं झूठे, सर्व संकल्प हैं झूठे।।
विकल्पों में न सुख पाया।। सहज.।। 2।।
आपको देखते जिनवर, मिटा दुर्मोहतम सत्वर।
स्वानुभूति सु प्रगटाई, प्रतीति तत्त्व की आयी।।
समाधिमय स्वपद भाया।। सहज.।। 3।।
सहज निश्चिंत हो स्वामी,सहज निर्द्वन्द्व हो स्वामी।
शुद्ध चिद्रूप नित ध्याऊँ, परिणति आप सम पाऊँ ।।
सत्य जिनमार्ग मन भाया।। सहज.।। 4।।
कहूँ उपकार प्रभु कैसे? कहूँ माहात्म्य प्रभु कैसे।
आप सम आपको जाना, हृदय जिनरूप में साना।।
शीस चरणों में प्रभु नाया।। सहज.।। 5।।

(49)

(तर्जः प्रभु बाहुबली ऐसा बल हो...)

जिनवर भक्ति आनंदमय हो, चरणों में शीस नवाते हैं।
हम यही भावना भाते हैं।। टेक।।

हे वीतराग सर्वज्ञ देव, इन्द्रादिक करते चरण सेव।
प्रभु धर्म तीर्थ आनंदकार, प्रगटे परिणति हो निर्विकार।।
हम यही भावना भाते हैं।। 1।।
प्रभु के चरणों का संबल हो, अंतर में दृष्टि का बल हो।
कर्मों की कुछ परवाह न हो, इन्द्रिय-विषयों की चाह न हो।।
हम यही भावना भाते हैं।। 2।।
बाहर में कुछ न सुहाता है, अंतर का आनंद भाता है।
निरपेक्ष रहें निर्द्वन्द्व रहें, निष्काम रहें, निःसंग रहें।।
हम यही भावना भाते हैं।। 3।।

(50)

(तर्ज: जिनगुण गाओ हर्षाओ...)

जिनवर दर्शन मंगलकारी, जिनवर भक्ति मंगलकारी।
जिनवर वाणी मंगलकारी, जिनवर धर्म सु मंगलकारी।। टेक।।
महाभाग्य से हमने पाया, जिनवर दर्शन मंगलकारी।
महा हर्ष से हम भी गावें, जिनवर भक्ति मंगलकारी ।। 1।।
महानंद से सुनें-सुनावें, जिनवर वाणी मंगलकारी।
महाभाव से हम भी धारें, जिनवर धर्म सु मंगलकारी।। 2।।
जिनदर्शन सम्यक्त्व का कारण,भक्ति करें सब पाप-प्रक्षालन।
जिनवाणी सद्बोध जगावे, धर्मी सहज मुक्ति-पद पावे।। 3।।
हम सब भक्ति भाव से आवें,भाव विशुद्धि सहज बढ़ावें।
निर्मल भेदज्ञान प्रगटावें, ज्ञानमयी अनुभूति जगावें।। मगंलकारी।।4।।
प्रभु चरणों में जो नम जाये,निज स्वरूप में ही रम जाये।
सफल उन्हीं का जग में जीवन, पावन करता उनका सुमिरन।।5।।

(51)

(तर्जः गाओ-गाओ-गाओ जिनशासन की महिमा...)

गाओ-गाओ-गाओ, जिनवर के गुण गाओ।
ध्याओ-ध्याओ-ध्याओ, ध्रुव शुद्धातम ध्याओ।। टेक।।
चिर से भ्रमते-भ्रमते, भगवान नहीं पाये।
निज प्रभु को जाने बिन, भव-भव में भरमाये।।
अति पुण्योदय आया, प्रभु पाये हरषाओ।। 1।।
सुन्दर मुद्रा प्रभु की शिव मग दरशाय रही।
जिनवाणी निज-पर का ज्ञान कराय रही।।
तत्वों को पहिचानो, सम्यक् श्रद्धा लाओ।। 2।।
भोगों में सुख नहीं, परिग्रह से प्रभुता ना।
ज्ञेयों से ज्ञान नहीं, पर से कुछ महिमा ना।।
आदेय- हेय का रे, कुछ तो विवेक लाओ।। 3।।
इच्छाएँ दुःख का मूल, सम्भव न पूर्ति इनकी।
इनका अभाव करके, पाओ सु दशा जिन सी।।
स्वाधीन सु आनंदमय, जिनमारग में आओ।। 4।।
प्रभु की भक्ति लाओ, गुरुओं का संग करो।
जिनवाणी अभ्यासो, निज पद का ध्यान धरो।।
संकल्प-विकल्प न हों, जिनशासन अपनाओ।। 5।।
पर की आशा छोड़ो, जग के प्रपंच त्यागो।
निर्ग्रन्थ रूप अपना, निज में ही चित पागो।।
सब कर्म कलंक मिटें, अक्षय प्रभुता पाओ।। 6।।

(52)

(तर्जः जिनवाणी अमृत...)

आओ हम सब मिल आज, जिनवर भक्ति करें।। टेक।।
भक्ति करत सब पाप कटत हैं, पाप कटत हैं, पुण्य बढ़त है।
भेद-विज्ञान प्रगटाय।। जिनवर.।। 1।।
परिणति रागादिक से न्यारी, प्रभुता प्रभु की मंगलकारी।
अद्भुत सुख उपजाय।। जिनवर.।। 2।।
हरष-हरष प्रभु के गुण गावें, गुण गावें, आनंद मनावें।
धर्म प्रभावना बढ़ाय।। जिनवर.।। 3।।
प्राणिमात्र प्रति मैत्री भाव, साधर्मी प्रति प्रीति भाव।
सहज रूप दरशाय।। जिनवर.।। 4।।
दुखीजनों पर करुणा धार, भिन्नों प्रति माध्यस्थ सम्हार।
आराधन चित लाय।। जिनवर.।। 5।।
भाव सहित हम शीस नवावें, सम्यक् तत्त्व भावना भावें।
आवागमन मिटाय।। जिनवर.।। 6।।

(53)

(तर्जः ते गुरु मेरे उर...)

प्रभुवर तुम साक्षी अहो, पाऊँ पद अविकार।
निर्विकल्प आनंदमय, रहूँ मैं जाननहार।। टेक।।
अद्भुत महिमा आपकी, अद्भुत है प्रभु ज्ञान।
ज्ञान-ज्ञानमय ही रहे, झलके सकल जहान।। 1।।
नाहिं मलिनता ज्ञेयकृत, नाहिं उपाधि कोय।
निर्विकल्प आनंदमय,प्रभु तुम सम परिणति होय।। 2।।

स्वयं-स्वयं में तृप्त हो, स्वयं-स्वयं में मग्न।
स्वाश्रित परमानंद में, कभी न किंचित् विघ्न।। 3।।
होना हो सो हो सहज, निर्विकार प्रभु आप।
ज्ञाता रूप रहो सदा, उपजे पुण्य न पाप।। 4।।
निजानंद रस भोगते, अन्य न कोई भोग।
परम ब्रह्मचर्य प्रगट है, तिहुँ जग माँहि मनोज्ञ।। 5।।
दर्शायो निज रूप प्रभु, कियो परम उपकार।
होवे निज में लीनता, वंदन हो अविकार।। 6।।
पुण्य पाप के स्वांग सब, देख लिए जिनराज।
अब वांछा कुछ ना रही, शरण गही प्रभु आज।। 7।।
जाननहार स्वरूप निज, प्रत्यक्ष रह्यो जनाय।
निर्विकल्प आनंद भयो, भेद न कछु दिखाय।। 8।।

(54)

(तर्जः निर्ग्रन्थ महा मुनिराज...)

कोई महिमा है अद्भुत नाथ, कैसे वचन से कहूँ।। टेक।।
निज आतम में ही सुस्थित हो, लोकालोक झलकाय।
तो भी प्रभु निर्भार तृप्त हो, सुख अनंत विलसाय।। 1।।
दर्शन कर दिव्यध्वनि सुनकर, भविजन शिवमग पाय।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, कर्त्तापन नहीं थाय।। 2।।
बिन श्रृंगार परम शोभित हो, देखत चित हरषाय।
भेदज्ञान हो, शुद्धातम ही सर्वोत्तम दिखलाय।। 3।।
इन्द्रियादि बिन ज्ञान अनंता, भोगों बिन आनंद।
बाह्य विभूति बिना ही प्रभुता, सहजहिं शीश नमंत।। 4।

(55)

(तर्जः जिन देख मगन भयो...)

प्रभु रूप लखत मेरे सुमति भयी।। टेक।।

देह, कर्म, रागादिक न्यारे, मैं चिन्मूरति ज्ञानमयी।
अक्षय प्रभुता अंतर में ही, दिखी परम आनंदमयी।। 1।।
सर्व विकल्प असार दिखावें, भोग लगें अति दुःखमयी।
मिथ्या जगत प्रपंच न भावें, परिणति भई संवेगमयी।। 2।।
धन्य-धन्य प्रभु दशा आपकी, अद्भुत ज्ञान विरागमयी।
शीस नवाऊँ भावना भाऊँ, प्रगटे प्रभुता ज्ञानमयी।। 3।।

(56)

(तर्जः जिन गुण गाओ हर्षाओ ...)

निज निधि पाई प्रभु सुखदायी।। टेक।।

नाथ आपका दर्शन पाकर, मुझको मेरी सुधि आयी।
तृप्त हुआ संतुष्ट हुआ अति जब दृष्टि निज में आयी।। 1।।
स्वयं सिद्ध निज भाव निरखकर, निर्भयता उर प्रगटायी।
जन्म-मरण का भय न रहा कुछ, अविनाशी प्रभुता पायी।।2।।
हो निस्पृह निर्ग्रन्थ जिनेश्वर, ध्याऊँ पद आनंददायी।
शुक्लध्यान प्रगटे अविकारी, कर्मबंध सब विनशायी।। 3।।
यही भाव कछु और न चाहूँ, लीन रहूँ अपने माँही।
अहो! परम उपकारी जिनवर, होय नमन मंगलदायी।। 4।।

(57)

धन्य-धन्य जिनरूप अहो,
धन्य-धन्य प्रभु रूप अहो।

भक्ति उर में सहज उमड़ती,
दिखे सहज निज रूप अहो।। 1।।
इन्द्रादिक गणधर आदिक भी,
भक्ति आपकी गाते हैं।
हर्ष विभोर हुए चरणों में,
विभुवर शीस नवाते हैं।। 2।।
जग में अनुपम तीर्थ आपका,
महाभाग्य से पाया है।
अचल सिद्धपद तुम सा प्रगटे,
प्रभु विश्वास जगाया है।। 3।।
अन्तर्दृष्टि करे प्रेरणा,
अंतर में सर्वस्व अहो।
दुर्विकल्प सब ही दुखकारी,
सहज पूर्ण चैतन्य प्रभो।। 4।।
नित्य निरंजन परम ज्योतिमय,
ज्ञानानंदमयी अभिराम।
सहज नमन हो यही भावना,
निज में ही पाऊँ विश्राम।। 5।।

(58)

(तर्ज: प्रभु हम सब का एक...)

अहो! जिनेश्वर तुम ही मेरे साँचे तारणहार हो।
प्रभु चरणों के ही प्रसाद से जाना जाननहार हो।। टेक।।

महाभाग्य से प्रभु को पाया, आनंद मेरे उर न समाया।
ज्ञान प्रकाश हुआ अंतर में,मिटा मोह अंधियार हो।। 1।
कैसे भक्ति करूँ तुम्हारी, वीतराग हो परम उपकारी।
प्रभु पथ का अनुशीलन करके, होऊँ भव से पार हो।। 2।।
अहो अतीन्द्रिय ज्ञान हुआ प्रभु, अहो अतीन्द्रिय सुख हुआ प्रभु।
सहज तृप्त संतुष्ट हुआ प्रभु, निर्विकल्प अविकार हो।। 3।।
आराधन में जीवन अर्पित, हुआ स्वयं में स्वयं समर्पित।
सहजभाव से करूँ वंदना, चाह न रही लगार हो।। 4।।

(59)

(तर्जः मैं परम दिगम्बर साधु के गुण...)

मैं वीतराग सर्वज्ञ प्रभु गुण गाऊँ रे।
नीराग ज्ञानमय ज्ञायक भाव सु पाऊँ रे।। टेक।।
तज गृहस्थपना दुःखकारी, मुनिधर्म धर्यो सुखकारी।
मैं भी रागादिक भाव असार लखाऊँ रे।। 1।।
प्रभु निज स्वभाव साधन से, चहुँ घाति कर्म क्षय करके।
जिन अनंत चतुष्टय पाया, शीस नवाऊँ रे।। 2।।
नहीं शस्त्र-वस्त्र श्रृंगार, कर्मादि न अंग विकार।
लख सौम्यदशा प्रभु, सहज शान्तता पाऊँ रे।। 3।।
प्रभु समवशरण सुखकारी, अतिशय बहु विस्मयकारी।
जो धर्म तीर्थ प्रगटाया, मैं भी पाऊँ रे।। 4।।
दुखमय इस अशरण जग में, प्रभु तुम्हीं शरण देखे मैं।
जिनशासन से ही सहज मुक्त पद पाऊँ रे।। 5।।

(60)

(तर्जः कह सकूँ नहीं हुआ मोहि...)

कल्पतरू से प्राप्त भोगों की न किंचित् चाह है।
दर्शन जिनराज प्रशमित हुई अन्तर्दाह है।। 1।।
चिन्तामणि पाषाण-पारस, दिखें सब निस्सार हैं।
अज्ञानमय ये पुण्य वैभव अरे तृष्णाकार हैं।। 2।।
दर्शकर संतोष अमृत पीऊँ प्रभुवर चाव सों।
निःशल्य हो साधूँ परम पद परम आनंद भाव सों।। 3।।
तुम तेज को नहीं सूर्य पावे कान्ति को नहीं चन्द्रमा।
गम्भीरता न समुद्र पावे, हो अनूपम जगत सौं।। 4।।
तुम ध्यान से दुर्ध्यान नाशें, सर्व मंगल होय हैं।
जो दर्श करते भाव सों, वे दर्शनीय सु होय हैं।। 5।।
हो पूजनीय स्वयं अहो, पूजा सु करि जिनराज की।
अनुसरण करते आपका हो प्राप्ति सिद्धि समाज की।।6।।
बहिरंग दुखों की क्या कहें, दुख सर्व ही विनशात हैं।
जिनवर चरण की शरण से, आनंदतरू सरसात हैं।। 7।।
धनि-धनि हुआ प्रभु दर्श सों जान्यो सु जाननहार है।
वर्तूं सु जाननहार सहजहिं वंदना अविकार है।। 8।।

(61)

(तर्ज : कह सकूँ नहिं हुआ मोहि ...)

दर्शकर जिनराज के आनंद अपरम्पार हो।
दर्शकर जिनराज के वर्तूं सु जाननहार हो।। 1।।

दर्शकर जिनराज के करना नहीं कुछ दीखता।
दर्शकर प्रत्यक्ष प्रभु परिपूर्ण ज्ञायक दीखता।। 2।।
दर्शकर जिनराज के दुर्मोह दुखमय नाशिया।
दर्शकर जिनराज के सु ज्ञान भानु प्रकाशिया।। 3।।
दर्शकर जिनराज के भव-भोग सो मन भागिया।
दर्शकर जिनराज के वैराग्य में चित पागिया।। 4।।
दर्शकर जिनराज के नाशें सहज परभाव हैं।
दर्शकर जिनराज के विकसें सहज निजभाव हैं।। 5।।
दर्शकर जिनराज के शिवपद दिखे आसान है।
दर्शकर भासित हुआ आतम स्वयं भगवान है।। 6।।
दर्शकर जिनराज का परिणति सहज निर्मल हुई।
दर्शकर जिनराज का जिन-भावना जागृत हुई।। 7।।
नाशें सु विषय- कषाय जिनवर आप सम निज में रमूँ।
दृष्टि धर निष्काम निजपद नाथ चरणों में नमूँ।। 8।।

(62)

(तर्जः जानूँ मैं जाननहारा ...)

प्रभु शान्त रूप सुखदाई, अद्‌भुत प्रभुता झलकाई।
यह प्रभुता मुझको भाई, अंतर में स्वयं लखाई।। टेक।।
सब लोकालोक जनावे, पर एक विकल्प न आवे।
अद्‌भुत समता प्रगटाई।। प्रभु.।। 1।।
प्रभु सर्व विभाव नशाया, ध्रुव चिदानन्द पद ध्याया।
पंचमगति सहजहिं पाई।। प्रभु.।।2।।

ज्ञाता स्वरूप दरशाया, परमानन्द उर न समाया।
मुक्ति निज में ही पाई।। प्रभु.।। 3।।
जिन हुआ भेद-विज्ञाना, अन्तर का लखा खजाना।
तृप्ति निज में ही पाई।। प्रभु.।। 4।।
बाहर में कुछ न सुहावे, बस जाननहार जनावे।
प्रभु समरस धार बहाई।। प्रभु.।। 5।।
चरणों में शीस झुकावें, थिरता प्रभु सम ही पावें।
बस यही भावना आई।। प्रभु.।। 6।।

(63)

(तर्ज: नित्य मुक्त शुद्धात्मा...)

धन्य दिवस धनि घड़ी आज की, आनन्द अपरम्पार है।
प्रभु का दर्शन भक्ति करते, आनन्द अपरम्पार है।। टेक।।
अवसर जिनवर की भक्ति का, भाग्यवान ही पाते हैं।
निकट भव्य तो निज दर्शन कर, सम्यक्त्वी हो जाते हैं।। 1।।
सर्व विषमता मिटती,बहती निजानन्द रसधार है।
करना कुछ भी नहीं दिखावे, चित्त हुआ निर्भार है।। 2।।
अद्भुत शान्त छवि जिनवर की भेदज्ञान प्रगटाती है।
चरण-शरण में आकर वृत्ति, सहज शान्त हो जाती है।। 3।।
प्रभुता तीन लोक से न्यारी, वचनों में कैसे आवे।
स्वानुभूति में प्रत्यक्ष दीखे, अद्भुत आनन्द उपजावे।। 4।।

(64)

(तर्ज : प्रभु मैं हो गया भव से पार...)

जिनेश्वर प्रभुता अपरम्पार।
आप-आप में आपहि दीखे, आनन्द अपरम्पार।। टेक।।
ज्ञान मात्र निज शुद्धातम में, शक्ति अनन्ता उछल रहीं हैं।
अन्तर्दृष्टि से प्रभु देखा, शक्ति अनन्ता विलस रहीं हैं।।
ओर-छोर नहीं कहीं दिखावे, वैभव अपरम्पार।। 1।।
स्याद्वाद वाणी में कथंचित्, कही परस्पर है सापेक्ष।
पर-पर की कुछ नहीं जरूरत, विलसे सहजपने निरपेक्ष।।
अहो! स्वाधीन अखण्ड प्रतापी, जीवराज अविकार।। 2।।
पूर्ण स्वयं में स्वयं-स्वयं से, सर्व प्रयोजन होवें सिद्ध।
दुखकारी पर भाव न उपजें, स्वानुभूति में स्वयं प्रसिद्ध।।
सहज अकर्त्ता परमानन्दमय, केवल जाननहार।। 3।।
धन्य-धन्य निज नाथ को पाया, निज में ही रम जाऊँ।
आधि-व्याधि-उपाधि रहित अब, परम समाधि सु पाऊँ।।
तृप्त हुआ निर्मुक्त हुआ, मैं देखन- जाननहार।। 4।।

(65)

(तर्जः आयो-आयो रे हमारो बड़ो भाग्य...)

पायो-पायो रे शरण सुखकार, जिनेश्वर चरणों में।।टेक।।
शुद्धातम ही जगत में, निश्चय शरणा एक।
वीतराग प्रभु को निरख, जागा सहज विवेक।। 1।।
स्त्री-पुत्र-कुटुम्ब सब, स्वारथ के ही मीत।

सुख-दुख भोगे एकला, झूठी इनकी प्रीति।। 2।।
धन वैभव के हेतु से, होंय अनन्ता पाप।
काम न आवे रंच भी, दुर्गति जावे आप।। 3।।
दल बल देवी देवता, मंत्र-तंत्र बहु होय।
सुख साता देवे नहीं, मरत बचाय न कोय।। 4।।
पुण्योदय भी जगत में, धन-बिजुरी उनहार।
तातें भेद-विज्ञान कर, होओ भव से पार।। 5।।

(66)

(तर्जः आओ-आओ महावीर...)

धन्य-धन्य भयो आज, देखे श्री जिनराज, देखे श्री जिनराज।। टेक।।
निज स्वभाव में ही मगन, परमानन्दमय देव।
मुद्रा सौम्य निहारते, नमे शीस स्वयमेव।। 1।।
इन्द्रादिक सेवत चरण, देखें जगत असार।
सहज चतुष्टयवान निज, शुद्धातम ही सार।। 2।।
समवशरण जिनदेव का, अद्भुत प्रभुता रूप।
धर्मतीर्थ प्रगटावता, ध्येय रूप चिद्रूप।। 3।।
ध्याऊँ अन्तर्मग्न हो, सहजपने निजभाव।
ज्ञायक हूँ ज्ञायक रहूँ, नाशें सर्व कुभाव।। 4।।

(67)

(तर्जः कितना सुन्दर कितना सुखमय...)

अहो! परम उपकार जिनेश्वर, अहो! परम उपकार रे।
भव्यजनों को दर्शाया प्रभु, समयसार अविकार रे।। टेक।।

समयसार को पाकर स्वामी, हम सब हुए कृतार्थ रे।
प्रभो! आपके पथ पर चलकर, साधेंगे परमार्थ रे।। 1।।
हुई प्रतीति निज प्रभुता की, मन पायो विश्राम रे।
मति व्यवस्थित हुई नाथ, हम ध्यावें आतम राम रे।। 2।।
हुई निःशंक सहज निर्वांछक, सत्य पंथ निर्ग्रन्थ रे।
प्रगटावें हम भी हे जिनवर, साक्षात् शिवपंथ रे।। 3।।
उपसर्गों में अडिग रहें हम, नाशें विषय- कषाय रे।
निजपद में ही लीन रहें प्रभु, परम दशा प्रगटाय रे।। 4।।
चित्त विभोर हुआ भक्ति में, धरें आप सा ध्यान रे।
कर्म-कलंक समूल नशावें, बनें स्वयं भगवान रे।। 5।।

(68)

(तर्जः चाह जगी मुझे...)

आओ जी जिनदर्शन को, आओ जी जिन पूजन को।
आओ जी जिनभक्ति को, आओ जी जिन प्रवचन को।। टेक।।
आओ सब मिलकर आओ, भक्ति भावना से आओ।
कर्म मैल धोने आओ, आतम हित करने आओ।। 1।।
जिनदर्शन निज दर्शन का, निमित्तभूत है शिवसुख का।
व्यर्थ न भव में भरमाओ,प्रभु ढिंग मुक्ति पथ पाओ।। 2।।
पर में निज का अंश नहीं, विषयों में सुख रंच नहीं।
निज सुख निज में ही पाओ, अक्षय प्रभुता प्रगटाओ।। 3।।
कल्पवृक्ष सम जिनमंदिर, धर्म आयतन जिनमंदिर।
तत्त्वभावना भवि भाओ, प्रभु समान ही बन जाओ।। 4।।

(69)

(तर्ज: मैंने तेरे ही भरोसे भगवान...)

मैं भी अपने ही भरोसे आदिनाथ, अनादिनाथ ध्याऊँगा।
तेरी जैसी ही निज प्रभुता हे नाथ, मैं भी निज में पाऊँगा।। टेक।।
तुम सम लख निज आत्मा, सम्यग्दर्शन पाय।
ज्ञान से ज्ञान को ध्याय कर, भेद विकल्प मिटाय।। 1।।
प्रकटै निज अनुभव करै, चेतन सत्ता रूप।
सब ज्ञाता लखि के नमौं, समयसार शिवभूप।। 2।।
समयसार अविकार का, वर्णन कर्ण सुनन्त।
द्रव्य-भाव-नोकर्म तजि, आतम तत्त्व लखन्त।। 3।।
प्रभु तुम उपकारी महा, आतम दियो दिखाय।
निज आतम में लीन हो, पहुँचूँ शिवपुर जाय।। 4।।

(70)

(तर्ज : रत्नत्रय शृंगार है ...)

प्रभु वीतराग पद वंद्य रे।। टेक।।
सौम्य दशा अवलोकत उपजे सहजहिं परमानन्द रे।। 1।।
गुण चिन्तत ही भेदज्ञान हो, नशे सकल दुख द्वन्द्व रे।।2।।
अन्तर में प्रत्यक्ष दिखावे, आतम आनन्द कन्द रे।। 3।।
सहज होय निर्ग्रन्थ भावना, छूटे परिग्रह फन्द रे।। 4।।
होय दिगम्बर साधें निज पद, अविनाशी निर्बन्ध रे।। 5।।
धन्य-धन्य जिनदर्शन महिमा, कैसे कहूँ मतिमंद रे।।6।।

(71)

(तर्ज : चित्स्वरूप प्रगटाया प्रभुवर...)

चित्स्वरूप दर्शायो स्वामिन्! चित्स्वरूप दर्शायो।
अहो! अहो!! आनन्द सरोवर, चित्स्वरूप दर्शायो।। टेक।।
अद्भुत गुण मंडित परमेश्वर, अन्तर माँहि दिखायो।
मिटी भ्रान्ति पर से निरपेक्ष, सु जाननहार जनायो।। 1।।
सहज शुद्ध परिपूर्ण ज्ञानमय, आतम अनुभव आयो।
करने अरु होने का सब ही, दुर्विकल्प विनशायो।। 2।।
शान्त तृप्त निर्द्वन्द्व हुआ प्रभु, निर्ग्रन्थ भाव जगायो।
होकर साधक लहूँ सिद्धपद, सविनय शीस नवायो।। 3।।

(72)

(तर्ज: जैन मंदिर हमको...)

जिनमुद्रा हमको लागे प्यारी।। टेक।।
आयुध-अम्बर रहित दिगम्बर, परम सौम्य जग हितकारी।
आसन अचल,दृष्टि नासा पै, अन्तर्मुख है अविकारी।।1।।
शोभ रही है अद्भुत प्रभुता, जावें भविजन बलिहारी।
स्वानुभूति की निमित्तभूत है, भवाताप नाशनहारी।। 2।।
तुम साक्षी में हे परमेश्वर, निज निधि पायी सुखकारी।
भाव यही निज में रम जाऊँ, नमूँ चरण मंगलकारी।। 3।।

(73)

ओम् जय केवलज्ञानी, प्रभु जय केवलज्ञानी।
तुम हो ज्ञान दिवाकर, ज्ञान किरण दानी।। टेक।।

पर को निज माना मैंने, और पर से मोह किया।
तेरी दिव्यध्वनि सुन प्रभुवर, सब भ्रम दूर हुआ।। 1।।
भोगों में सुख मान मूढ़ मैं, उनमें मस्त रहा।
वीतराग-विज्ञान सुखमयी, आतम आज लखा।। 2।।
कोई इष्ट-अनिष्ट नहीं है, झूठी सब भ्रान्ति।।
तेरे चरणों में आकर के, मिली सहज शान्ति ।। 3।।

(74)

(तर्ज : दिन रात स्वामी तेरे गीत गाऊँ ...)

चिदानन्द स्वामी, चिदानन्द स्वामी।
निजानन्द मण्डित, तुम ही हो अकामी।। टेक।।
तुम ही दृष्टा-ज्ञाता, तुम ही हो विधाता,
महा मोहतम को तुम ही हो नशाता।
तुम ही देव-जगदीश सर्वज्ञ नामी,
निजानंद मण्डित चिदानन्द स्वामी।। 1।।
तुम ही ब्रह्मरूपी अलख हो अरूपी,
तुम ही तीर्थंकर सिद्ध विष्णु स्वरूपी।
स्वयं में तुम ही हो महादेव नामी,
निजानन्द मण्डित चिदानन्द स्वामी।। 2।।
जो निज में रमता, वही तुमको पाता,
अनादि कर्म बंध को है नशाता।
शिवंकर हितंकर सुशंकर अकामी,
निजानन्द मण्डित चिदानन्द स्वामी।। 3।।

घट-घट में व्यापी चिन्मूरति प्रतापी,
तुझे जो न जाने बना वो ही पापी।
अहो! सच्चिदानन्द तुमको नमामी,
निजानन्द मण्डित चिदानन्द स्वामी।। 4।।

(75)

(तर्ज: निरखो अंग-अंग जिनवर के...)

देखा-देखा अनंग रूप जिनवर का, देखन-जाननहार।
देखन-जाननहार, केवल देखन-जाननहार।। टेक।।
शुद्धातम ज्ञानादिक गुणमय, केवल जाननहार।
निज स्वरूप में लीन विराजे, तिहुँ जग तारणहार।। 1।।
पर से भिन्न स्वयं में तन्मय, निज के जाननहार।
लोकालोक सहज प्रतिभासे, सर्वज्ञ कहो व्यवहार।। 2।।
दर्पण सन्मुख ज्यों जगवासी, देखे मुख अविकार।
सन्मुख जगी प्रतीति, मैं भी देखन-जाननहार।। 3।।
नहीं उपजे-मरता नाहिं, बंध-मोक्ष करतार।
दिखा स्वतः परमार्थ दृष्टि से, केवल जाननहार।। 4।।
जाननहार जनाय सहज ही, प्रगटे तृप्ति अपार।
अहो! प्रभो परमार्थ रूप लख, हुआ सहज भवपार।। 5।।
दुर्वेदन सब मिटे, प्रगट भयो स्व-संवेदन सार।
नहीं विकल्प वंद्य-वंदक का, वंदन हो अविकार।। 6।।

(76)

शरण में जिनवर की आए,हाँ आए।
चरणों में प्रभुवर के शिवमार्ग पाए।। टेक।।

सब संसार असार दिखाया,
भ्रमवश भटक-भटक दुख पाया।
मोही हो जो-जो अपनाया,
कोई भी कुछ काम न आया।। 1।।
प्रभुवर ने हमको ज्ञायक बताया,
ज्ञेयों से निरपेक्ष ज्ञायक बताया।
ध्येय रूप ध्रुव ज्ञायक बताया,
अभेद रूप ज्ञेय ज्ञायक बताया।। 2।।
जब हमने ज्ञायक पहिचाना,
ज्ञायक रूप स्वयं को जाना।
परमानन्द स्वयं में पाया,
निज वैभव प्रत्यक्ष दिखाया।। 3।।
निर्वांछक निर्भार हुआ प्रभु,
सहज रूप ज्ञातार हुआ प्रभु।
कर्म नाश निज में रम जाऊँ,
साहब सेवक भेद मिटाऊँ।। 4।।

(77)

दया निधि वीतरागी देव, तेरी शरण आये हैं।
प्रभो! सर्वज्ञ जग त्राता, तुम्हें हम शीस नाये हैं।। टेक।।
बुद्धि-बल वीर्यशाली हों, विपद में धैर्यशाली हों।
सदाचारी अटल प्रणवीर हों, सौभाग्य शाली हों।।
वीर वरदान ऐसा हो, सद्-आशा ले के आये हैं।। 1।।

अहिंसा-सत्य-अपरिग्रह, हमारा ध्येय बन जाये।
क्रोध-मद-लोभ-माया का, बुरा संसर्ग हट जाये।।
सभी दुर्गुण हटाने को, गुणाकर शरण आये हैं।। 2।।
सभी से मित्रता राखें, करें सेवा गुणीजन की।
दुःखी जन पर दयालु हो, रखें हम स्वच्छता मन की।।
रहें मध्यस्थ सुख-दुख में, भावना ले के आये हैं।। 3।।

(78)

आयो प्रभुवर शरण तिहारी।
दुःख विनश्यो परमानन्द उपज्यो, निज स्वाभाविक निधि निहारी।।टेक।।
दुर्विकल्प सब मिथ्या भासे, इन्द्रिय भोग महादुखकारी।
त्याग उपाधि आराधूँ निजपद, होऊँ निश्चय शिवमग चारी।। 1।।
निमित्तभूत तुम ही जिन स्वामी, हृदय विराजो भव सरतारी।
हो पुरुषार्थ विषमता नाशे, समरस वर्ते आनन्दकारी।। 2।।
जाननहार रहूँ शिव पाऊँ, अचल अनूपम ध्रुव अविकारी।
सहज नमन हो भाव नमन हो, हो अद्वैत नमन उपकारी।। 3।।

(79)

हे धर्म पिता सर्वज्ञ! हे वीतराग सर्वज्ञ!
जयवन्तो जगमाँही, जयवन्तो जगमाँही।। टेक।।
प्रभुवर शुद्धातम बतलाया, पर भावों से भिन्न जताया।
ज्ञानानन्द-आपूर्ण दिखलाया, भव में भ्रमते आप बचाया।। 1।।
समवशरण की शोभा प्यारी, अतिशय प्रातिहार्य मनहारी।
पर अलिप्त है दशा तुम्हारी, शत् इन्द्रादिक हों बलिहारी।। 2।।

दिव्यध्वनि अमृत बरसाया, धर्मतीर्थ जग में प्रगटाया।
मुक्तिमार्ग भव्यों ने पाया, गणधरादि ने भी यश गाया।। 3।।
ज्ञान नित्य ही दर्शन पावे, तुम सम निज चिद्रूप दिखावे।
प्रभु सी ही स्थिरता पाऊँ, भाव नमन कर हर्षाऊँ।। 4।।

(80)

(तर्जः अहो जगत गुरुदेव...)

करूँ भक्ति जिनराज, तिहुँ जग मंगलकारी।
करूँ भक्ति जिनराज, भविजन आनन्दकारी।। टेक।।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश, तीनलोक के हे परमेश।
दिव्यध्वनि अविकार, मोह नशावन हारी।। 1।।
दिव्य तत्त्व प्रभुवर दर्शाये, मिथ्या तम सब दूर भगाये।
भव से तारण हार, मूरति है मनहारी।। 2।।
नाहीं कर्त्ता-हर्त्ता देव, लहें भक्त शिव सुख स्वयमेव।
निमित्तभूत सुखकार, अनन्त चतुष्टय धारी।। 3।।
हम भी शरण आपकी पाय, आत्मज्ञान की ज्योति जगाय।
आतम गुण प्रगटाय, पूरो आस हमारी।। 4।।

(81)

(तर्जः तुझे बेटा कहूँ की वीरा...)

अहो! भाग्य है मेरा, मैं जिनवर दर्शन पाया।
लख शान्त स्वरूप जिनेश्वर, आनन्द हृदय में छाया।। टेक।।
भव-भव में अब तक भटका, हे नाथ! तुम्हें बिन जाने।
शुभ काललब्धि है आई, देवागम गुरु पहिचाने।।
अक्षय शिव सुख प्रदाता, वीतराग धर्म को पाया।। 1।।

हे देव! कहूँ क्या महिमा, चक्री भी शीस नवावें।
गणधर इन्द्रादिक भी तो, अति हर्षित हो गुण गावें।।
क्या अनुपम समवशरण प्रभु, अनुपम ही तीर्थ बताया।। 2।।
तत्त्वों की जगी प्रतीति, जिन! भेदज्ञान है जागा।
निज अनुभव कला प्रकाशी, दुर्मोह महातम भागा।।
बाहर से हुई उदासी, निर्ग्रन्थ स्वरूप सुहाया।। 3।।
उपसर्गों की नहीं चिन्ता, नहीं रिद्धि-सिद्धि अभिलाषा।
निरपेक्ष निरामय ज्ञायक, परिपूर्ण स्वयं में भासा।।
अपने में ही रम जाऊँ, निस्पृह हो शीस नवाया।। 4।।

(82)

आओ-आओ जिनवर की शरण में।
आओ-आओ प्रभु की शरण में।। टेक।।
कैसी शान्त छवि दृष्टि नाशा अहो,
ध्यान मुद्रा अचल आसन अनुपम प्रभो।
प्रेरणा दे रही मुक्तिमार्ग में।। 1।।
शस्त्र नारी नहीं, वस्त्र भूषण नहीं,
देव सर्वज्ञ अठारह दूषण नहीं।
पूर्ण प्रभुता प्रगट भगवन्त में।। 2।।
दिव्यध्वनि में ध्वनित दिव्य शुद्धात्मा,
एक ही है उपादेय निज आत्मा।
ज्ञान-आनन्द पाओ स्वयं में।। 3।।
पूर्ण प्रभुता स्वयं में स्वयं की,
स्वानुभव में सहज है झलकती।
साध्य साधन स्वयं का स्वयं में।। 4।।

(83)

(तर्ज : पर लक्ष्य तजो, नित तत्त्व भजो ...)

भगवन्त भजो, भव-अन्त लहो, समभाव धरो, सुख रूप रहो।।टेक।।
शोक तजो प्रभु के ढिंग आओ, कहे अशोक पुकार।
नहीं अवलम्बन योग्य पुण्य भी, कहे सिंहासन सार।। 1।।
प्रभु को नमो उर्ध्वगति पाओ, ढुलते चमर सिखायें।
छत्र कहें सेवहु रत्नत्रय, ध्रुव प्रभुता प्रगटाय।। 2।।
साँचो शरणा वीतरागता, दुंदुभि घोष कराय।
मानो भटकते भवि जीवों को, प्रभु के पास बुलाय।। 3।।
बंध मिटावो हर्ष बढ़ावो, बरसें पुष्प अपार।
पुण्य भाव सब करो समर्पण, प्रभु के चरण मँझार।। 4।।
भव दीखें प्रभु के भामण्डल, अभव ज्ञान के माँहि।
साक्षी में जितभव प्रभुवर की, भव से मुक्ति पाँहि।। 5।।
परम तत्त्व ज्ञायक लोकोत्तम, ध्रुव उत्तम गुणधाम।
दिव्यध्वनि में ध्वनित हो रहा, ध्याओ आतम राम।। 6।।
अतंरीक्ष निर्लिप्त दिगम्बर, नहीं कृत्रिम शृंगार।
प्रभु ढिंग शोभे प्रातिहार्य अरु, सहजपने अविकार।। 7।।
अन्तर्महिमा स्वानुभूति में, अहो! प्रत्यक्ष झलकाय।
वचनों में किंचित् नहीं आवे, सहज नमन सुखदाय।। 8।।

(84)

(तर्ज : देखो मुनिराज निज ध्यान में मगन...)

देखे हैं जिनराज कैसे मगन ।। टेक।।
निज में मगन हैं,निज में मगन, अन्तर नगन हैं, बाहर नगन।

धन्य अकिंचन रूप अहो! धनि वीतरागी स्वरूप अहो।।
दर्शन से आतम की लागे लगन।। 1।।
शोभे जो प्रभुता, अद्‌भुत प्रभुता, अन्तर से आई, अन्तर समाई।
धन्य है चेतन रूप अहो, धन्य है ज्ञायक स्वरूप अहो।।
दर्शन से पावन होवे जीवन।। 2।।
आवे न वाणी में, आवे न चिंतन में, ज्ञान में आवे, प्रत्यक्ष दिखावे।
फिर भी दिखावे न अन्त अहो! प्रभुवर के गुण हैं अनन्त अहो ।।
चिन्तन करत हो विवेकी सुमन।। 3।।
जानो शुद्धातम, मैं हूँ शुद्धातम, कारण परमातम, शाश्वत परमातम।
प्रभु जैसा निश्चल रूप अहो, जयवन्तो शुद्ध चिद्रूप अहो।।
प्रभु सम ही अपने में होओ मगन।। 4।।

(85)

(तर्ज : कैसो सुंदर अवसर आयो रे ...)

मंगल अवसर आया रे, आया रे।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु का दर्शन पाया रे।। टेक।।
दर्शन श्री जिनराज का, महाभाग्य से पाय।
ताके भव-भव के करम, क्षण में सहज नशाय।। 1।।
दर्शन जिनवर का अहो! लोकोत्तम परधान।
अन्तरंग में स्वयं ही, जगे भेद-विज्ञान।। 2।।
जिनवर की भक्ति करें, मन में धरि उल्लास।
मुक्ति लक्ष्मी भी सहज, आवे ताके पास।। 3।।
प्रभुवर की मुद्रा लखे, दिखे समय का सार।
फिर चक्री इन्द्रादि पद, भासें सर्व असार।। 4।।

दुर्विकल्प सब त्याग कर, जिनगुण गावें आज।
यही भावना हे प्रभो! पावें सिद्ध समाज।। 5।।

(86)

(तर्ज : वन्दे जिनवरम्- वन्दे जिनवरम् ...)

जय-जय हो प्रभु, जय-जय हो प्रभु।
जय-जय हो प्रभु, जय-जय हो प्रभु ।। टेक।।
धन्य हुआ प्रभु दर्शन पाया, परम प्रभु प्रत्यक्ष दिखाया।
उछले आनन्द-आनन्द प्रभो।। जय.।। 1।।
काल अनादि से जो नहीं पाया, प्रभु प्रसाद अन्तर में पाया।
ज्ञानमयी निज विभव प्रभो।। जय.।। 2।।
जैसा अपने को माना था, वैसा मैं नहीं, मिथ्याभ्रम था।
मैं शाश्वत ज्ञायक सहज प्रभो।। जय.।।3।।
तृप्त हुआ संतुष्ट हुआ प्रभु, अहो सहज निरपेक्ष हुआ प्रभु।
रहूँ परम निर्ग्रन्थ प्रभो।। जय.।। 4।।
नहीं कुछ वांछा नहीं कुछ चिन्ता, स्वयं सिद्ध परिणमन अनन्ता।
निज में ही अब रम जाऊँ प्रभो।। जय.।।5।।

(87)

(तर्ज : भक्ति से जिनवर के दर्शन करेंगे ...)

चरणों में प्रभुवर के आयेंगे हम।
प्रभु जैसी ही प्रभुता पायेंगे हम।। टेक।।
पुण्योदय से प्रभुवर को पाया।
निर्ग्रन्थ शासन हमको सुहाया।।
मुक्ति के मारग में धायेंगे हम।। 1।।

दुर्लभ सम्यग्दर्शन पाकर।
निर्मल तत्त्वज्ञान प्रगटाकर।।
सम्यक् चारित्र पायेंगे हम।। 2।।
रागादिक से भिन्न लखेंगे।
ज्ञानमात्र अनुभवन करेंगे।।
सहज ही ज्ञायक रहायेंगे हम।। 3।।
मोह न होगा, क्षोभ न होगा।
कर्मों का आश्रव-बंध न होगा।।
पूरव कर्म झड़ायेंगे हम।। 4।।
निजानन्द में मग्न रहायें।
पूर्ण अनन्त चतुष्टय पायें।।
अविनाशी पद पायेंगे हम।। 5।।
अहो! अहो! प्रभु का उपकार।
कैसे गावें अपरम्पार।।
भक्ति से शीस नवायेंगे हम।। 6।।

(88)

(तर्ज : पायो जी मैंने जैन धरम धन पायो ...)

प्रभुजी मन मंदिर में आओ।
नाथ पुजारी हूँ मैं तेरा, सेवक को अपनाओ ।। टेक।।
शुद्ध हृदय से करूँ वीनती, आतम ज्ञान सिखाओ।
पर परिणति तज निज परिणति का सच्चा, भाव कराओ।। 1।।
मैं तो भूल गया था तुमको, तुम ना मुझे भुलाओ।
जीवन धन्य बनाऊँ अपना, ऐसी राह सुझाओ।। 2।।

कर्म जटिल हैं संग न छोड़ें, इनसे मुझे बचाओ।
करके दया वृद्धि सेवक पर, आवागमन मिटाओ।। 3।।

(89)

(तर्ज : मैं देव श्री अरहंत पूजूँ ...)

ज्यों है अकृत्रिम भाव सुखमय, यों अकृत्रिम बिम्ब हैं।
अरु भाव क्षायिक के समान, सु कृत्रिम श्री जिनबिम्ब हैं।। 1।।
हैं निर्विकारी जगत में, करते महा उपकार हैं।
दर्शकर निजभाव लखि, भवि होंय भव से पार हैं।। 2।।
रागी की सूरत निरखते ही, भाव विकृत होत हैं।
प्रभु वीतरागी बिम्ब लखते, बहे आनन्द स्रोत है।। 3।।
ऐसा निमित्त सु जानकर, जिनबिम्ब को वंदन करूँ।
अरु निज अकृत्रिम सहज ज्ञायक, भाव दृष्टि में धरूँ।। 4।।

(90)

(तर्ज : चाह जगी जिन दर्शन की ...)

हे प्रभुवर तुम चरण प्रसाद, निज पद की नहीं भूलूँ याद।
होंय विसर्जित सर्व विभाव, प्रगटे आनन्दमयी स्वभाव।। 1।।
ध्रुव कारण-परमात्म स्वरूप, शाश्वत मंगलमय चिद्रूप।
भाऊँ-ध्याऊँ अविरल देव, नाशें सर्व दोष स्वयमेव।। 2।।
अशरीरी ज्ञायक सु रहाय, अमल अचल शिवपद प्रगटाय।
सहज पूज्य तुम सम जिनराज, पाऊँ निश्चय निज पद राज।।3।।

(91)

दर्शन पायो आनन्द छायो, सम्यक् भेदज्ञान प्रगटायो।। टेक।।
वीतरागता देख आपकी, जगत असार दिखायो।
इन्द्रिय-भोग दुःखमय भासे, चिदानन्द पद भायो।। 1।।

धन्य-धन्य प्रभु स्वाश्रित जीवन, मुक्त ज्ञानमय पायो।
सहज दिगम्बर रहित अडम्बर, निर्ग्रन्थ रूप सुहायो।। 2।।
सहज सुशोभित सहज पूर्ण प्रभु, अन्तर में दरशायो।
तृप्त हुआ स्वयमेव स्वयं में, मिथ्या मोह नशायो।। 3।।
निरतिचार ब्रह्मचर्य सुवर्ते, यही भाव उर आयो।
अविरल ध्याऊँ ब्रह्म रूप निज, सविनय शीस नवायो।। 4।।

(92)

(तर्जः जगाया तुमने...)

तोडिबे मोह रूप जंजाल, सिद्ध गुण सुमिरण करिलै रे।
सिद्ध सम निज को भजि लै रे, पाप सब अपने हरि लै रे।। टेक।।
सम्यक् दर्शन-ज्ञान वीर्य अरु सूक्ष्मपणा से युक्त।
अगुरुलघु अवगाहन शक्तिमय, सब बाधा से मुक्त।।
भक्तिभाव से पुरुषारथ से सिद्ध बने हम रे।। 1।।
सिद्ध प्रभु प्रतिबिम्ब हमारा, रूप दिखाने को।
स्वयं सिद्ध आदर्श बने शिवपंथ सुझाने को।।
उन्हीं के पथ पै चल हैं रे, सिद्ध पद करेंगे रे।। 2।।

(93)

सिद्धभक्ति

हमको भी बुलवा लो भगवन्, सिद्धों के दरबार में।। टेक।।
पराधीन जो है नहीं, सहज शुद्ध अविकार।
अविचल परमानन्द है, भोगें निज आधार।।
ऐसे आनन्द के बिना ही जिनराज, भटकते संसार में।। 1।।

द्रव्यदृष्टि से तुम जैसा हूँ, शक्ति है भरपूर।
निज शक्ति को भूलकर,दुःख पाये हैं भूर।।
निज शक्ति पहिचान करूँ, अरु पाऊँ समय का सार मैं।। 2।।
निर्मल ध्यान लगाय के, कर्म कलंक जलाय।
भये सिद्ध परमात्मा, वन्दूँ मन-वच-काय।।
तुम जैसा ही ध्यान करूँ, अरु पाऊँ भव पार मैं।। 3।।
जो करता सो भोगता, साथी सगा न कोय।
धर्म छुड़ावे दुःख तें, धर्म धरो सब लोग।।
धर्म बिना नहिं तेरो कोई होय अथिर संसार में।। 4।।

(94)

सिद्ध भावना

निज स्वभाव की महिमा जागी, सम्यक् श्रद्धा सहज हुई।
स्वानुभूति मंगलमय प्रगटी, मिथ्या भ्रान्ति दूर हुई।। टेक।।
निज में ही तृप्ति जब पाई, तब थिरता का भाव जगा।
राग-रंग निस्सार दिखे सब, अन्तर्मुख पुरुषार्थ भया।। 1।।
दुःखमय गृहस्थपना छूटा, सम्यक् मुनिधर्म का उदय हुआ।
प्रचुर स्व-संवेदनमय जीवन, भविजन को आदर्श हुआ।। 2।।
ध्येय रूप में मग्न हुए प्रभु, शुक्लध्यान था प्रगटाया।
हुआ क्षपक श्रेणी आरोहण, अनंत चतुष्टय विलसाया।। 3।।
त्रिजग पूज्य ईश्वरता पाई, अर्हत् नाम प्रसिद्ध हुआ।
योग निरोध हुआ तब क्षण में, अघाति समूह भी नष्ट हुआ।।4।।
अशरीरी प्रभु सर्व कर्ममल वर्जित सिद्ध महंत हुए।
अक्षय सुखमय ध्रुवगति पाई, आवागमन विमुक्त हुए।। 5।।

ज्यों प्रभु जाननहार आप हो, मैं भी जाननहार अहो।
भेद विकल्प नहीं उपजावे, स्वानुभूति मंगलमय हो।। 6।।
निज प्रभुता में मग्न रहूँ, नित स्वयं सिद्ध प्रभु ध्याऊँगा।
बदली दिशा अहो! जीवन की, सिद्ध दशा प्रगटाऊँगा।। 7।।

(95)

(तर्जः धीर वीर गम्भीर बनेंगे...)

प्रभु सम नहीं कोई उपकारी।। टेक।।
निज स्वभाव में लीन हुए जब,
प्रगटी दशा परम अविकारी।
रागादिक सब दोष विनष्टे,
हुए अनन्त चतुष्टय धारी।। 1।।
नहीं प्रयोजन शेष रहा कुछ,
प्रभु कृतार्थ चैतन्य-विहारी।
भव्य भाग्यवश खिरी दिव्यध्वनि,
सहज रूप जग मंगलकारी।। 2।।
शाश्वत सुखमय, तत्त्व बताया,
श्रद्धा-ज्ञान चरण हितकारी।
सम्यक् मुक्तिमार्ग समझकर,
हुए सहज ही शिवमगचारी।। 3।।
पाया प्रभु आदर्श आपका,
साधें समयसार सुखकारी।
हुआ सहज निष्काम निराकुल,
प्रभु चरणों में धोक हमारी।। 4।।

(96)

(तर्ज : ज्ञान ही सुख है ...)

धन्य कृतकृत्य हुआ, दर्श करके प्रभो।
आभा अद्भुत अलौकिक निहारी प्रभो।। टेक।।
हाथ पर हाथ कहते अकर्त्तृत्व को,
पद्म-आसन सिखाता है अचलत्व को।
दृष्टि नाशा कहे अन्तर में सुख अहो।। 1।।
जाना निश्चय अहो! देवों के देव हो,
जाना अन्तर में अपने परम देव को।
सत्य चिन्तामणि ही मिली है विभो।। 2।।
ब्रह्ममय तेजमय सहज आनन्दमय,
दिव्य मुद्रा लखे दूर हों सर्व भय।
मिटती इच्छायें ही देख तुमको अहो।। 3।।
छूटने योग्य सब छूट जाता सहज,
प्राप्ति के योग्य सब प्राप्त होता सहज।
दृष्टि होती स्वयं में स्वयं ही अहो।। 4।।
पूर्व के कर्म हों निर्जरित सहज ही,
अरु नये कर्मों का होवे आस्रव नहीं।
परम निर्मल दशा हो प्रवाहित अहो।। 5।।
भक्ति से हर्ष से शीस झुकता स्वयं,
भाव वैराग्यमय प्रभु सा जगता स्वयं।
लीनता मग्नता हो स्वयं में अहो।। 6।।

(97)

(तर्ज : प्रभो आपने एक ज्ञायक बताया ...)

महाभाग्य से मैंने जिनदर्श पाया।
निजानन्दमय नाथ निज दर्श पाया।। टेक।।
जगी ज्ञान ज्योति, महा मोह नाशा।
दर्श-ज्ञान-चारित्र सम्यक् प्रकाशा।।
परम शान्तिमय धर्म का स्वाद आया।। 1।।
जगत के प्रपंचों से आई उदासी।
टूटी सहज झूठी आशा की पासी।।
निर्ग्रन्थता का, सुभाव जगाया।। 2।।
लगें इन्द्रिय के भोग भी नाथ दुःखमय।
सहज ज्ञान वैराग्य ही एक निर्भय।।
शिवमग में बढ़ने का उल्लास आया।। 3।।
झड़े कर्म बिन भोगे अब चाह ना है।
परम ब्रह्मचर्य हो यही भावना है।।
निजाराधना में सुमन है लगाया।। 4।।
परम मुक्त प्रभुता तिहारी सुहाई।
दशा एक भी और मुझको न भाई।।
हो आदर्श मेरे चरण सिर नमाया।। 5।।

(98)

वंदन हम करते हैं मंगलमय,
जय जिनराज, जय जिनराज।

जिनवर दर्शन कर अति हर्षाया,
मोह महातम सहज नशाया।।
निर्मल भेदज्ञान प्रगटाया,
निज परमात्म स्वरूप दिखाया।। टेक।।
मिथ्या ममता फाँसी टूटी,
इष्ट-अनिष्ट कल्पना छूटी।
दुःखमय पाप वृत्ति विनशायी,
शुभ परिणति भी नहीं सुहायी।।
परमानन्द स्वयं में पाया,
प्रभु सम वीतराग पद भाया।। 1।।
विषय-कषायारम्भ नशावें,
पावन साधु दशा प्रगटावें।
ज्ञान-ध्यान में लीन रहाऊँ,
सहज स्वरूप सहज ही ध्याऊँ।।
जग प्रपंच से चित्त हटाया,
परम तत्त्व ही मुझे सुहाया।। 2।।
जगत ख्याति की चाह नशायी,
आत्मख्याति अन्तर प्रगटायी।
अक्षय प्रभुता निज में पायी,
शक्ति अनन्त सहज विलसायी।।
ज्ञानानन्द सिन्धु उछलाया,
ओर-छोर कुछ नहीं दिखाया।। 3।।

प्रभु सम और न दीखे जग में,
सहज बढ़ूँगा मैं शिवमग में।
भाव सहज बढ़ते जायेंगे,
कर्म सहज झड़ते जायेंगे।।
सहज पूज्य प्रभु मैंने पाया,
भक्ति भाव से शीस नवाया।। 4।।

(99)

करलो प्रभु गुणगान, करलो भेदविज्ञान,
शुद्धातम ही सार अहा।
शेष सर्व निस्सार कहा,
वन्दे जिनवरम्-वन्दे जिनवरम्।।टेक।।
अन्तर्मुख हो निज को ध्यावे,
सोई सहज ज्ञान सुख पावे।
प्रभुवर का संदेश यही,
समयसार का सार यही।। 1।।
विनाशीक यौवन तन-मन-धन,
आत्मज्ञान बिन शून्य जीवन।
समझो- समझो जिनवाणी,
विषय-कषाय तजो प्राणी।। 2।।
कहती हम सबसे जिनमुद्रा,
धारो-धारो भवि जिनमुद्रा।
परिग्रह तो दुःखरूप ही है,

आनन्दमय जिनरूप ही है।। 3।।
जहाँ न कोई आधि-उपाधि,
उपसर्गों में सहज समाधि।
पूरव कर्मबंध विनशाय,
नया कर्म आस्रव रुक जाय।। 4।।
सहज अकर्त्ता ज्ञाता होओ,
सर्व कर्ममल क्षण में धोओ।
शिवपद पाओ अविनाशी,
अक्षय अनुपम सुख राशि।। 5।।

(100)

(तर्ज: जिनवर भक्ति मंगलकार...)

जिनवर भक्ति सुखकारी,
प्रभु भक्ति मंगलकारी।
जिनवर की भक्ति कर लो,
जिनवर की वाणी सुन लो।।
तत्त्वों का निर्णय कर लो।। टेक।।
काया से न्यारा देखो,
कर्मों से न्यारा देखो।
रागादिक भावों से भी,
न्यारा शुद्धातम देखो।।
आतम अनुभूति कर लो,
जिनवर की भक्ति कर लो।। 1।।

इन्द्रिय अवलम्बन छोड़ो,
मन का अवलम्बन छोड़ो।
ज्ञेयावलम्बन भी छोड़ो,
उपयोग सु निज में जोड़ो।।
आतम रस वेदन कर लो,
जिनवर की भक्ति कर लो।। 2।।
निज में संतुष्ट रहाओ,
रागादिक विकल्प मिटाओ।
वैराग्य प्रचुर प्रगटाओ,
दीक्षा ले वन में जाओ।।
मुक्ति का साधन कर लो,
जिनवर की भक्ति कर लो।। 3।।
निज में ही थिरता आये,
सब कर्म समूह नशायें।
भव-भ्रमण सहज मिट जाये,
प्रभु सम शिवपद प्रगटाये।।
आतम-आराधन कर लो,
जिनवर की भक्ति कर लो।। 4।।

(101)

(तर्ज : मनड़ो म्हारो लाग्यो प्रभु भक्ति में ...)

म्हारो मन लागो जिन भक्ति में।
जिन भक्ति में, जिन भक्ति में।। टेक।।

प्रभु की शान्त छवि निरखत ही,
उपज्यो परमानन्द।
उपज्यो परमानन्द जिनेश्वर,
मिटे सकल जग द्वन्द्व।। 1।।
जग अशरण निस्सार दिखावे,
चाह न रही लगार।
शिवपथ में बढ़ता ही जाऊँ,
यही भाव अविकार।। 2।।
कर्त्तापन तो मिथ्या भासे,
वर्तूं जाननहार।
निजानन्द में तृप्त रहूँ,
निज प्रभुता लहूँ अपार।। 3।।
पुण्योदय की सकल विभूति,
दीखे नाथ अभोग्य।
उदासीन हो निज पद ध्याऊँ,
मिटे जनम का रोग।। 4।।
प्रभु चरणों में बलि-बलि जाऊँ,
पाया मुक्ति पंथ।
प्रभु से गुण परिणति में प्रगटें,
अहो! अहो!! भगवन्त।। 5।।

(102)

(तर्जः गुरु निर्ग्रन्थ परिग्रह त्यागी...)

धन्य-धन्य जिनरूप अहो, धन्य-धन्य प्रभु रूप अहो।
भक्ति उर में सहज उमड़ती, दिखे सहज निज रूप अहो।।टेक।।
इन्द्रादिक गणधर आदिक, भक्ति आपकी गाते हैं।
हर्ष विभोर हुए चरणों में, विभुवर शीस नवाते हैं।। 1।।
जग में अनुपम तीर्थ आपका, महाभाग्य से पाया है।
अचल सिद्धपद तुम सा प्रगटे, प्रभु विश्वास जगाया है।। 2।।
अन्तर्दृष्टि करे प्रेरणा, अन्तर में सर्वस्व अहो।
दुर्विकल्प सब ही दुखकारी, सहज पूर्ण चैतन्य प्रभो।। 3।।
नित्य निरंजन परम ज्योतिमय, ज्ञानानन्दमयी अभिराम।
सहज नमन हो यही भावना, निज में ही पाऊँ विश्राम।। 4।।

(103)

(तर्जः परम दिगम्बर...)

धन्य हुए प्रभु दर्शन करके,
तेरी वाणी सुनेंगे हम।
तेरे पथ पर चलेंगे हम।। टेक।।
रूप आपका हमें सुहाया,
तत्त्व आपका मन को भाया।
भेद-विज्ञान करेंगे हम,
अन्तर्दृष्टि धरेंगे हम ।। 1।।
कर पर कर की रीति सुहायी,
कायोत्सर्ग दशा अति भायी।

कर्त्तृत्व बुद्धि तजेंगे हम,
ज्ञाता भाव सजेंगे हम।। 2।।
निर्ग्रन्थ रूप अलौकिक देखा,
पर भावों का जहाँ न लेखा।
ममता मूर्च्छा तजेंगे हम,
समता भाव धरेंगे हम।। 3।।
भायेंगे नित चित्स्वभाव को,
ध्यायेंगे हम परम भाव को।
कर्म विभाव तजेंगे हम,
प्रभुता रूप भजेंगे हम।। 4।।
आप रहो आदर्श जिनेश्वर,
हम पाया अपना परमेश्वर।
अपने में ही रमेंगे हम,
मुक्तिरमा को वरेंगे हम।। 5।।

(104)

(तर्ज :ऐसे मुनिवर देखे वन में ...)

देखो-देखो श्री जिनवर को, देखो-देखो श्री प्रभुवर को।।टेक।।
आसन अचल सु नासादृष्टि, देखो कर पर कर को।। 1।।
भूषण रहित जगत के भूषण, अनन्त चतुष्टय-धर को ।।2।।
गणधर इन्द्रादिक चरणन नत, इन सम देव अवर को।।3।।
भाव सहित नित प्रभु को ध्यावें, तरें सु तारें पर को।।4।।

(105)

छोड़ो-छोड़ो रे विषय-कषाय आलस को,
प्रभु की भक्ति करो सुखदाय।। टेक।।
महाभाग्य से मिल गये, हमको जिनवर देव।
जिनके दर्शन से कटे, मोह जाल स्वयमेव।। 1।।
देखो सारे जगत में, जिनवर सम नहीं आन।
जो जिनपद आराधता, होय स्वयं भगवान।। 2।।
परम ब्रह्म परमात्मा, परमानन्द स्वरूप।
दर्शायो आदेय प्रभु, चिदानन्द चिद्रूप।। 3।।
चिदानन्द का ध्यान धर, सर्व विकल्प विडार।
पायो प्रभु परमात्म पद, नमों त्रियोग सम्हार।। 4।।

(106)

जिनवर का मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।
मुनिवर का मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।। टेक।।
मुक्ति का मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।
ज्ञानी का मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।। 1।।
आनन्दमय मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।
प्रभुता मय मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।। 2।।
स्वाधीन मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।
अकृत्रिम मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।। 3।।
निरूपाधिक मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।

निर्द्वन्द्व मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।। 4।।
आदर्श मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।
तिहुँ जग में पूज्य निर्ग्रन्थ मार्ग।। 5।।
पूजूँ सु भाऊँ निर्ग्रन्थ मार्ग।
धनि दिन हो, अपनाऊँ निर्ग्रन्थ मार्ग।।6।।

(107)

श्री चौबीस तीर्थंकर भक्ति

(तर्ज : ऋषभ अजित सम्भव अभिनंदन...)

जय-जय सहज रूप जिननाथ।। टेक।।
ऋषभ, अजित, संभव, मुनिनाथ,
जय अभिनंदन सुमति जिनेश।
पद्म सुपार्श्व नमहुँ चन्द्रेश,
पुष्पदंत शीतल श्रेयांस जिन।।
वासुपूज्य प्रभु विमल अनंत,
धर्म शान्ति अरु कुन्थु महंत।
श्री अरनाथ मल्लि जिनराय,
मुनिसुव्रत नमि नेमि मनाय।।
पार्श्व, महावीर स्वस्ति दाय।। 1।।
जग में चैतन्य ऋद्धि अनूप,
चेतन चक्रवर्ती शिवभूप।
जो पावे सो होवे तुष्ट,
नाशें भाव विकारी दुष्ट।।

होवे अयाचीक धनवान।। 2।।
धन्य ऋषीश्वर निज में तृप्त,
निजानंद रस में संतृप्त।
बाह्य ऋद्धियों की नहीं चाह,
प्रगटें फिर भी नहीं परवाह।।
पर से निष्पृह परम गुणवान।। 3।।
प्रचुर स्व-संवेदन दिन-रात,
करें आत्म-हित की ही बात।
परम दिगम्बर शान्त स्वरूप,
जग में स्वस्तिदाय अनूप।।
वन्दूँ साधु सहज गुणखान।। 4।।
अब जग भर से होय उदास,
निज में थिरता रूप निवास।
होवे यही भावना सार,
ध्याऊँ समयसार अविकार।।
धनि ज्ञायक प्रभु अम्लान।। 5।।

(108)

श्री आदिनाथ स्तुति

(तर्ज : जय-जय आदिनाथ बोलो ...)

जय-जय हो आदिनाथ, जय जय हो अनादिनाथ।। टेक।।
आदिनाथ प्रभुता लही, ध्याय अनादिनाथ।
स्वाभाविक प्रभुतामयी, धन्य अनादिनाथ।। 1।।
दोष अठारह नाशिया, प्रभुवर आदिनाथ।
है निर्दोष स्वभाव से, धन्य अनादिनाथ।। 2।।

अनन्त चतुष्टयवान हुए, प्रभुवर आदिनाथ।
सहज चतुष्टयवन्त है, धन्य अनादिनाथ।। 3।।
जाननहार सु आप हो, मैं भी जाननहार।
महाभाग्य से पाइयो, दर्शन मंगलकार।। 4।।
भाव सहित वन्दन करूँ, जय-जय आदिनाथ।
ध्याऊँ ध्येय स्वरूप निज, धन्य अनादिनाथ।। 5।।

(109)

हे आदीश्वर! तुम प्रभुता का नहिं पार दिखावे।
गुण गावें आदीश्वर, जयवन्तो आदीश्वर।। टेक।।
जन्म-जन्म की साधना, पूर्ण करन सुखकार।
अन्तिम जन्म भयो प्रभो, गूँजे मंगलाचार।। 1।।
चैत वदी नवमी दिवस, धन्य हुआ साकेत।
इन्द्र विविध उत्सव किये, हम वन्दें हित हेत।।2।।
कर्म भूमि की रीति भी, सिखलायी प्रभु आप।
आदि पुरुष बुधजन कहें, मेटो जग संताप।। 3।।
देख मरण नीलांजना, करने लगे विचार।
क्षणभंगुर संसार में, शुद्धातम ही सार।। 4।।
धारा मुनिपद आपने, साधा सहज स्वभाव।
धारा धरि निज ध्यान की, नाशे सर्व विभाव।।5।।
गुण अनन्त विकसित हुए, कहलाए अरहंत।
धर्मतीर्थ दरशाय कर, मुक्त हुए भगवन्त।। 6।।

सिद्धालय में राजते, लोक शिखर अविकार।
प्रभु प्रभुता में मग्न हो, करते जय-जयकार।। 7।।

(110)

(तर्ज : निर्ग्रन्थ महा मुनिराज आज मैंने सपने ...)

आदीश्वर जिनराज, आज मैंने सपने में देखे।
सपने में देखे, प्रत्यक्ष से देखे।। टेक।।

सुरपति गर्भ कल्याण मनाये, सोलह स्वप्न सुखकार।
माँ की सेवा करें देवियाँ, तत्त्वचर्चा अविकार।।
आज मैंने सपने में देखे।। 1।।

पन्द्रह माह जन्म से पहले, रत्न जु बरसे नाथ।
जन्म समय श्री मेरु शिखर पर, मंगल अभिषेक साज।।
आज मैंने सपने में देखे।। 2।।

ऋषभ कुमार की बाल चेष्टाएँ हुआ,राज्याभिषेक को सहज।
नीलांजना का मरण देख, प्रभु हृदय भयो वैराग्य।।
आज मैंने सपने में देखे।। 3।।

लौकान्तिक देवों को देखा, तप कल्याण सार।
प्रथम अहार श्रेयांस दियो, हुए पंचाश्चर्य अपार।।
आज मैंने सपने में देखे।। 4।।

ध्यान लीनता प्रभु की देखी, ज्ञान कल्याण महान।
समवशरण की अद्भुत महिमा, दिव्यध्वनि सुखकार।।
आज मैंने सपने में देखे।। 5।।

मंगल विहार भी प्रभु को देखो, चतुर्विध सुखकार।
अन्त अचल कैलाश पै देखो, मुक्ति गमन अविकार।।
आज मैंने सपने में देखे।। 6।।

देवों ने मुक्ति कल्याणक मनायो, आनन्द छायो अपार।
'आत्मन्' ऐसी प्रभुता प्रगटे, महिमा अपरम्पार।।
आज मैंने सपने में देखे।। 7।।

(111)

(तर्जः चरणों में आ पड़ा हूँ...)

आया शरण में तेरी, हे आदिनाथ स्वामी।
अक्षय आत्म-निधि पाऊँ, तुम संग हे अन्तर्यामी।। टेक।।
अति पुण्योदय से जिनवर, पावन जिनशासन पाया।
वस्तु स्वरूप जाना, निस्सार जग दिखाया।। 1।।
पर भावों से अति न्यारा, निर्दोष ध्रुव निजातम।
ज्ञायक स्वरूप अविकल, निरुपम शाश्वत परमातम।। 2।।
प्रभुवर प्रसाद तेरा, पुरुषार्थ सहज मेरा।
आतम स्वरूप ध्याऊँ, मेटूँ भव-भव का फेरा।। 3।।
चरणों में शीस नाऊँ, निर्ग्रन्थ हो वन जाऊँ।
सब कर्म बन्ध छूटें, निर्मुक्त प्रभुता पाऊँ।। 4।।

(112)

(तर्जः जय-पारस, जय-पारस भगवान की ...)

जय आदीश्वर-जय आदीश्वर, भाव सहित स्तवन करूँ।
भाव सहित प्रभु नमन करूँ।। टेक।।
दर्शन पाया प्रभो आपका, धन्य हुआ कृतकृत्य हुआ।
अहो! आप सम अन्तर माँहि, अपना प्रभु प्रत्यक्ष हुआ।। 1।।
निज-पर भेद-विज्ञान हुआ, सहजहिं परमानन्द हुआ।
असत् विभावों की नहीं चिन्ता, मुक्त रूप अनुभूत हुआ।। 2।।

सब संसार असार दिखाया, सारभूत शुद्धात्मा।
शुद्धातम-आराधूँ स्वामी, बनूँ सहज परमात्मा।। 3।।

(113)

श्री चन्द्रप्रभ स्तुति

महाभाग्य से दर्शन पाया, चन्द्रप्रभ भगवान।
तुम्हें देखते दीखे अपना, आतम देव महान।। टेक।।
अमृतमय है परम अलौकिक, परमानन्द की खान।
परम पारिणामिक ध्रुव ज्ञायक, है शाश्वत भगवान।। 1।।
ज्ञायक आश्रय से ही प्रगटे, रत्नत्रय अम्लान।
अकृत्रिम परमातम ज्ञायक, अक्षय प्रभुतावान।। 2।।
अपने धर्मों में व्यापक विभु, अद्‌भुत वैभववान।
है स्वरूप की रचना में, निज से वीरजवान।। 3।।
ध्रुव मंगल है लोकोत्तम है, अनन्य शरण गुणखान।
तेरे सन्मुख आते स्वामिन्, हुआ सहज श्रद्धान।। 4।।
अमृतमय है रूप आपका, अमृतमय परिणाम।
अमृतमय मुद्रा है जिनवर, वचनामृत सुख खान।। 5।।
साँचे देव दिया है प्रभुवर, मुक्तिमार्ग का दान।
हम सम्यक् अनुगामी होकर, करें स्व-पर कल्याण।। 6।।

(114)

स्तुति चन्द्रप्रभ जी की, चन्द्र सम उज्ज्वल छवि जिनकी।
सहज ही आनन्दकारी है, सर्व दुख संकट हारी है।। टेक।।
मूर्ति से अमृत झरता है, सहज भव ताप विनशता है।
परम उत्कृष्ट दशा प्रभु की।। 1।।

देह कुल आश्रित क्या स्वामी, करूँ गुणगान परम नामी।
है प्रभुता ज्ञानमयी प्रभु की।। 2।।
मोह विनशावनहारी है, मुक्ति दरशावन हारी है।
दिव्यध्वनि मंगलमय प्रभु की।। 3।।
तुम्हें जो जाने हे जिनवर, स्वयं को समझे वह सत्वर।
कि अद्भुत महिमा है प्रभु की।। 4।।
चन्द्र लख सागर उमड़ावे, तुम्हें लख आनन्द उमगावे।
विभूति रत्नत्रय प्रगटी।। 5।।

(115)

गाड़ी खड़ी रे खड़ी रे तैयार, चलो रे भाई शिवपुर को।। टेक।।
चन्द्रप्रभ भगवान का, करता हूँ गुणगान।
निज स्वरूप को जानकर, बन जाऊँ भगवान।। चलो रे.।। 1।।
जो पारस सोना करे, सो पारस है कच्चा।
जो पारस-पारस करे, सो पारस है सच्चा।। चलो रे.।। 2।।
त्याग-त्याग सब ही कहें, त्याग न जाने कोय।
राग-द्वेष के त्याग बिन, त्याग न सच्चा होय।। चलो रे.।। 3।।
ग्रहण-ग्रहण सब कोई कहें, ग्रहण न जाने कोय।
निज स्वभाव के ग्रहण बिन, ग्रहण न सच्चा होय।। चलो रे.।।4।।
देव-देव सब ही कहें, देव न जाने कोय।
वीतराग-सर्वज्ञ ही, देव सु सच्चा होय।। चलो रे.।। 5।।
शास्त्र-शास्त्र सब ही कहें, शास्त्र न जाने कोय।
वीतरागता पोषते, शास्त्र सु सच्चे सोय।। चलो रे.।। 6।।

गुरु-गुरु सब कोई कहें, गुरु न जाने कोय।
रत्नत्रय धारक नगन, गुरु ही सच्चा होय।। चलो रे.।। 7।।
धर्म-धर्म सब ही कहें, धर्म न जाने कोय।
धर्मी के आश्रय बिना, धर्म कहाँ तैं होय।। चलो रे.।। 8।।

(116)

(तर्जः प्रभु हम सबका एक...)

जय-जय चन्द्र जिनेश, दर्शन मंगलकारी रे।
जय-जय चन्द्र जिनेश, दर्शन आनन्दकारी रे।। टेक।।
देवों के भी देव जिनेश्वर, वीतराग सर्वज्ञ महेश्वर।
तुम्हें निरखते थकित न होवे, दृष्टि हमारी रे।। 1।।
अक्षय सुख का तन्त्र बताया, भेदज्ञान का मन्त्र सिखाया।
अन्तर्मुख होते ही विनशे, विपदा सारी रे।। 2।।
तुमको पाकर चाह मिटी है, झूठी पर की आस मिटी है।
निज में ही देखी अपनी, प्रभुता अविकारी रे।। 3।।
प्रभुवर निज में ही रम जावें,पाने योग्य स्वयं में पायें।
आवागमन नशाय, भावना यही हमारी रे।। 4।।
देखी हमने दुनियाँ सारी, नहीं दिखे तुम सा उपकारी।
जिन चरणों में अहो! समर्पित भक्ति हमारी रे।। 5।।

(117)

(तर्जः आज हम जिनराज...)

अहो! अहो! श्री चन्द्रप्रभो! हम शरणे आए।
आए प्रभु हम आए-आए।। टेक।।
तुमको बिन पहिचाने भगवन्, भव-भव में भरमाए।
महाभाग्य से दर्शन पाए, आनन्द उर न समाए।। 1।।

शान्त स्वरूप निरखते स्वामिन्, सब संताप नशाए।
स्व-पर भेद-विज्ञान प्रगट हो, आतम ज्योति जगाए।। 2।।
अनुभव रस से तृप्त हुए प्रभु, इन्द्रिय- विषय न भाए।
नित्य- शुद्ध निज सम्पत्ति पाई, बाहर कुछ न सुहाए।। 3।।
प्रभो! आपके ही प्रसाद से, मुक्तिमार्ग में आए।
सर्व विभाव नशावें सत्वर, अनुपम पद प्रगटाए।। 4।।

(118)

(तर्ज : माता तू दया करके कर्मों से छुड़ा देना ...)

हे चन्द्रप्रभ जिनराज! मूरति मंगलकारी।
दर्शन करके महाराज, आनन्द भयो भारी।। टेक।।
जिनरूप परम शीतल, देखे भव ताप नशे।
सन्तुष्टि सहज ही हो, प्रभु चाह- दाह विनशे।।
झरता है धर्मामृत, दुःख जन्म-मरण हारी।। 1।।
जिसको पाये बिन देव, भव-भव में भटकाए।
विभु! निश्चय रत्नत्रय, निज ही में प्रगटाए।।
मुक्ति का मार्ग मिले, प्रभु सहजहिं अविकारी।। 2।।
जब से तुमको देखा, संसार असार दिखा।
प्रभु परम सार ज्ञायक, अन्तर में प्रत्यक्ष लखा।।
निर्ग्रन्थ दशा प्रगटे जिन-शासन सुखकारी।। 3।।
आदर्श रहो मेरे, मैं चूक नहीं जाऊँ।
पुण्योदय में स्वामिन्, किंचित् नहीं अटकाऊँ।।
परमार्थ नमन जिनवर, पद प्रगटे अविकारी।। 4।।

(119)

(तर्ज:मेरे मन मंदिर ...)

जय-जय चन्द्रप्रभो भगवान,आनन्दामृत चन्द्र महान।। टेक।।
गृहस्थपना तजकर दु:खकार,धर मुनिधर्म महा सुखकार।
धारा निर्मल आतम ध्यान ।। आनन्दामृत.।। 1।।
चार घातिया हुए विनष्ट,प्रगटे अनन्त चतुष्टय इष्ट।
पायो अर्हत् पद अम्लान।। आनन्दामृत.।। 2।।
दिव्यध्वनि अमृत बरसाय,विभ्रम मोह दियो विनशाय।
पाया भव्यों ने सद्ज्ञान ।। आनन्दामृत.।। 3।।
हुए अयोगी हे जिननाथ, त्रिविध कर्म रहा न साथ।
पाया अविचल पद निर्वाण ।। आनन्दमृत।। 4।।
आए शरण तुम्हारी देव,रत्नत्रय प्रगटे स्वयमेव।
दीखे अन्तर में सुखखान ।। आनन्दमृत.।। 5।।
भाव यही पुरुषार्थ बढ़ायें,परिणति निज में ही रम जाये।
मैं भी पाऊँ पंचम भाव ।। आनन्दामृत.।। 6।।

(120)

श्री शान्तिनाथ स्तुति

(तर्ज: निरखत जिनचन्द्र ...)

शान्तिनाथ-शान्तिनाथ, जयवन्तो शान्तिनाथ।
चित्त मेरा शान्त हुआ, दर्श करके शान्तिनाथ।। टेक।।
वीतराग-सर्वज्ञ-हितोपदेशी लोकनाथ।
धर्म तीर्थ के प्रणेता, साँचे देव शान्तिनाथ।। 1।।
मंगलमय शान्तिनाथ, लोकोत्तम शान्तिनाथ।
भव्यों को उत्कृष्ट, शरणभूत शान्तिनाथ।। 2।।

तुमको बिन जाने भव-भव में रुले हो अनाथ।
आज आपके समीप, जाना चैतन्यनाथ।। 3।।
नित्य रूप चित्स्वरूप, परमशान्त निज स्वरूप।
अनुभव प्रत्यक्ष हुआ, देव हम हुए सनाथ।। 4।।
बहुमान पूरित हो, भक्ति करूँ शान्तिनाथ।
पुरूषार्थ ऐसा हो, आप जैसा होऊँ नाथ।। 5।।

(121)

(तर्ज : मेरे मन मंदिर में आन ...)

विराजें शान्तिनाथ भगवान,
हमारे आनन्द अपरम्पार।। टेक।।
प्रभुदर्शन से मिटे असाता,
प्रभु दर्शन शिव सुख प्रदाता।
प्रभु दर्शन अविकार।। हमारे.।। 1।।
सब संसार दुःखमय जाना,
साँचा सुख प्रभो पहिचाना।
चाह न रही लगार ।। हमारे.।। 2।।
अद्भुत प्रभुता आज निहारी,
अद्भुत महिमा नाथ तुम्हारी।
सहज होय भव पार।। हमारे.।। 3।।
हे जिन! मिथ्या मोह पलाया,
दैन्यभाव सब दूर भगाया।
रहूँ सु जाननहार।। हमारे.।। 4।।

धन्य नाथ निज माँहि विनत हैं,
इन्द्रादिक चरणों में नत हैं।
वन्दन हो अविकार।। हमारे.।। 5।।

(122)

(तर्ज : पारस प्रभु हे पारस प्रभो ...)

शान्ति प्रभो, शान्ति प्रभो,
शान्ति प्रदाता, शान्ति प्रभो।
जय बोलो श्री शान्ति प्रभो,
जय-जय बोलो शान्ति प्रभो।। टेक।।
चक्रवर्ती पद धूल समझकर,
क्षण भर में प्रभुवर त्यागा।
रहित अडम्बर होय दिगम्बर,
प्रभुवर निज पद आराधा।।
प्रगटा केवलज्ञान अहो।। 1।।
अक्षय सुख का मार्ग जिनेश्वर,
दिव्यध्वनि में दरशाया।
जगत विभूति असार बताई,
सारभूत निजपद गाया।।
आनन्दमय हुए भव्य विभो।। 2।।
अनुपम मूरति देख प्रभु की,
अहो! हृदय हर्षाया है।
कैसे गावें गुण अनन्त प्रभु,
भक्तिभाव उमगाया है।।
चरणों शीस नवायें अहो।। 3।।

झूठे सुख के साधन तजकर,
निज स्वभाव साधन द्वारा।
प्रभो! आपके पथ पर चलकर,
सुख पावें अपरम्पारा।।
सहज सिद्ध पद पावें प्रभो।। 4।।

(123)

(तर्जः रोम-रोम पुलकित हो जाए ...)

शान्ति विधायक मंगलदायक, शान्ति जिनेश्वर नमन करूँ।
शान्त स्वरूप स्वयं का पाया, शान्ति जिनेश्वर नमन करूँ।।
नमन करूँ, नमन करूँ, मोह भाव का वमन करूँ।
नमन करूँ, नमन करूँ, निज पद का अनुभवन करूँ।। टेक।।
चक्री पद का वैभव त्यागा, धर्मचक्र ले शिवपद साधा।
परम भाव में ही चित पागा।। शान्ति.।। 1।।
परम निराकुल, परम जितेन्द्रिय, धन्य-धन्य प्रभु ज्ञान अतीन्द्रिय।
सकल विभावों पर पायी जय।। शान्ति.।। 2।।
मुक्तिमार्ग दर्शावनहारी, दिव्यध्वनि प्रभु आनंदकारी।
परम शांत मुद्रा अविकारी।। शान्ति.।। 3।।
ख्याति लाभ का भाव विनाशा, भोगों की कुछ नहीं अभिलाषा।
अपना प्रभु अपने में भासा।। शान्ति.।। 4।।
यही भाव आवे मन माँहि, दुर्विकल्प प्रभु उपजें नाहिं।
सहज रमूँ आतम रस माँहि।। शान्ति.।। 5।।

(124)

(तर्ज : आओ भाई तुम्हें सुनायें गाथा आतम राम की ...)

शान्त स्वरूप अहो अन्तर में, बहती समरस धार रे।
अन्तर्दृष्टि हुई हे स्वामी, आनन्द अपरम्पार रे।। टेक।।
ज्ञायक प्रभु हूँ अनुभव वर्ते, सहज हुआ भव पार रे।
सहज पूज्य हे शान्ति जिनेश्वर, सहज नमन अविकार रे।।1।।
अमृतपान करूँ अन्तर में, चाह न अन्य लगार रे।
सहज तुष्ट वर्तूं निज में ही, वर्ते तृप्ति अपार रे।। 2।।
नहीं विकल्प प्रभु नहीं द्वन्द्व कुछ, साम्य भाव सुखकार रे।
रहूँ मुक्त ज्ञाता-दृष्टा प्रभु, अपने ही आधार रे।। 3।।

(125)

(तर्जः हमें संस्कार सिखलाती हमारी पाठशाला है ...)

शान्ति जिनवर झलकती है, आपकी शान्त मूरति से।
तृप्त हो मुक्तिपथ पाते, भव्य जन शान्त मूरति से।। टेक।।
स्व-पर का ज्ञान सिखलाती, अचल ध्रुव ध्यानमय मुद्रा।
क्षमादिक धर्म प्रगटाती, सौम्य अन्तर्मुखी मुद्रा।।
संयोगी दृष्टि मिट जाती, दर्शकर शान्त मूरति से।। 1।।
धन्य ध्रुव ज्ञानमय ज्ञायक, धन्य आनन्दमय ज्ञायक।
धन्य दृग-ज्ञान-चारित रूप, होवे परिणमित ज्ञायक।।
दिखें शुद्ध कार्य-कारण तत्त्व, प्रभुवर शान्त मूरति से।। 2।।
स्वयं सिद्ध आप प्रभु स्वामी, स्वयं में तृप्त हे स्वामी।
स्वयं में मग्न हे स्वामी, स्वयं में मुक्त हे स्वामी।।
लुब्धता ज्ञेयों की मिटती, आपकी शान्त मूरति से।। 3।।

विभव जग का दिखे निस्सार, विभुवर आपको लखकर।
दिखे इक सार प्रभुतामय, निजातम आपको लखकर।।
आप सम आपको पाऊँ, भाव हो शान्त मूरति से।। 4।।

(126)

(तर्ज : आज तो बधाई राजा नाभि के दरबार में ...)

आज तो बधाई शान्तिनाथ के दरबार जी।। टेक।।
राज छोड़ा तप किया, शुक्लध्यान धार लिया।
केवल सुज्ञान किया, जग सुखकार जी।। 1।।
समवशरण सुर किया, पूजा-पाठ ठाठ किया।
तत्त्वों का उपदेश दिया, भवि हितकार जी।। 2।।
देव करें जय-जयकार, दुन्दभि बजें अपार।
देवियाँ गावें मंगलाचार, खुशियाँ अपार जी।। 3।।
प्रभु तुम जैसे बनें, कर्म शत्रुओं को हनें।
सिद्धपद प्राप्त करें, नित्य अविकार जी।। 4।।

(127)

श्री मल्लिनाथ स्तुति

(तर्ज : वीतराग सर्वज्ञ हितंकर भविजन की ...)

बाल ब्रह्मचारी अविकारी, जय-जय मल्लिनाथ भगवान।
यही भावना सहज पूर्ण हो, सुखमय ब्रह्मचर्य अम्लान।। 1।।
आदर वर्ते निज स्वभाव का, क्रोध अनादर रूप न हो।
महिमा वर्ते चित्स्वरूप की, पर की महिमा कभी न हो।। 2।।
प्रभुतामय निज अनुभव वर्ते, मायाचार न किंचित् हो।
रहूँ सदा संतुष्ट स्वयं में, लोभ रंच नहीं पर का हो।। 3।।

हास्य न होवे, रति नहिं उपजे, अरति शोक प्रभु लेश न हो।
निर्भय रहूँ निशंक तत्त्व प्रति, भाव जुगुप्सा शेष न हो।। 4।।
परम ब्रह्म में मग्न रहूँ नित, सहजानन्दमय जीवन हो।
निर्मूलन होवे काम भाव का, लगे नहीं अतिचार प्रभो।। 5।।
होय न मूर्च्छा पर द्रव्यों में, निज में जागृत रहूँ सदा।
पर भावों की सन्तति टूटे, रहूँ सु जाननहार सदा।। 6।।
महाभाग्य से रत्न सु पाया, श्री जिनधर्म माँहि सुखकार।
तृप्त हुआ निज में ही स्वामिन्! शुद्धातम ही है बस सार।। 7।।
शुद्धातम ही इक अवलम्बन, शुद्धातम ही तारणहार।
शुद्धातम के आराधनमय, भाव नमन हो प्रभु सुखकार।। 8।।

(128)

(तर्ज : हे वीरनाथ तुम दर्शन कर...)

जय नेमिनाथ-जय नेमिनाथ,दर्शन पाकर हुआ सनाथ।। टेक।।
दुख के कारण पर द्रव्य नहीं, दुःख के कारण पर भाव अरे।
सुख के कारण पर द्रव्य नहीं, सुख का कारण निजभाव अरे।।
जाना ये ही है सत्य नाथ।। 1।।
निज शान्ति निज में ही स्वामिन्! सुख सागर निज में लहरावे।
शुचिता-प्रभुता निज में ही है, अन्तर दृष्टि से प्रगटावे।।
हूँ तृप्त स्वयं में सहज नाथ।। 2।।
आतम हित हेतु विराग ज्ञान, हित का कुछ और उपाय नहीं।
स्वाश्रय पूर्वक शिव सुख प्रगटे, जिसका फिर होय अपाय नहीं।।
पाया निज में परमार्थ नाथ।। 3।।

न्यारा रागादिक भावों से, गुण भेद न किंचित् दिखलावे।
ज्ञेयों की भ्रान्ति दूर हुई, ज्ञायक ही अनुभव में आवे।।
जयवन्त नित्य चैतन्यनाथ।। 4।।

सविनय अद्वैत नमन प्रभुवर, बस स्वयं-स्वयं में थिरता हो।
संतुष्ट स्वयं में रहूँ विभो, फिर लेश नहीं आकुलता हो।।
बस यही भावना शेष नाथ।। 5।।

(129)

बाल ब्रह्मचारी प्रभो! नेमीश्वर महाराज।
ब्रह्मचर्य परिपूर्ण हो, भाव यही जिनराज।। टेक।।
परमानन्दमय ब्रह्मचर्य, शिव सुख का आधार।
ब्रह्मचर्य बिन व्यर्थ ही, रूलता फिरे गँवार।। 1।।
मोही विषयासक्त का, हो न कभी उद्धार।
निर्मोही स्वातम-रसी, शीघ्र होय भव पार।। 2।।
पर लक्ष्यी वृत्ति अरे, सबहि महादुःखकार।
ध्रुव ज्ञायक के लक्ष्य से, प्रगटे शिव अविकार।। 3।।

(130)

(तर्जः मेरे मन मंदिर...)

जय-जय नेमीश्वर भगवान, करूँ मैं परम भक्ति अम्लान।। टेक।।
द्रव्येन्द्रिय अरु भावेन्द्रिय से,सर्व इन्द्रियों के विषयों से।
भिन्न निजातम जान।। करूँ मैं.।। 1।।
सहज परिणमूँ ज्ञानानन्दमय, होऊँ परम जितेन्द्रिय निर्भय।
धारूँ ब्रह्मचर्य सुखखान।। करूँ मैं.।। 2।।

द्रव्य मोह और भाव मोह से न्यारा निज को निज अनुभव से।
भाऊँ निर्मोही भगवान।। करूँ मैं.।। 3।।
अपना ज्ञाता रूप निहारूँ, पर भावों को सहज विडारूँ।
करके निश्चय प्रत्याख्यान।। करूँ मैं.।।4।।
पर में नहीं उपयोग भ्रमाऊँ, प्रभुवर निज में ही रम जाऊँ।
प्रगटे निर्ग्रन्थ रूप महान।। करूँ मैं.।। 5।।
होवे निश्चल आतम ध्यान, कर्म कलंक नशे दुखदान।
जिनवर होऊँ आप समान।। करूँ मैं.।।6।।

(131)

(तर्ज: जिनवाणी साँची माँ...)

जयवन्तो नेमिनाथ, जयवन्तो नेमिनाथ।। टेक।।
काल अनादि से दुःख पाये, नहीं जाना निज नाथ।
चारों गतियों में भरमाये, जैसे फिरे अनाथ।। 1।।
महा पुण्य का उदय हुआ है,आज मिले जिन नाथ।
अद्भुत शान्त छवि लख प्रभु की, हम सब हुए सनाथ।।2।।
आज प्रभो! सद्बोध हुआ है, पहिचाना निजनाथ।
अनुभव रस प्रगटा अन्तर में, अहो! अहो!! मुनिनाथ।।3।।
अशरण जग में मात्र दिखावे, चरण-शरण ही नाथ।
यही भावना करें साधना, चरणों में धर माथ।। 4।।
भौतिक फल की नहीं कामना, पाया चैतन्यनाथ।
निज में ही हो पूर्ण लीनता, सहज बनें जिननाथ।। 5।।

(132)

(तर्ज : धन्य-धन्य हैं निर्ग्रन्थ गुरुवर सहज ...)

धन्य-धन्य नेमी जिनेश्वर, धन्य-धन्य शुद्धात्मा।
धन्य-धन्य शुद्धात्मा, धन्य-धन्य परमात्मा।। टेक।।
आपका वैराग्य अनुपम, सहज शान्त स्वरूप है।
दुःखी पशु लख हो विरागी, भायो निज चिद्रूप है।। 1।।
हो दिगम्बर तज परिग्रह, आप में ही मग्न हो।
धन्य है पुरुषार्थ अविचल, ध्यान नहीं प्रभु भग्न हो।। 2।।
ध्येय ध्रुव आनन्दमय है, ध्यान भी आनन्दमय।
अन्तरंग आनन्दमय विभु, बाह्य भी आनन्दमय।। 3।।
दर्श सहजानन्दमय है, स्वानुभव का शुभ निमित्त।
भाव निज आनन्दमय हो, अनुभवन आनन्दमय।। 4।।
आप हो आदर्श स्वामिन्, सहज जीवन के अहो।
हो सहज अद्वैत वंदन, सौम्यता हो आप सम।। 5।।

(133)

(तर्जः जय पारस...)

जय नेमीश्वर-जय नेमीश्वर, जय नेमीश्वर स्वामी।
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, जय नेमीश्वर स्वामी।। टेक।।
अष्टादश दोषों से न्यारे, वीतराग अभिरामी।
नित्य निरंजन भव दुख भंजन, चरणन शीस नमामी।। 1।।
झलके लोकालोक ज्ञान में, ज्ञानमयी हे स्वामी।
निजानन्द में लीन जिनेश्वर, धनि-धनि केवलज्ञानी।। 2।।

ध्रुव आनन्दमय शुद्धातम, दर्शायो त्रिभुवननामी।
धर्मतीर्थ के सहज प्रणेता, परम हितंकर स्वामी।। 3।।
धन्य हुआ कृतकृत्य हुआ, प्रभु दर्शन पाकर स्वामी।
यही भावना निर्विकल्प हो, होऊँ शिवपथ गामी।। 4।।

(134)

(तर्जः निर्ग्रन्थ मार्ग में विचरूँ ...)

श्री नेमि प्रभो! जिन नेमि जिन, हो द्रव्य नमन, हो भाव नमन।।टेक।।
दर्शन पाकर प्रभु धन्य हुआ, संक्लेश भाव सब दूर हुआ।
अद्भुत आनन्द उल्लसित हुआ।। श्री नेमि.।। 1।।
मिथ्या अपनत्व नशाया है, संसार असार दिखाया है।
शिवमार्ग सहज प्रत्यक्ष हुआ।। श्री नेमि.।। 2।।
होता यदि जग में सार विभो, फिर क्यों तजते संसार प्रभो।
चित यह विचार निश्चिंत हुआ।। श्री नेमि.।। 3।।
भोगों की चाह रही न प्रभो, निर्ग्रन्थ मार्ग ही इष्ट अहो।
वैराग्य सहज ही प्रगट हुआ।। श्री नेमि.।। 4।।
अद्भुत वैराग्य आपका है, अनुपम संदेश आपका है।
मूरति लखकर कृतकृत्य हुआ।। श्री नेमि.।। 5।।
बस हो अब सर्व विकल्पों से, निज प्रभुता प्रगटेगी निज से।
निरपेक्ष सु जाननहार हुआ ।। श्री नेमि.।। 6।।

(135)

(तर्ज : देखो मुनिराज निज ध्यान में मगन ...)

कैसे ध्यानमग्न नेमिनाथ भगवान,पाया है अक्षय पद निर्वाण।।टेक।।
रोम-रोम से शान्ति सु झरती,अद्भुत प्रभुता अहो विलसती।
भासे ज्ञान में ज्ञान ही ज्ञान।। 1।।

धन्य भाग्य प्रभु दर्शन पावें, भव-भव का दुर्मोह नशावें।
पावें निश्चय आतम ज्ञान।। 2।।
शान्त चित्त प्रभु रूप विचारें, सब संसार असार निहारें।
सारभूत ज्ञायक अम्लान।। 3।।
दर्शन पाकर हुए कृतार्थ, साधें नाथ सहज परमार्थ।
भाव सहित विभु! करें प्रणाम।। 4।।
हर्षित होकर जिन गुण गावें, भाव विशुद्धि सहज बढ़ावें।
होय प्रतिष्ठित ज्ञान में ज्ञान।। 5।।

(136)

(तर्ज : देखो पार्श्वप्रभु की मूरत सबको आनंददाता है ...)

दर्शन नेमिनाथ का सबको, परमानन्द प्रदाता है।
परमानन्द प्रदाता है, ज्ञानानन्द प्रदाता है।। टेक।।
ब्याह समय होकर विरत, दीक्षा ली मुनिनाथ।
पशुओं का तो था निमित्त, जग को किया सनाथ।। 1।।
आप स्वयं आदर्श हो, स्वयं परम पद पाय।
स्वानुभूत मारग कह्यो, सबको मंगलदाय।। 2।।
मौन भाव से कह रहे, इन्द्रिय सुख असार।
उत्तम संयम ग्रहण कर, होओ भव से पार।। 3।।
नाथ! यही है भावना, राग-द्वेष विनशाय।
परिणति निज में लीन हो, निज प्रभुता विलसाय।। 4।।
और नहीं कुछ चाह है, तृप्त हुआ स्वयमेव।
निज में संतुष्ट हो, नमन करूँ हे देव।। 5।।

(137)

(तर्ज : अरहंतों की जय-जय गाते चलो ...)

मेरे हृदय विराजो नेमीश्वर,मेरे उर में विराजो नेमीश्वर।
मेरे जीवन के आधार नेमीश्वर,मुक्तिमार्ग आदर्श नेमीश्वर।। टेक।।
ब्याह समय वैराग्य धरि, हुए स्वयं में लीन।
तीर्थेश्वर पद पाइयो, पुण्य-पाप कर क्षीण।। 1।।
अहो! अतीन्द्रिय ज्ञानमय, परमानन्द की खान।
प्रभु प्रसाद अन्तर लखो, चिदानन्द भगवान।। 2।।
आराधूँ निजनाथ को, बनूँ स्वयं जिननाथ।
यही भावना भावते, चरणन नाऊँ माथ।। 3।।
तृप्त रहूँ निज में अहो, वर्तूं जाननहार।
सर्व विभाव विनष्ट हों, सहज लहूँ भवपार।। 4।।

(138)

श्री पार्श्वनाथ स्तुति

मेरो जन्म सफल भयो आज हो,
देखी प्रभुता पारस की।
प्रभु पारस की, प्रभु पारस की।। टेक।।
पन्द्रह माह रतन बरसाये,
कल्याणक इन्द्रादि मनाए।
गूँजा जय-जयकार हो।। देखी प्रभुता. ।।1।।
जलते नाग-नागिन प्रतिबोधे,
भये धरणेन्द्र पद्मावती थे वे।
भक्ति करें सुखकार हो।। देखी प्रभुता. ।।2।।

कारण पाय भये वैरागी,
निर्ग्रन्थ दीक्षा ले अविकारी।
सहज परम तप धार हो।। देखी प्रभुता. ।।3।।
कर उपसर्ग कमठ गुर्राया,
किन्तु ध्यान से चिगा न पाया।
हुआ न लेश विकार हो।। देखी प्रभुता. ।।4।।
आ उपसर्ग धरणेन्द्र निवारा,
किंचित् हर्ष राग नहीं धारा।
रहे सहज अविकार हो।। देखी प्रभुता. ।।5।।
घाति कर्म तज केवल पाया,
जग को मुक्तिमार्ग दर्शाया।
त्रिभुवन मंगलकार हो।। देखी प्रभुता. ।।6।।
बालयती प्रभु को सिर नावें,
उत्तम ब्रह्मचर्य अपनावें।
होवें भव से पार हो।। देखी प्रभुता. ।। 7।।

(139)

(तर्ज : आयेंगे हम आयेंगे प्रभु दर्शन को आयेंगे ...)

पारसनाथ-पारसनाथ, दर्शन पाये पारसनाथ।। टेक।।
महापुण्य का उदय सु आया, परमेश्वर का दर्शन पाया।
दर्शन करके हुआ सनाथ।। 1।।
अहो! नाथ हो नित्य निरंजन, कर्म निकंदन, भव दुःख भंजन।
शिव सुखदाता हे मुनिनाथ।। 2।।

परम शान्त मुद्रा अविकारी,सहज रूप भविजन मनहारी।
धनि-धनि बालयती जगनाथ।। 3।।
प्रभु आदर्श क्षमा के धारी,हो निरपेक्ष परम उपकारी।
दर्शायो निज चैतन्यनाथ।। 4।।
हरष-हरष कर प्रभु गुण गाऊँ,परमानन्द स्वयं में पाऊँ।
भक्तिभाव से नाऊँ माथ।। 5।।

(140)

(तर्जः धन्य-धन्य जिनवाणी...)

धन्य-धन्य श्री पारस स्वामी,निज स्वरूप दरशायो है।
शिव स्वरूप दरशायो है,प्रभु स्वरूप दरशायो है।।
चित्स्वरूप दरशायो है,हो अद्वैत नमन हे स्वामी।
सविनय शीस नवायो है।। टेक।।
जीवादिक षट् द्रव्य बताये,उनके गुण-पर्यय समझाये।
अस्तिकाय जिन पाँच सु गाये,नव तत्त्वों के स्वांग दिखाये।।
सबसे भिन्न परम ज्ञायक निज,आश्रय योग्य बतायो है।। 1।।
दुःख का मूल मोह बतलाया,जगत प्रपंच असार दिखाया।
हिंसादिक का त्याग कराया,परम अहिंसा धर्म बताया।।
सत्य पंथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर,स्वानुभूतिमय गायो है।। 2।।
मुद्रा शान्त मनोहर सोहे,अन्तर्मुख सबका मन मोहे।
कमठ हुआ था निर्मद सत्वर,हो उपसर्गजयी हे जिनवर।।
हुए तेईसवे तीर्थंकर प्रभु,समता पाठ पढ़ायो है।। 3।।

हम सब प्रभु तेरे अनुगामी,दशा आपकी हमको भायी।
मार्ग आपका हमें सुहाया,जग का नाटक हमें न भाया।।
रमें आपमें विभो आप सम, यही भाव उमगायो है।। 4।।

(141)

(तर्ज: दिन-रात स्वामी तेरे...)

महाभाग्य से पार्श्व प्रभु दर्श पाया।
महानन्द मेरे न उर में समाया।। टेक।।
छवि वीतरागी मुझे है सुहाई,
जिसे देखते सुधि निजातम की आई।
स्व-पर भेद-विज्ञान अन्तर जगाया।। महानन्द. ।।1।।
नहीं आवरण है, नहीं है करम रज,
अहो! ज्ञान-दर्शन, अहो सुख-वीरज।
अनन्त गुणों का न पार दिखाया।। महानन्द. ।। 2।।
नहीं आप सी जग में प्रभुता दिखावे,
तुम्हें देखकर सहज सन्तोष आवे।
सर्वांग वैराग्य रंग में रंगाया।। महानन्द. ।। 3।।
मुक्ति का मारग, अहो ज्ञान ही है,
अहो! ज्ञान का फल, परम ज्ञान ही है ।
सहज ज्ञान का, सहज माहात्म्य आया।। महानन्द. ।।4।।
नहीं कामना अब रही कोई मन में,
यही भावना नाथ! रम जाऊँ निज में।
परम तृप्त हो शीस चरणों नवाया।। महानन्द. ।। 5।।

(142)

प्रभु पार्श्वनाथ की जय बोलो।
जय बोलो-जय बोलो, मोह ग्रंथि क्षण में खोलो।। टेक।।
पन्द्रहमास रतन बरसे थे, जग के सब प्राणी हरषे थे।
प्राणत स्वर्ग से आकर प्रभुवर, मरुदेवी उर आन बसे थे।। 1।।
अश्वसेन घर जन्म हुआ था, तिहुँ जग में आनन्द हुआ था।
इन्द्रादिक ने मेरु शिखर पर,प्रभुवर का अभिषेक किया था।।2।।
रहे बालयति सुखकारी, यौवन में दीक्षा धारी।
कमठ घोर उपसर्ग किया, रहे ध्यान में अविकारी।। 3।।
क्षपक श्रेणी आरोहण करके, त्रेसठ प्रकृति नशाई थी।
गुणस्थान तेरहवाँ प्रगटा, केवल लक्ष्मी पाई थी।। 4।।
देवों ने रच समवशरण, प्रभु का बहुमान जताया था।
दिव्यध्वनि द्वारा प्रभु ने, जग को शिवपथ दर्शाया था।। 5।।
दिव्य तत्त्व विभु! एक बताया, अखिल विश्व में निज शुद्धात्म।
कर्म मुक्त सम्मेदशिखर से, स्वामी हुए निकल परमात्म।।6।।
भाव सहित नित करो वंदना, निज शुद्धातम को पाओ।
भविजन आत्म-ध्यान द्वारा ही, अविनाशी पद प्रगटाओ।।7।।

(143)

(तर्ज : मन भज ले श्री भगवान उमरिया रह गई थोड़ी ...)

हे पार्श्व प्रभो शिवदाता, मेटो मम सर्व असाता।।टेक।।
लोकोत्तम पद प्रगट किया, ध्रुव ध्यान अविकार।
वीतराग सर्वज्ञ हुए मंगलमय मंगलकार।।
निरपेक्ष विश्व के ज्ञाता।। 1।।

हुआ कमठ भी नत हे स्वामी, समता देख तुम्हारी।
इष्ट- अनिष्ट कल्पना नाशे, यही भावना म्हारी।।
रत्नत्रय तीर्थ विख्याता।। 2।।
टूटे विभाव अयोध्या का सुनकर प्रभु हुए बाल ब्रह्मचारी।
भव दुखों से व्यथित चित्त होऊँ चैतन्य-विहारी।।
विभु! यही भाव उमगाता।। 3।।
किया परम उपकार जिनेश्वर, दिव्य तत्व दर्शाया।
भाव भासना हुई सहज ही, मिथ्या मोह पलाया।।
चरणों में शीस नवाता।। 4।।
आराधूँ कारण परमातम, आवागमन मिटाऊँ।
तृप्त रहूँ, संतुष्ट रहूँ, प्रभु सम निज प्रभुता पाऊँ।।
जग में कुछ अन्य न भाता।। 5।।

(144)

(तर्जः हे वीर तुम्हारे ...)

हे पार्श्व प्रभो! तव दर्शन कर,मन में अति ही आनन्द हुआ।
निज दर्शन का उल्लास हुआ, आराधन का पुरुषार्थ हुआ।। टेक।।
पावन प्रतिमा जब ही देखी, पहले तो कुछ आश्चर्य हुआ।
अन्तर दृष्टि से जब देखा, जिनरूप निरख अति हर्ष हुआ।। 1।।
नासा दृष्टि लखकर स्वामिन्! अन्तर के सुख का बोध हुआ।
अपनी प्रभुता अपने में लख, मुक्ति पथ का सद्बोध हुआ।। 2।।
प्रभु हाथ पै हाथ धरे लखकर, कर्त्तृत्व बुद्धि का नाश हुआ।
तेरी साक्षी में हे प्रभुवर, निष्काम हुआ अति तृप्त हुआ।। 3।।

अब स्वांग समान शरीर दिखे, चैतन्य स्वरूप प्रत्यक्ष हुआ।
अक्षय आतम वैभव देखा, जग का सब वैभव धूल हुआ।। 4।।
इन्द्रादिक पद भी अपद लगें, शाश्वत निज पद का भान हुआ।
मेरा सर्वस्व सदा मुझमें, जिनराज सहज सद्ज्ञान हुआ।। 5।।
वस्तु स्वरूप की समझ हुई, हे नाथ! सहज निश्चिंत हुआ।
निरपेक्ष रहूँ, निर्ग्रन्थ रहूँ, हे देव! सहज यह भाव हुआ।। 6।।
हूँ सहज अकर्ता ज्ञाता प्रभु, स्वाधीन पने स्वीकार हुआ।
निर्द्वन्द्व रहूँ, निज साध्य लहूँ, पर भावों का परिहार हुआ।। 7।।
है हृदय भक्ति से भरा विभो, चरणों में नम्रीभूत हुआ।
हो तीर्थ प्रवर्तन मंगलमय, पा जिनशासन कृतकृत्य हुआ।। 8।।

(145)

(तर्ज:लखी-लखी ...)

जय पारस- जय पारस, जय-जय पारसनाथ जी।। टेक।।
तुमको बिन पहिचाने जिनवर, चिर से रहे अनाथ जी।
आज आपके दर्शन पाकर, हम सब हुए सनाथ जी।। 1।।
इन्द्रादिक चरणों में नमते, हो नाथों के नाथ जी।
शान्त दिगम्बर मुद्रा सोहे, धरे हाथ पर हाथ जी।। 2।।
दर्शाया प्रभु दिव्यध्वनि से, शाश्वत चैतन्य नाथ जी।
अन्तर में प्रत्यक्ष निहारा, धन्य हुए जिननाथ जी।। 3।।
आनन्दित हो प्रभु गुण गावें, धरूँ चरण में माथ जी।
यही भावना मुक्तिमार्ग में, हो गुरुओं का साथ जी।। 4।।

(146)

(तर्ज : हे वीर तुम्हारे द्वारे पर ...)

आदर्श रहो-आदर्श रहो, हे पार्श्व प्रभो आदर्श रहो।
ज्ञायक हूँ ज्ञायक सहज रहूँ, हे पार्श्व प्रभो आदर्श रहो।। टेक।।
निर्मोह रहूँ निष्क्रोध रहूँ, निर्मान रहूँ निर्माया रहूँ।
निर्लोभ रहूँ नीराग रहूँ, हे पार्श्व प्रभो आदर्श रहो।। 1।।
निर्ग्रन्थ रहूँ निर्द्वन्द्व रहूँ, निष्काम रहूँ निष्कर्म रहूँ।
कृतकृत्य रहूँ नित तृप्त रहूँ, हे पार्श्व प्रभो आदर्श रहो।। 2।।
निरपेक्ष निराकुल सदा रहूँ, निज से ही वैभववान रहूँ।
निज प्रभुता से प्रभु रूप रहूँ, हे पार्श्व प्रभो आदर्श रहो।। 3।।
आनन्दमग्न हूँ मंगलमय, परिशुद्ध शुद्ध उपयोगमयी।
नित ब्रह्मरूप रहूँ चित्स्वरूप, हे पार्श्व प्रभो आदर्श रहो।। 4।।

(147)

श्री महावीर स्वामी स्तुति

(तर्जः वीर प्रभु का है कहना...)

महावीर का है सन्देश,
चलो भव्य अब अपने देश।
मुक्तिपुरी है अपना देश ।। टेक।।
अपना देश बिना पहिचाने,
सहे बहुत भव-भव के क्लेश।
स्वर्गादिक के वैभव पाये,
तो भी पाया सुख नहिं लेश।। 1।।

अब सुन्दर अवसर है आया,
धारो-धारो निर्ग्रन्थ वेश।
पर द्रव्यों से प्रीति छोड़ो,
लाओ नहीं राग या द्वेष।। 2।।
समता भाव सहज ही धारो,
जासे मिटे सर्व संक्लेश।
ऐसा आतम ध्यान लगाओ,
कर्मबन्ध होवें निःशेष।। 3।।
रत्नत्रय ही उत्तम साधन,
साधो मुक्ति साध्य विशेष।
दुखमय आवागमन निवारो,
विलसो परमानन्द हमेश।। 4।।

(148)

दीपक सम्यक् ज्ञान उजारो,
जिससे मिटे मोह अँधियारो ॥ टेक॥
जैसे वीर प्रभु ने जानो, अपनो जाननहारो।
वैसे ही हम भी पहिचानें, पर भावों से न्यारो॥ 1॥
सब प्रकार से अवसर आयो, ज्ञायक रूप निहारो।
रत्नत्रयमय आराधन से, होय सहज निस्तारो॥। 2॥
पर से कुछ सम्बन्ध नहीं है, निश्चय ही उर धारो।
होय विरागी सब परिग्रह तज, साम्य भाव विस्तारो॥ 3॥
आप-आप में लीन होय, पाओ भव-सिन्धु किनारो।
अन्य उपाय नहीं है भाई, शुद्धातम ही सारो॥ 4॥

(149)

(तर्ज : पारस नाम-पारस नाम मेरे प्रभु का ...)

जय महावीर-जय महावीर, जय-जय बोलो श्री महावीर।
वर्द्धमान सन्मति अतिवीर।। टेक।।
आत्मध्यान में लीन प्रभु की, मूरति अति सुखकार है।
देखो-देखो नासा दृष्टि, पद्मासन अविकार है।। 1।।
जन्म-जन्म का दुःख नशाने, शरण में आओ जिनवर की।
सम्यक् मुक्तिमार्ग प्रगटाने, भक्ति रचाओ प्रभुवर की।। 2।।
वीतराग सर्वज्ञ-हितंकर, दर्श भाग्य से पाया है।
मानो शिवपद ही पाया हो, ऐसा आनन्द छाया है।। 3।।
भक्तिभाव से शीश नवाओ, तत्त्व भावना भाओ रे।
प्रभुवर के ही अनुरागी हो, स्वयं प्रभु बन जाओ रे।। 4।।

(150)

(तर्जः कर लो जिनवर का...)

जय-जय महावीर भगवान, दर्शन कर आनन्द भया।। टेक।।
महाभाग्य देखे अहो! वीतराग जिनराज।
मोह-महातम मिट गयो, जन्म सफल भयो आज।। 1।।
साक्षात् अमृत झरे, मूरति से सर्वंग।
नाशे जन्म-जरा-मरण, राचे निज रस रंग।। 2।।
बिन बोले ही बोलते, मुक्तिमार्ग दर्शाय।
मुक्त स्वरूपी आत्मा, प्रत्यक्ष रह्यो दिखाय।। 3।।
जब से देखा आपको, बाहर कुछ न सुहाय।
मिलने योग्य मिला स्वयं, त्याज्य सहज छुट जाय।। 4।।

शासन नायक बालयति, हे अन्तिम तीर्थेश।
चरणों में प्रणमूँ प्रभो, तृप्त हुए सर्वेश।। 5।।

(151)

(तर्जः रंग मा रंग मा...)

महावीर-महावीर-महावीर हो,वर्द्धमान-सन्मति-अतिवीर हो।। टेक।।
दोष अठारह रहित हो स्वामी,परम ब्रह्ममय त्रिभुवन नामी।
अनन्त चतुष्टय गुणधारी हो।। 1।।
अद्भुत समवशरण प्रभु राजे,अन्तरीक्ष जिनराज विराजे।
दिव्यध्वनि अति गम्भीर हो।। 2।
नवतत्त्वों का स्वांग दिखाया,दिव्य तत्त्व शुद्धात्म बताया।
ध्यावे सो लहे भवतीर हो।। 3।।
आप न जग के कर्त्ता-हर्त्ता,सहज रूप से दृष्टा-ज्ञाता।
तदपि हरो प्रभु भवपीर हो।। 4।।
हे जग नायक! शीस नवाऊँ,निज प्रभुता निज में प्रगटाऊँ।
कर्मजयी होऊँ महावीर हो।। 5।।

(152)

(तर्ज : जिन गुण गाओ हर्षाओ ...)

वीर प्रभु के गुण गाओ,
ध्रुव परमातम को ध्याओ।। टेक।।
वीर नाम भव्यों को प्यारा,
वीरनाथ का शासन न्यारा।
मोह महातम दूर भगाता,
सम्यक् ज्ञान कला प्रगटाता।। 1।।

भव-भव के बंधन विनशायें,
चतुर्गति का भ्रमण नशायें।
निजानन्द निज में विलसाये।।
सम्यक् मुक्तिमार्ग प्रगटाये।। 2।।
वीर प्रभु का है उपदेश,
अपना आतम अपना देश।
चाह दाह में नहीं दहो,
अपने में सन्तुष्ट रहो।। 3।।
देखो-देखो प्रभु की मूरति,
प्रशममयी अति सोहनी मूरति।
सब वैभाविक कर्म नशाये,
अंतर में वैराग्य जगाये।। 4।।
बाल ब्रह्मचारी अविकारी,
परम अहिंसादिक व्रत धारी।
प्रभु सम आत्म-भावना भाओ,
जिन चरणों में शीस नवाओ।। 5।।

(153)

मुक्तिपथ के आदर्श, प्रभु महावीर हैं।
मेरे प्रभु हैं महान, देवादिक करते गुणगान।।
धरते योगीश्वर नित ध्यान, ऐसे महावीर हैं।। टेक।।
महावीर भगवान की, मूर्ति महा सुखकार।
नासा दृष्टि दिखावती, अन्तर सुख भंडार।। 1।।
प्रभु दर्शन उपजावता, सबको परमानन्द।
भाव विशुद्धि हो सहज, कटें कर्म के फन्द।। 2।।

विषय-कषायारम्भ तजूँ, धर निर्ग्रन्थ स्वरूप।
अपनी प्रभुता नाथ सम, प्रगटाऊँ शिव रूप।। 3।।
दर्शाया शुद्धात्मा, धन्य जिनेश्वर देव।
निजानन्द रस में पग्यो, शीस झुके स्वयमेव।। 4।।

(154)

(तर्ज : चित्स्वरूप महावीर...)

देखी वीर जिनेन्द्र, मूरति ज्ञानमयी।। टेक।।
दर्शन से जिनराज सहज ही, मेरी अन्तर्दृष्टि भयी।
अक्षय अद्भुत तुमसी प्रभुता दीखी,अन्तर तृप्ति भयी।। 1।।
भासे अपद इन्द्र चक्री पद,प्रभो उदासी सहज भयी।
रम्य विषय भी नहीं सुहावें,दृष्टि निज में अचल भयी।। 2।।
प्रगटे प्रभु निर्ग्रन्थ अवस्था,सहज रूप आनन्दमयी।
हो जग से निरपेक्ष परिणति,आत्मलीन वैराग्यमयी।। 3।।
अचल अनूपम शिवपद प्रगटे,यही भावना सहज भयी।
चरणों में प्रभु शीश नवाऊँ,मुक्तिमहल की राह लही।। 4।।

(155)

(तर्ज : वीर भज ले रे भाया...)

वीर बनेंगे, महावीर बनेंगे, महावीर बनेंगे, महावीर बनेंगे।। टेक।।
वीर प्रभु का शासन पाया, अनन्त तीर्थमय आतम पाया।
वीतरागी मार्ग का श्रद्धान धरेंगे।। 1।।
वीतराग जिनदेव जजेंगे, गुरु श्री निर्ग्रन्थ भजेंगे।
धर्म अहिंसा आचरण करेंगे।। 2।।
जिनवाणी नित ही अभ्यासें, वस्तु स्वरूप यथारथ भासे।
तत्त्वों का सम्यक् ज्ञान करेंगे।। 3।।

भूत-प्रेत से नहीं डरावें, नहीं विपत्ति में घबरावें।
निज-पर का भेद-विज्ञान करेंगे।। 4।।
नहीं पुण्य में हम अटकेंगे, परम स्वानुभव रस गटकेंगे।
त्याग दुर्मोह को निर्मोही बनेंगे।। 5।।
ज्ञायक रूप स्वयं को जानें, पर में इष्ट-अनिष्ट न ठानें।
उदासीन निज में ही तृप्त रहेंगे।। 6।।
जग से कुछ भी आस नहीं है, भोगों की अभिलाष नहीं है।
स्वाधीन ब्रह्मचर्य धर्म धरेंगे।। 7।।
समता धारें क्षोभ न लावें, निर्ग्रन्थ हो श्रेणी चढ़ जावें।
कर्म सर्व जीतकर मुक्ति वरेंगे।। 8।।

(156)

(तर्जः रंगा दे मेरे वीर...)

परिणति भी होवे तुम सम ही महावीर-महावीर।
ध्रुव स्वभाव तो तुम सम ही है अचल ज्ञानमय धीर।। टेक।।
तत्त्वों का सम्यक् निर्णय हो, भेद-विज्ञान स्व-पर का हो।
परम पारिणामिक ध्रुव आतम, सहज विषय दृष्टि का हो।।
निर्विकल्प आनन्दमय अनुभव, क्षण-क्षण शुद्धातम का हो।
जाननहार जनाय भेद नहिं, ज्ञाता-ज्ञान- ज्ञेय का हो।।
तृप्त स्वयं में तुष्ट स्वयं में, भाव रहें गम्भीर।। 1।।
संशय विभ्रम मोह रहित हो, ज्ञान परम सुखकार।
वर्ते नित वैराग्य-भावना, विषय-कषाय विडार।।
होय विरागी सब परिग्रह तज, निर्ग्रन्थ दीक्षा धार।
चर्या हो निर्दोष ज्ञानमय, साम्य भाव अविकार।।
घोर परीषह उपसर्गों में, होऊँ नहीं अधीर।। 2।।

ध्याता-ध्यान-ध्येय का भी, प्रभु न किंचित् भेद।
निर्मल शुक्लध्यान आनन्दमय प्रगटे, विनशे खेद।।
मोह मुक्त हो भाव मुक्त हो, अर्हत् पद प्रगटाय।
दर्श-ज्ञान-सुख-बल अनन्त प्रभु व्यक्तपने विलसाय।।
होय प्रवर्तन धर्मतीर्थ का, मिटे उपद्रव पीर।। 3।।
अहो! आत्मा तो अनादि से ही, सदैव निर्द्वन्द्व।
आराधन का सुमधुर फल है, अव्याबाध आनन्द।।
होय अयोगी दशा सहज ही, सर्व विभाव नशाय।
अशरीरी हो ज्ञान शरीरी, लोकोत्तम पद पाय।।
आवागमन रहित हो स्वामी, मैं भी तिष्ठूँ तुम ढिंग वीर।। 4।।

(157)

(तर्जः हे वीर तुम्हारे द्वारे पर ...)

हे वीरनाथ तुम दर्शन कर मन में अति ही आनन्द हुआ।
सम्यक् मुक्ति का मार्ग दिखा, निश्चिंत हुआ निर्द्वन्द्व हुआ।। टेक।।
महिमा अन्तर में भास रही, शब्दों से कैसे कहूँ प्रभो।
हो अनन्य शरण सर्वस्व तुम्हीं, सर्वस्व समर्पण रहे विभो।। 1।
निज परम भाव आराध्य रहे, आराधन मंगल रूप सदा।
ज्ञाता हूँ ज्ञाता मात्र रहूँ, वैभाविक परिणति हो न कदा।। 2।।
अब नहीं कामना शेष रही, जग से निराश होकर आया।
निष्काम नमन हो चरणों में, प्रभु सम निज रूप मुझे भाया।। 3।।
निज में ही निज से तृप्त रहूँ, निज की प्रभुता प्रगटाऊँगा।
तुम आवागमन विमुक्त हुए, मैं तुम समीप ही आऊँगा।। 4।।

प्रभु महाभाग्य से पाया है, यह दुर्लभ मंगलमय अवसर।
श्रद्धा के सुमन समर्पित हैं, विचरूँ जिनपंथ अहो सत्वर।।5।।
जिननाथ सदा जयवन्त रहें, नित भक्ति भाव से गुण गावें।
जिनतीर्थ सदा जयवन्त रहें, हम नित्य नये मंगल पावें।।6।।

(158)

आत्मन् हृदय के पट खोल, अब तो वीर प्रभु जय बोल।
कोई गावे कोई रोवे, उससे तू मत बोल।। टेक।।
तू न किसी का कोई न तेरा, नाटक करता मेरा-मेरा।
तुझे पड़ी है क्या दुनियाँ की, मत रस में विष घोल।।1।।
तेरी सूरत सुन्दर प्यारी, उसकी विमल छटा है न्यारी।
इधर-उधर क्यों फिरे भटकता, व्यर्थ बजावत ढोल।।2।।
तेरे घट में है परमातम, बनो मूढ़ मत भोले आतम।
तेरे घट में छिपा हुआ है, तेरा रत्न अमोल।। 3।।
ज्ञान दीप ले तिमिर हटा दे, निर्मल आतम ज्योति जगा दे।
भक्ति तुला के मन के मन से, मन के मन को तोल।।4।।

(159)

(तर्जः अमृत बरसे रे ...)

वीर वाणी बरसे रे, धर्मलाभ लई लो।
हृदय में हर्ष धरे, धर्मलाभ लई लो।। टेक।।
मोह की नींद में, वीत्यो अनन्तकाल।
भव-भव में भटका हुआ रे बेहाल।।
जगने की बेला आई रे, धर्म लाभ लई लो।।1।।

पुण्य के वैभव के मद में, तू फूल गयो।
पैसा की प्रीति में, धर्म को भूल गयो।।
तजने की बेला आई रे, धर्म लाभ लई लो।।2।।
भोगों की वासना में, तत्त्व से भ्रष्ट भयो।
पर की आकुलता में, जीवन से भ्रष्ट भयो।।
ज्ञानी समझावें रे, धर्म लाभ लई लो।। 3।।
खोटी खटपट में, नरभव चल्यो जाय।
दुर्लभ सुबोध कर, नातर फिर पछताय।।
अवसर न चूको रे, धर्म लाभ लई लो।। 4।।

(160)

(तर्जः वीर भज ले रे भाया वीर भज ले ...)

जयवन्तो प्रभु वीर हमारे, जयवन्तो प्रभु वीर।
शासन नायक धीर हमारे, जयवन्तो प्रभु वीर।। टेक।।
मंगल दिव्यध्वनि दर्शाती, आत्म स्वरूप महान।
विन्मूरति-चिन्मूरति अनुपम, है अक्षय गुणखान।। 1।
मुक्तिमार्ग बतलाया जग को, किया महा उपकार।
सर्व समर्पण करूँ तथापि, होय न प्रत्युपकार।। 2।।
चरण-शरण में आये प्रभुवर, कटें कर्म के फन्द।
आज निहारा द्रव्यदृष्टि से, आतम पूर्ण अबन्ध।। 3।।
भ्रम से भूला था निज वैभव, आज हुआ भ्रम दूर।
प्रभो! हुआ मेरे अन्तर में, परमानन्द भरपूर।। 4।।
अब तुम सम ही निज में थिर हो, बैठूँ पास तुम्हारे।
दर्शन पाया प्रभो आपका, धनि-धनि भाग्य हमारे।। 5।।

(161)

(तर्ज: मीठो-मीठो बोल थारो काईं बिगड़े ...)

महावीर-महावीर-महावीर हो, वर्द्धमान सन्मति अतिवीर हो।।टेक।।
अन्तिम तीर्थंकर सुखकारी, पंचम बालयती अविकारी।
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, साँचे तारणहार शिवंकर।। 1।।
सकल विभावों से हो न्यारे, शासन नायक भविजन प्यारे।
परम तत्त्व दर्शाया स्वामी, उपादेय तिहुँ जग अभिरामी।। 2।।
परम तत्त्व मैं जाना-जाना, परमानन्दमय प्रभु पहिचाना।
अन्तर्मुख हो ध्याऊँ-ध्याऊँ, भाव सहित प्रभु शीस नवाऊँ।।3।।
मोहमयी जग से घबराया, सहज मार्ग तुम ही दर्शाया।
तेरे पथ का हो अनुगामी, पाऊँ शिवपद अन्तर्यामी।। 4।।

(162)

आओ-आओ महावीर, मुक्तिमार्ग दिखाओ।। टेक।।
मिथ्या मोह अंधेरा छाया, ज्ञान ज्योति प्रगटाओ।
भवरूपी अटवी में भटके, सहज उपाय सुझाओ।। 1।।
नाना कल्पित मत इस जग में, जीवों को भरमावे।
ज्ञान-क्रिया की मैत्री भूले, पक्ष-विवाद बढ़ावे।। 2।।
अनेकान्तमय श्री जिनशासन, सबको मंगलकारी।
भेदज्ञान कर सब ही पावें, होवें शिवमगचारी।। 3।।
ज्ञायक रूप अनुभवन होवे, मिथ्या बुद्धि नाशे।
मोह क्षोभ से रहित साम्यमय, धर्म सहज परकाशे।। 4।।
ज्ञानमयी निजरूप हमारा, श्रद्धा ज्ञानमयी हो।
तृप्त स्वयं में तुष्ट स्वयं में, जीवन ज्ञानमयी हो।। 5।।

(163)

भक्ति भाव से पूरित हो हम, महावीर गुण गायेंगे।
महावीर सम निज शुद्धातम, सहजपने हम ध्यायेंगे।। टेक।।
ज्ञायक रूप लख्यो अपनो पद, पर में नहिं भरमायेंगे।
वीतराग पद साध्य हमारा, राग में नहीं अटकायेंगे।। 1।।
ज्ञाता-दृष्टा सहज रहेंगे, कर्त्ता बुद्धि न लायेंगे।
निजानन्द में तृप्त रहेंगे, पर- भोक्तृत्व नशायेंगे।। 2।।
पापोदय चाहे जैसा हो, पाप भाव नहीं लायेंगे।
पुण्योदय में नाहिं फसेंगे, शुभ में नहिं अटकायेंगे।। 3।।
मैत्री भाव धरें सब में ही, बैर क्षोभ नहीं लायेंगे।
संतोषी हो आत्मनिष्ठ हो, तृष्णा दूर भगायेंगे।। 4।।
तत्त्वज्ञान अभ्यास करेंगे, नित वैराग्य बढ़ायेंगे।
विषय - कषायारम्भ छोड़कर, निर्ग्रन्थ पद अपनायेंगे।। 5।।
सदा सहज निरपेक्ष रहेंगे, निर्विकल्प पद भायेंगे।
परम ब्रह्मचर्य पाकर, निज में ही रम जायेंगे।। 6।।
कर्म नशेंगे, गुण विकसेंगे, परमातम पद पायेंगे।
हुई प्रतीति स्वाश्रय से ही, भव सागर तिर जायेंगे।। 7।।

(164)

(तर्ज:आज हम जिनराज ...)

वीरनाथ के दर्शन करके अति हर्षाये।
अति हर्षाये-अति हर्षाये, वीर नाथ के दर्शन करके अति हर्षाये।।टेक।।
महाभाग्य से अहो जिनेश्वर, निकट आपके आये।
वीतरागता मय प्रभुता लख, आनन्द उर न समाये।। 1।।

तुम्हें निरखते अहो! महेश्वर जगत असार दिखाये।
भव - भोगों की प्रीति सु छूटे, भेदज्ञान जग जाये।। 2।।
मार्ग सहज अन्तर में दीखे, सद्दृष्टि प्रगटाये।
भाव विशुद्धि बढ़े सहज ही, भव भ्रमणा मिट जाये।। 3।।
प्रभु सम हो पुरुषार्थ हमारा, निज प्रभुता विलसाये।
प्रभु चरणों में शीस नवायें, जन्म सफल हो जाये।। 4।।

(165)

(तर्जः जिन गुण गाओ हर्षाओ जय-जय से नभ ...)

शिव सुख दायक त्रिभुवन नायक, वीर जिनेश्वर जय- जय-जय।।टेक।।
दर्शन-ज्ञान अनन्त विभो, सुख वीरज सु अनन्त प्रभो।
अक्षय प्रभुता प्रगट अहो।। वीर.।। 1।।
दोष अठारह नष्ट हुए, कामादिक निःशेष हुए।
परम ब्रह्म परमेश हुए।। वीर.।। 2।।
धर्म तीर्थ प्रभु दर्शाया, दिव्य तत्त्व जिन समझाया।
सहज मुक्तिपथ सिखलाया।।वीर.।।3।।
सर्व विभाव असार कहे, सारभूत निजभाव कहे।
चित्स्वरूप प्रभु परमादेय।। वीर.।। 4।।
हम तेरे अनुयायी हों, मुक्तिमार्ग के राही हों।
भाव सदा सुखदायी हों।। वीर.।। 5।।
भक्ति सहित तुम नाम जपूँ, चरणों में प्रभु शीस नमूँ।
निज स्वभाव में नाथ रमूँ।। वीर.।। 6।।

(166)

बोलो-बोलो-बोलो भाई, वीर प्रभु जय बोलो।
तौलो-तौलो-तौलो भाई, तत्त्वारथ को तौलो।। 1।।
परखो-परखो-परखो भाई, रत्नत्रय को परखो।
निरखो-निरखो-निरखो भाई, निज स्वभाव को निरखो।। 2।।
जानो-जानो-जानो भाई, जाननहार हूँ जानो।
मानो-मानो-मानो भाई, आतम प्रभु है मानो।। 3।।
भाओ-भाओ-भाओ भाई, आत्म-भावना भाओ।
ध्याओ-ध्याओ-ध्याओ भाई, चित्स्वरूप को ध्याओ।। 4।।
भागो-भागो-भागो, इन्द्रिय भोगों से तुम भागो।
त्यागो-त्यागो-त्यागो भाई, मोह क्षोभ को त्यागो।। 5।।
जागो-जागो-जागो भाई, आतम हित में जागो।
पागो-पागो-पागो भाई, निजानन्द में पागो।। 6।।

(167)

(तर्जः पारसनाम-पारसनाम मेरे प्रभु का ...)

जय महावीर-जय महावीर, जय अतिवीर-जय अतिवीर।। टेक।।
स्वयं सिद्ध प्रभु जय महावीर, वीतराग प्रभु जय महावीर।
ज्ञान शरीरी जय महावीर, अशरीरी प्रभु जय महावीर।। 1।।
नित्य निरंजन जय महावीर, भव दुख भंजन जय महावीर।
सन्मतिदाता जय महावीर, भविजन त्राता जय महावीर।। 2।।
आनन्द दायक जय महावीर, तिहुँ जग नायक जय महावीर।
पंचकल्याणक पूजित वीर, अन्तिम तीर्थंकर महावीर।। 3।।

मंगलमय स्वामी महावीर, अन्तर्यामी जय महावीर।
प्रशममूर्ति अद्भुत महावीर, हृदय विराजो जय महावीर।।4।।
नित जयवन्तो श्री महावीर, शीस नवाऊँ जय महावीर।
शासन नायक जय महावीर, शिव सुखदायक जय महावीर।।5।।

(168)

वीर जिनेश्वर, वीरपना प्रगटाऊँ ।। टेक।।
एकाकी स्वाधीन सहज निर्ग्रन्थ मार्ग पर धाऊँ।
निर्ममत्व हो देहादिक से भिन्न आत्मा भाऊँ।। 1।।
निज में ही संतुष्ट रहूँ, पर की सहाय नहीं चाहूँ।
असंग स्वभावी चित्परमेश्वर असंगपने ही ध्याऊँ।।2।।
विषय-कषायारम्भ रहित हो, ज्ञानानन्द मनाऊँ।
अहो! अतीन्द्रिय आत्माश्रय से, सहज जितेन्द्रिय रहाऊँ।।3।।
साम्यभाव वर्ते मंगलमय, सर्व विभाव नशाऊँ।
निज अनुभव सुख वेदत, सहज सिद्धपद पाऊँ।। 4।।

(169)

वीर प्रभु के शुभ शासन में,
जागी है उज्ज्वल ज्योति रे।
भक्ति हृदय में उछलती।। टेक।।
वीर प्रभु ने भव्यों के उर में,
बहाया अमृत स्रोत रे।। भक्ति.।। 1।।
अमृतधारा बरसी भरत में,
हरषे भव्य मयूर रे।। भक्ति.।। 2।।

आत्मधर्म का सूर्य प्रकाशन,
दशों दिशा उद्योत रे।। भक्ति.।। 3।।
भागा घोर मिथ्यात्व अंधेरा,
जगमग सम्यक् ज्योति रे।। भक्ति.।।4।।
भक्त आपके लघुनन्दन हम,
आज करैं जयकार रे।। भक्ति.।। 5।।
निज स्वरूप की लब्धि होवे,
मंगलमय सुखकार रे।। भक्ति.।। 6।।

(170)

(तर्जः वीर भजले रे भाया...)

गूँजे जय-जयकार, गूँजे जय-जयकार।
जय-जयकार, वीर प्रभु मोक्ष पधारे हैं।।टेक।।
सिंह पर्याय में सम्यक् पायो,
अपनो सुख अनुभव में आयो।
पायो पथ अविकार।। वीर प्रभु.।। 1।।
कुण्डलपुर में जन्म लियो है,
त्रिशला माँ को धन्य कियो है।
इन्द्र कियो जयकार।। वीर प्रभु.।। 2।।
यौवन में ही दीक्षा धारी,
प्रभु अपनी निधि आप सम्हारी।
राग- द्वेष विडार।। वीर प्रभु.।। 3।।

अविचल ध्येय स्वरूप सु ध्यायो,
निर्मल शुक्लध्यान प्रगटायो।
घाति कर्म भये छार।। वीर प्रभु.।। 4।।
केवल लक्ष्मी उदित हुई है,
दिव्य देशना ध्वनित हुई है।
सब जग को सुखकार।। वीर प्रभु.।। 5।।
पावापुर में अवसर आयो,
अन्तिम शुक्लध्यान प्रगटायो।
हुए आप भव पार।। वीर प्रभु।। 6।।
रागादिक भावों से न्यारे,
प्रभुवर सिद्ध स्वरूप विराजे।
अशरीरी अविकार।। वीर प्रभु।। 7।।
प्रभु निज ध्येय स्वरूप सु ध्याऊँ,
ज्ञाता रूप सदैव रहाऊँ।
पाऊँ शिव अविकार।। वीर प्रभु.।। 8।।
निर्मल भेदज्ञान भवि करना,
निज ज्ञायक को ही अनुभवना।
ये ही मुक्तिद्वार।। वीर प्रभु.।। 9।।
प्रभुवर समयसार दर्शायो,
सर्वोत्तम ज्ञायक बतलायो।
तीन लोक में सार।। वीर प्रभु.।। 10।।

(171)

ओम् जय महावीर प्रभो, स्वामी जय महावीर प्रभो।
वर्द्धमान-अतिवीर-वीर अरु सन्मति नाम विभो।। टेक ।।
आत्मज्ञानी विरागी समदृष्टि धारी, स्वामी समदृष्टि धारी।
मिथ्या मोह विनाशक, ज्ञान ज्योति जागी।। ओम जय.।। 1।।
जल तैं भिन्न कमल ज्यों रहिये, घर में बालयती।
राजपाट ऐश्वर्य छोड़ सब, ममता मोह हती।। ओम जय.।।2।।
बारह वर्ष मुनिव्रत लेकर, आतम ध्यान किया।
शुक्लध्यान में कर्म जलाकर,अर्हत् पद सु लिया।।ओम जय.।।3।।
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी, शिवमग परकाशी।
हरि हर ब्रह्मा नाथ तुम्हीं हो,जय-जय अविनाशी।। ओम जय.।।4।।
पावापुर के बीच सरोवर, आकर योग तजे।
हन अघातिया दुष्ट कर्म सब, शिवपुर जाहि बसे।। ओम जय।।5।।
द्रव्य तथा गुण पर्यय से जो, प्रभु तुमको जाने।
वह निज आतम को पाकर फिर सकल मोह हाने।। ओम जय.।।6।।

(172)

(तर्ज: चलो-चलो मंदिर में दर्शन करेंगे ...)

आओ भवि जिनवर की भक्ति करेंगे,भक्ति करेंगे, वाणी सुनेंगे।।टेक।।
वीर प्रभु ने केवल पायो,छियासठ दिन नहिं अवसर आयो।
श्रावण वदी एकम दिन पावन करेंगे।। आओ.।। 1।।
अवधिज्ञान से इन्द्र जानकर,नहीं सभा में कोई गणधर।
गौतम द्विज प्रभु के गणधर बनेंगे।। आओ.।। 2।।

पूछा अर्थ इन्द्र इक पद का,समझे न विप्र चढ्यो रस मद का।
बोले तेरे गुरु से हम चर्चा करेंगे।। आओ.।। 3।।
मानस्तंभ देख समकित लह,सप्त ऋद्धि अरु चार ज्ञान सह।
हुए गणी हमको अब, तत्त्व कहेंगे।। आओ.।। 4।।
खिरी दिव्यध्वनि अविरल रूप से,काढ़नहारी संसार कूप से।
सार प्रवचन का समाधि में रहेंगे।। आओ.।। 5।।
परम्परा दिगम्बर से आई जो वाणी,आज भी सुनाएँ यहाँ सम्यक् ज्ञानी।
वाणी को सुनकर तत्त्व निर्णय करेंगे।। आओ.।। 6।।
तत्त्वों के निर्णय से सम्यक्त्व पाकर, ज्ञानमयी चारित्र अपनाकर।
शुक्लध्यान द्वारा परमात्मा बनेंगे।। आओ.।। 7।।

(173)

महावीर ने क्या किया, मिथ्यातम को दूर किया।
सबसे भिन्न त्रिकाली आतम, स्वानुभूति कर जोड़ लिया।। 1।।
जग का होता स्वयं परिणमन, मेरा उसमें हाथ नहीं।
मैं यदि उसे बदलना चाहूँ, तो सुख का उत्पाद नहीं।। 2।।
दृष्टि अतः हटाकर पर से, निज को दुख से पार किया।
यही मार्ग हितकारी सबको, ऐसा ही उपदेश दिया।। 3।।
निज की भी परिणति क्रम से ही, होती इसमें भेद नहीं।
उसका भी ज्ञाता ही रहना, करना उसमें खेद नहीं।। 4।।
ऐसा चिंतन करते-करते दोष दृष्टि को त्याग दिया।
ध्रुव स्वभाव में तन्मय होकर, निज अनन्त सुख प्राप्त किया।। 5।।

दुख का कारण मिथ्यादर्शन, राग भाव अज्ञान है।
इनको दूर किया जब प्रभु ने, पाया पद निर्वाण है।। 6।।
वह निर्वाण महासुखमय है, अन्य सभी दुख रूप है।
बाह्य जगत की ममता त्यागे, स्वयं होय शिव भूप है।। 7।।
प्रभु समान ही उद्यम कर लें, आत्मा की पहिचान धरें।
यथाजात निर्ग्रन्थ रूप धर, भाव शुभाशुभ दूर करें।। 8।।
चित्स्वरूप ध्रुव ध्येय सु ध्यावें,दुखमय सर्व विभाव हरें।
सकल कर्ममल वर्जित अनुपम, परमातम पद प्राप्त करें।। 9।।
निर्वाण महोत्सव तभी मनेगा, इसका यही प्रयोजन है।
राग-द्वेष को दूर कराने को ही, यह आयोजन है।। 10।।

(174)

श्री पंच बालयति स्तुति

(तर्ज : निर्गन्थ महामुनिराज, आज मैंने सपने में देखे ...)

पंच बालयति जिनराज, आज मैंने सपने में देखे।
श्री वासुपूज्य-मल्लि-नेमि, पार्श्व-वीर सपने में देखे।।
सपने में देखे, प्रत्यक्ष से देखे।। टेक।।
ब्रह्मचर्य की करें प्रेरणा, महिमा अपरम्पार।। 1।।
परम ब्रह्म निज रूप दिखावे, उमगे हर्ष अपार।। 2।।
रंग-राग भेदों से न्यारा, जामें दुख न लगार।। 3।।
ब्रह्मचर्य को कष्ट समझता, भूल मिटी दुःखकार।। 4।।
भोगों में सुख बुद्धि ही नाशी, दीखे सर्व असार।। 5।।
विषयों में मन ही न जावे, नव-बाढ़ होय सुखकार।।6।।

नहीं नपुंसक नारी-नर मैं, परम पुरुष अविकार।। 7।।
सहज सुखमय परम शान्तिमय, शक्ति अनन्त भंडार।। 8।।
आत्मन्! प्रबल पराक्रम प्रगटे, जीतूँ सर्व विकार।। 9।।
ब्रह्मचर्यमय होय परिणति,यही भावना सार।। 10।।

(175)

श्री सीमंधर स्तुति

सीमंधर आदि सु तीर्थंकर, शाश्वत विदेह में राज रहे।
रागादि विभाव विनष्ट हुए, निज प्रभुता युक्त विराज रहे।। 1।।
प्रभु की पावन दिव्यध्वनि में, वस्तु स्वभाव ध्वनित होवे।
आत्मबोध भवि करें प्रवर्तित, मंगल धर्म तीर्थ होवे।। 2।।
ज्ञान चक्षु से दर्शन पाऊँ, भाव वंदना हे जिननाथ।
सविनय अर्घ्य समर्पित स्वामी, ध्याऊँ महिमामय निज नाथ।। 3।।

(176)

श्री बाहुबली स्तुति

(तर्जः धन्य-धन्य आज घड़ी कैसी सुखकार है ...)

बाहुबली की शान्त मुद्रा कैसी सुखकार है।
रोम-रोम से शान्ति झलकती, प्रभुता अपरम्पार है।। टेक।।
जग का वैभव छोड़ आपने, निज का वैभव पाया है।
आत्म ध्यान की अग्नि जलाकर, कर्म समूह जलाया है।।
हुए प्रभो! निष्कर्म निरंजन, दर्श मंगलकार है।। 1।।
ऋषभ देव से प्रथम सिद्धपद, प्रभो आपने पाया है।
सिद्ध समान सहज शुद्धातम, उपादेय दर्शाया है।।
परभावों से शून्य आत्मा, मुक्ति का आधार है।। 2।।

सहज ज्ञानमय प्रभुता प्रभुवर, आज समाई अन्तर में।
अचल ध्यानमय मूरति स्वामिन्, आज बसी मेरे उर में।।
प्रभु प्रसाद से जाना मैंने, अपना जाननहार है।। 3।।
भक्ति विभोर हुआ हे प्रभुवर चरणों शीस नवाता हूँ।
ज्ञानमयी वैराग्य भावना, अहो जिनेश्वर भाता हूँ।।
हुआ उदास चित्त विषयों से, आनन्द अपरम्पार है।। 4।।

(177)

(तर्जः आदीश्वर स्वामी वन्दूँ मैं बारम्बार ...)

बाहुबली स्वामी! वन्दूँ मैं बारम्बार।
धन्य भाग्य प्रभु दर्शन पायो, सहज नमन अविकार।। टेक।।
मुक्तिपद के अनुपम साधक, प्रशममूर्ति सुखकार।
निर्विकार प्रभु सहज दिगम्बर, महिमा अपरम्पार।। 1।।
प्रथम मदन पद पायो स्वामिन्, जान्यो जगत असार।
छोड़ परिग्रह हो वनवासी, जिन दीक्षा अवधार।। 2।।
वामी बनाकर सर्प बसे थे, बेलों का विस्तार।
हुआ देह पर तो भी प्रभुवर, रहे अडिग अविकार।। 3।।
शीस धरें चक्री चरणों में, ध्यान मग्न सुखकार।
ऐसे हुए मुनीश्वर प्रगट्यो, अनन्त- चतुष्टय सार।। 4।।
आदीश्वर से प्रथम सिद्ध हो, तिष्ठे मुक्ति मँझार।
प्रगट कर रहे शुद्धातम की, महिमा अपरम्पार।। 5।।
आप मिले अपनो पद पायो, आनन्द भयो अपार।
यही भावना जीवन बीते, जिनवर चरण मँझार।। 6।।

(178)

(तर्ज: दर्शन नहिं ज्ञान ना...)

चरणों में बाहुबली के, मैं सविनय शीस नवाऊँ।
हो प्रगट आत्मबल ऐसा, प्रभु निज में ही रम जाऊँ।। 1।।
पर भावों से अति न्यारा, शाश्वत ज्ञायक प्रभु जाना।
दुर्मोह महातम नाशा, विभु हुआ भेद-विज्ञाना।। 2।।
बाहर में कुछ न सुहावे, तृप्ति निज में ही पाई।
दर्शन पाया अविकारी, निज निधि निज में ही पाई।। 3।।
कर्त्तृत्व बुद्धि विनशाई, ज्ञातृत्व सहज प्रगटाया।
निर्ग्रन्थ रहूँ हे स्वामिन्! बस यही भाव उमगाया।। 4।।
निःशल्य निरवलम्बी हो, अविचल शुद्धातम ध्याऊँ।
वैभाविक कर्म नशावें, परमातम निज पद पाऊँ।। 5।।
हूँ जाननहार सहज ही, प्रभु जाननहार रहाऊँ।
निष्काम मुक्त अविकारी, प्रभु जाननहार रहाऊँ।। 6।।

(179)

(तर्ज: जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ ...)

बाहुबलि स्वामी! दर्शन की बलिहारियाँ।। टेक।।
अहो! परम ज्ञायक प्रभु जाना, पर भावों से न्यारा।
सहज चतुष्टयवंत अनुपम, स्वयं सिद्ध अविकारा।। 1।।
जिसका एक स्फुरण ही तो, मोह कलंक नशावे।
स्वानुभूति के उदय होत ही, सहजानंद विलसावे।। 2।।
निज परमात्म भावना से ही, सर्व विकार नशावें।
सहज होय निर्ग्रन्थ अवस्था, आत्म ध्यान प्रगटावे।। 3।।

आत्म ध्यान की शोधक अग्नि, सकल कर्ममल जारे।
स्वाभाविक प्रभुता मंडित हो, ध्रुव शिवलोक पधारे।। 4।।
आत्म बोध के निमित्तभूत, प्रभुभाव नमन सुखकारा।
जयवंतो जिनवर का शासन, समयसारमय प्यारा।। 5।।

(180)

(तर्ज: सांवलिया पारसनाथ शिखर पर ...)

भले विराजे बाहुबली प्रभु! भले विराजे जी।
आत्म स्वरूप में सहज विराजे, भले विराजे जी।। टेक।।
तज वैभव निस्सार जगत का, आतम वैभव पाया।
धन्य- धन्य प्रभु वीतराग, दर्शन कर हर्षाया।। 1।।
साधु दशा में अहो आपने, ऐसा ध्यान लगाया।
बेल लताएँ चढ़ी सु तन पे, चक्री शीस नवाया।। 2।।
प्रभुवर! ऋषभदेव से पहले, तुमने शिव पद पाया।
अशरीरी हो स्वयं सिद्ध, शुद्धात्म हमें दिखाया।। 3।।
शान्त दिगम्बर सौम्य मूर्ति लख, भेदज्ञान प्रगटावें।
भक्ति भाव से भरा हृदय, प्रभु चरणों शीस नवावें।। 4।।

(181)

(तर्ज: जय बोलो पारस स्वामी की ...)

जय बोलो बाहुबली स्वामी की, जय-जय बोलो।। टेक।।
प्रतिमा परम दिगम्बर सोहे, निरखत भविजन का मन मोहे।
अति सौम्य दशा जगनामी की।। जय बोलो.।। 1।।
ऐसा निश्चल ध्यान लगाया, बेलों ने भी आश्रय पाया।
अति अनुपम है शिव गामी की।। जय बोलो.।। 2।।

चक्री ने भी शीस नवाया, क्षपक श्रेणी चढ़ केवल पाया।
धनि मूरति अन्तर्यामी की।। जय बोलो.।। 3।।
आदीश्वर से पहले ही प्रभु, हुए मुक्त अविकारी हे विभु।
जय-जय हो त्रिभुवन नामी की।। जय बोलो.।। 4।।
आओ प्रभु को शीस नवाओ, आत्म ध्यान की शिक्षा पाओ।
उत्तम शरणा अभिरामी की।। जय बोलो.।। 5।।

(182)

(तर्जः प्रभु बाहुबली ऐसा बल हो...)

जय बाहुबली- जय बाहुबली, जय बाहुबली- जय आत्मबली।
जय मोहजयी जय कामजयी, जय द्वेषजयी जय रागजयी।। 1।।
जय क्रोधजयी जय मानजयी, माया विजयी जय लोभजयी।
हो प्रभु कर्मादि विभावजयी, पाई अविनाशी सिद्ध- मही।। 2।।
त्रिकाल स्वरूप सु ज्ञानमयी, प्रगटी परिणति भी ज्ञानमयी।
साक्षात् अकर्त्ता ज्ञाता प्रभु, बस देखन- जाननहार सही।। 3।।
प्रभु निर्विकल्प आनंदमयी, अतीन्द्रिय ज्ञानानंदमयी।
निर्द्वन्द्व परम आनंदमयी, जय अव्याबाध आनंदमयी।। 4।।
हो स्वयं मुक्त हो सहज मुक्त, ज्ञान मात्र अनंता शक्तिमयी।
जय महिमा अपरम्पार विभो! अद्वैत नमन जिनराज सही।। 5।।

(183)

(तर्ज : प्रभु बाहुबली ऐसा बल हो...)

प्रभु बाहुबली जय-जय-जय-जय,
हे योगीश्वर तज जगत विभव।
पाया निज आत्म-विभव अक्षय।। टेक।।

अशरीरी शुद्ध चिद्रूप अहो,
निष्क्रिय अतीन्द्रिय आनंद भयो।
निर्ग्रन्थ सहज निज पद ध्याया,
हो गया सर्व कर्मों का क्षय।। 1।।
प्रभु अचल ध्यानमय शुभ मुद्रा,
दर्शाती निज प्रभुता अव्यय।
बस यही भावना होती है,
परिणति होवे निज माँहि विलय।। 2।।
तुम सम तन, भोग भुजंग दिखें,
धारूँ मुनि मुद्रा हो निर्भय।
निश्चिंत रहूँ, निज ध्यान धरूँ,
हो जीवन एकाकी निस्पृह।। 3।।

(184)

(तर्ज : वीर भज ले रे भाया...)

वीर भज ले, वीर भज ले।
तज झूठे जंजाल जगत के, वीर भज ले।। टेक।।
ऐसो अवसर मिलन कठिन है, मोह तज दे।
देह भिन्न है जीव भिन्न है, ज्ञान कर ले।। 1।।
राग भिन्न है ज्ञान भिन्न, पहिचान कर ले।
सिद्ध समान स्वयं शुद्धातम, श्रद्धा धर ले।। 2।।

ध्याने योग्य सहज परमातम, ध्यान धर ले।
आत्मध्यान से कर्म कटेंगे, निश्चय कर ले।। 3।।
तज परिग्रह जंजाल शीघ्र ही, मुनिपद धर ले।
स्वयं-स्वयं में मग्न होयकर, वीर बन ले।। 4।।

(185)

मैं उस पथ का अनुगामी हूँ, जिस पर चलकर प्रभु मुक्त हुए।।टेक।।
है मूल अहो सम्यक् दर्शन, पथ सम्यग्ज्ञान विरागमयी।
पर से निरपेक्ष सहज स्वाश्रित, निर्ग्रन्थ मार्ग आनन्दमयी।। 1।।
अविरल आतम अनुभव वर्ते, स्वयमेव स्वयं में तृप्ति हो।
सब ज्ञेय ज्ञान में रहें भले पर किंचित् नहीं आसक्ति हो।। 2।।
नहीं असत् विभावों की चिन्ता, नहीं वांछा हो पर भावों की।
निर्वेद रहूँ, निष्काम रहूँ, नहीं चंचलता हो भावों की।। 3।।
आराधन में ही मग्न रहूँ, ध्येय-ध्याता-ध्यान विकल्प नहीं।
निश्चलता हो अविकलता हो, जहँ कोई अन्तर्जल्प नहीं।। 4।।
बस सहज ध्यान-धारा वर्ते, भव बन्ध टूटें शिव पाऊँ।
ज्ञायक हूँ ज्ञायक रहूँ सदा, अपनी प्रभुता मैं विलसाऊँ।। 5।।

(186)

(तर्ज : रेल चली भई रेल चली ...)

होड़ लगी है होड़ लगी,प्रभु भक्ति की होड़ लगी।
महाभाग्य से अवसर आया,सबके मन में आनन्द छाया।।टेक।।

प्रभु भक्ति बिन जीवन निष्फल,विषय-कषायों में जाता।
पाप पोटली सिर से बाँधे, मूरख पीछे पछताता।। 1।।
धन की शोभा दान से,शास्त्र श्रवण से कान।
तीरथ वंदे पग सफल,आत्मज्ञान से ज्ञान।। 2।।
अध्रुव को ध्रुव जानकर,हुआ बहुत हैरान।
समयसार जाने जभी,लगे असार जहान।। 3।।
नीर न निकले कूप से,वहीं व्यर्थ सड़ जाय।
दान दिए बिन मूढ़ धन,यहीं पड़ा रह जाय।। 4।।
धन्य प्रभो! दर्शन हुए, पाई शिवपुर राह।
सर्व समर्पण प्रभु चरण, रही न किंचित् चाह।। 5।।

2. श्री जिनवाणी भक्ति

(187)

स्वाध्याय महिमा

संसार सागर पार करने को, सुदृढ़ नौका यही।
कषाय अटवी दग्ध करने को, दावानल है कही।। 1।।
पाप रूप उलूक को, स्वाध्याय ही मार्तण्ड है।
शान्ति सागर वृद्धि कर्त्ता, पूर्णिमा का चन्द्र है।। 2।।
मूल भेद-विज्ञान का, अरु हेतु धर्म ध्यान का।
भोगों की रुचि दूर करने, विषम ज्वर इसको कहा।। 3।।
शुभ गुणों के संग्रह में, भूप सम स्वाध्याय है।
इसलिए बारह तपों में, परम तप स्वाध्याय है।। 4।।

(188)

मंगलाचरण

परमेष्ठी वाचक ओंकार को, नित योगीगण ध्याते हैं।
ऐसे काम मोक्ष दाता को, सादर शीश नवाते हैं।। 1।।
जिस वाणी रूपी धारा ने, प्रक्षालित जग-मल को कीना।
मुनियों से उपासित सरस्वती, मम सकल पाप विध्वंस करो।। 2।।
अज्ञान तिमिर से अंध नेत्र, मम ज्ञानांजन की शलाका से।
जिनने खोले उन गुरुवर की, महिमा गाऊँ किन शब्दों से ।। 3।।
बस भक्ति पूर्वक नमस्कार कर, शरण उन्हीं की लेता हूँ।
श्री परम गुरु का अभिनन्दन, आचार्यों की थुति करता हूँ।। 4।।
पापों को दूर भगा करके, कल्याण मार्ग देने वाला।
है आत्म-धर्म से सम्बन्धित, भव्यों को बोध कराता है।। 5।।
यह पाप प्रणाशक-पुण्य प्रकाशक, समयसार जी परमागम।
पंच-परावर्तन अभाव कर, सच्चे सुख का दाता है।। 6।।
इसके मूल कर्त्ता श्री सर्वज्ञ, तदुत्तर गणधर जी।
प्रतिगणधरादि की परम्परा से, श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी हैं।। 7।।

(189)

(तर्ज : जिनशासन की प्रभावना...)

जिनवाणी माँ की वंदना, उल्लास से करो।
जिनवाणी का स्वाध्याय, नित उत्साह से करो।। टेक।।
अक्षर शुद्धि अर्थ पहिचानो,शब्द-अर्थ दोनों संग जानो।
योग्यकाल में यथा विधि,स्वाध्याय नित करो।। 1।।

नाम गुरु का नहीं छिपाओ,मिथ्या अहंकार नहीं लाओ।
बार-बार अभ्यासो अरु,उपधान तुम करो।। 2।।
शास्त्रों का बहुमान सु करना,विनय भाव अपने में धरना।
तत्त्वों का सम्यक् निर्णय कर,स्वानुभव करो।। 3।।
बारम्बार भावना भाओ,ज्ञानमयी वैराग्य बढ़ाओ।
साक्षात् मुक्ति का कारण,पद निर्ग्रन्थ धरो।। 4।।
ध्याओ अविरल आत्म स्वरूप,प्रगटाओ अक्षय शिव रूप।
जिनवाणी माँ को माँ कहना,यों सार्थक करो।। 5।।

(190)

जिनवाणी साँची माता हमारी,
मोह छुड़ावन हारी रे।
ज्ञान जगावन हारी रे।। टेक।।
जिनवाणी सन्मार्ग दिखावे,
चलना सिखावे, आगे बढ़ावे।
दोष नशावन हारी रे।। 1।।
पुण्य-पाप का फल दर्शावे,
सब संसार असार बतावे।
धर्म सिखावन हारी रे।। 2।।
मुक्तिमार्ग निर्ग्रन्थ दिगम्बर,
नहीं क्लेश, नहीं जहँ आडम्बर।
सहज दिखावनहारी रे।। 3।।
वस्तु स्वभाव परम अविकारी,
दिखलाती माता उपकारी।
बंध मिटावनहारी रे।। 4।।

जिनवाणी हृदय में बस गयी,
दुर्भावों की संतति नश गयी।
ज्ञानकला विस्तारी रे।। 5।।
भक्ति भाव से शीस नवावें,
पढ़ें-पढ़ावें चिन्तें ध्यावें।
हों चैतन्य विहारी रे।। 6।।

(191)

(तर्ज :जिनवाणी सुन उपदेशी खोल ले ...)

जिनवाणी हम सबको सुखकारी, सुखकारी, आनन्दकारी ।।टेक।।
वस्तु स्वरूप सहज दर्शावे, मंगलमय मंगलकारी।
सुनत भेदविज्ञान होत है, स्वानुभूति हो अविकारी।। 1।।
सब परिणमन स्वतंत्र बतावे, कर्त्तृत्व नाशे दुःखकारी।
भोग-रोग सम महाक्लेशमय, ज्ञाता भाव आनन्दकारी।। 2।।
पुण्य-पाप दोऊ संसारा, वीतरागता हितकारी।
आश्रय योग्य एक शुद्धातम, जानि नमूँ जग हितकारी।। 3।।

(192)

(तर्ज : गम्भीर गुरुता ...)

जिनवाणी साँची माता हमारी, सब ही को आनन्ददायी।।टेक।।
अहो! दिव्य जिनवर की वाणी, अंग रचे सुन गणधर ज्ञानी।
नित्य बोधिनी सुखदायी।। सब ही को.।। 1।।
अनेकान्तमय तत्त्व बताया, भेदज्ञान का मार्ग सुझाया।
अनुभव की विधि दर्शायी।। सब ही को.।। 2।।
आतम अनुभव शिव सुख दाता, मिटे तत्क्षण सर्व असाता।
मंगलमय मंगलदायी।। सब ही को.।। 3।।

जो नित जिनवाणी अभ्यासे, ताको मोहमहातम नाशे।
शुद्धात्म रुचि प्रगटायी।। सब ही को.।। 4।।
ज्ञानमयी वैराग्य जगावे, माँ निर्ग्रन्थ दशा प्रगटावे।
करें वंदना शिर नाई।। सब ही को.।। 5।।

(193)

बड़ी भली जिनवाणी माँ, तत्त्वामृत पान कराती है।
सदा सुलाती दुनियाँ की माँ, ये माँ हमें जगाती है।। टेक।।
काया रूप अटारी में, कर्मों की सेज बनी सुन्दर।
ओढ़ कल्पना की चादर, मोही चेतन सोवे अन्दर।। 1।।
बजे मौत का डंका प्रतिक्षण, विषय चाह की आग जले।
कर्मों की भयानक मार पड़े, तो भी यह नींद से नहीं ढले।। 2।।
जिनवाणी ही निज पूतों की, ऐसी नींद भगाती है।
कर्मों की भयानक मारों से, छुटकारा हमें दिलाती है।। 3।।
भोगों से रोग अनेक होंय, ज्यों भोगे त्यों तृष्णा बढ़ती।
तन-मन-धन अरु लाज त्याग, परिणति उनमें ही जा रमती।। 4।।
इन भोगों की कीचड़ में फँस, जो तड़फ-तड़फ दुःख पाते हैं।
नहीं निकल पाते उनमें अटके, निज धर्म गँवाते हैं।। 5।।
उन विषयों का नग्न रूप, जिनवाणी हमें दिखाती है।
जिसको सुनने-पढ़ने से तो, स्वयमेव विरक्ति आती है।। 6।।
जग के झूठे सम्बन्धों को सच्चा माने उनमें धावे।
अन्याय-अनीति पापादिक से, कर्म बन्ध भारी बाँधे।। 7।।
पर जो सम्पत्ति करे इकट्ठी, उसको सब ही भोगेंगे।
अरु फल पापों का पाने को, सब तुझे अकेला छोड़ेंगे।। 8।।

इन हेतु नहीं अब पाप करो, जिनवाणी ही चेताती है।
अपने आकुलता-रहित अतीन्द्रिय सुख की याद दिलाती है।।9।।
जड़ तन को ही निजरूप मान, उसमें ही मग्न रहा निशदिन।
निज को भूला काया पोषण में, पाप कमाया है प्रतिक्षण।। 10।।
पर ये कृतघ्न काया तो, घन के इन्द्रधनुष सम अस्थिर है।
अरु महा अशुचि व्याधि, आधि रूपी, व्यालों का यह घर है।।11।।
इस काया से भी मुक्तिमार्ग, साधन करना सिखलाती है।
रत्नत्रय सुख का मार्ग बता, दुखों का अन्त सुझाती है।। 12।।
ऐसी उपकारी जिनवाणी माँ के, चरणों में नमन करूँ।
नित पठन-श्रवण-चिन्तवन करूँ, अरु निज स्वरूप का ध्यान धरूँ।।3।।
जिनवाणी द्वारा दरशाये, सच्चे शिवपथ का पथिक बनूँ।
आश्रय लेकर निज आतम का, रागादि भाव का नाश करूँ।। 14।।
जिनवाणी की सेवा करने से ही, सम्यक् बुधि आती है।
निज की पहिचान सु होती है, भव की फाँसी कट जाती है।। 15।।

(194)

जिनवाणी अमृत झरे, पीवे सो शिव पद लहे।। टेक।।
भव के भाव रहित शुद्धातम, ज्ञानमात्र शाश्वत परमातम।
निरपेक्ष ज्ञायक रहे, समझे सो शिवपद लहे।। 1।।
उत्तमार्थ परमार्थ आत्मा, शरणभूत एक मात्र आत्मा।
जिनवाणी सत्य कहे, समझे सो शिवपद लहे।। 2।।
नव तत्त्वों से न्यारा आतम, नित्य निरंजन निज शुद्धातम।
पक्षातिक्रान्त गहे, सहज ही शिवपद लहे।। 3।।

स्वयं-स्वयं में पूर्ण आत्मा, सारभूत आदेय आत्मा।
निज में ही तृप्त रहे, सहज ही शिवपद लहे।। 4।।
सुन जिनवाणी तत्त्व पिछाने, अन्तर्मुख हो निज पद जाने।
निज में ही थिरता धरे, सहज ही शिव पद लहे।। 5।।
संकट त्राता, आनन्ददाता, लोकोत्तर जिनवाणी माता।
नित प्रति शीश धरे, सहज ही शिवपद लहे।। 6।।

(195)

नमो-नमो जिनवाणी माता, शाश्वत् मंगलकारी।
नमो-नमो जिनवाणी माता, मोह तिमिर हरतारी।। टेक।।
नव तत्त्वों में छिपी हुई, चैतन्य ज्योति अविकारी।
नित्य व्यक्त आनन्दरूप, चिद्रूप दिखावनहारी।। 1।।
बंध विदारन प्रज्ञा छैनी, मात बतावनहारी।
धर्म कल्पतरु उपवन धरनी, शम सुख सुमन सु वारी।। 2।।
विषय चाह दवदाह बुझावन, साम्य सुधा विस्तारी।
पीवत स्वस्थ भये भवि प्राणी, जन्म जरा मृत टारी।। 3।।
अनेकान्तमय वस्तु कथन को, स्याद्वाद सुखकारी।
नय-प्रमाण युक्ति से माता, तत्त्व कहे अविकारी।। 4।।
रत्नत्रयमय धर्म बताया, सबही को हितकारी।
परम अहिंसा रूप जगत में, राग-द्वेष निरवारी।। 5।।
द्वादशांगमय श्री जिनवाणी, चार अनुयोग सुखकारी।
मर्म पिछाने भेद-विज्ञानी, आतम अनुभव धारी।। 6।।
कहे द्रव्य छह, सात तत्त्व, द्रव्यानुयोग सुखकारी।
आश्रय करने योग्य एक, ध्रुव शुद्धातम अविकारी।। 7।।

ज्ञेय मात्र जानो अजीव, आश्रव-बंध है दुःखकारी।
संवर-निर्जरा-मोक्ष प्रगट योग्य कहे सुखकारी।। 8।।

(196)

वीतरागता की पोषक अरु, श्री जिनमुख से हो उद्‌भूत।
गणधरादि पुरुषों से सेवित, भव्यों में हो परम प्रसिद्ध।। 1।।
वस्तु तत्त्व दर्शाने वाली, सच्चे शिव सुख की दाता।
सम्यक् रत्नत्रय उर प्रकटे, शरण तुम्हारी हूँ माता।। 2।।
जैसे दीपक द्वारा तम से, घिरा मार्ग होता आसान।
वैसे माता! तव अवलम्बन, भव्यों को देता सद्ज्ञान।। 3।।
तेरे दर्शित पथ पर चलकर, निज स्वरूप को अपनाऊँ।
तोड़ सकल मिथ्यात्व वासना, माता नित शिर नाऊँ।। 4।।

(197)

हे मात करुणा कर मुझे, अब गोद में ले प्यार दे।
कह सकूँ मैं माँ तुझे, ऐसा मुझे अधिकार दे।। 1।।
रुदन मेरा बंद हो, ऐसा सुभग उपहार दे।
मगन हो गाया करूँ, ऐसी मधुर मल्हार दे।। 2।।
अब मुझे पुचकार ले, माता कहाने के लिए।
मैं कर रहा हूँ वन्दना, निज बोध पाने के लिए।। 3।।

(198)

लोकोत्तर माता सुखकारी, जिनवाणी पायी अविकारी।
भाव सहित पूजें सुख पावें, निर्मल भेद-विज्ञान जगावें।।

स्वयं सिद्ध शुद्ध चिद्रूप नित ध्याऊँ,
जन्म-जरा-मरण रोग सहज ही नशाऊँ।
नित्यबोधिनी अहा सु मात जिनवाणी है,
जा प्रसाद सहज होय मोहतम हानि है।। टेक।।
सहज शीतल सदैव शुद्ध-आत्म भाव हूँ।
दूर अहो! भवाताप परम शान्ति पाव हूँ।। नित्य.।। 1।।
चित्स्वरूप अक्षतं उज्ज्वलं सुखकरं।
जान लियो दूर भये क्षत्, विभाव दुखकरं।। नित्य.।। 2।।
नित्य निष्काम परम ब्रह्म समयसार है।
होय ब्रह्मचर्य सुखरूप अविकार है।। नित्य.।। 3।।
अहो! सहज तृप्त अनाहारी निज भाव है।
ध्यावते नशे क्षुधादि सर्व ही कुभाव हैं।। नित्य.।। 4।।
चित्प्रकाशमय अहा! सदा ही शुद्ध आत्मा।
उपासते कहाय शुद्ध कार्य परमात्मा।। नित्य.।। 5।।
आत्मध्यान अग्नि माँहि सर्व कर्म नाशते।
आत्मीक सर्व गुण शुद्ध प्रकाशते।। नित्य.।। 6।।
मुक्ति से भी मुक्त नित्य मुक्त भगवान है।
तास की आराधना से होय, निर्वाण है।। नित्य.।। 7।।
नित्य शुद्ध सम्पदा अनर्घ लोक माँहि है।
पाय सो ही तुष्ट होय स्वयं-स्वयं माँहि है।। नित्य.।। 8।।

(199)

बाह्याचार विधान कहे, चरणानुयोग सुखकारी।
ताहि समझ के धरो मुमुक्षु, निज विशुद्धि अनुसारी।। 1।।
लोक स्वरूप कर्म बन्धन, परिणतियाँ न्यारी-न्यारी।
भेद-प्रभेद सबहि रचना, करणानुयोग विस्तारी।। 2।।
प्रथमानुयोग कथाओं द्वारा, तत्त्व कहे सुखकारी।
उत्साहित करता शिव-मारग में, सबको हितकारी।। 3।।
सुनें-सुनावें, पढ़ें-पढ़ावें, तज प्रमाद दुःखकारी।
जिनवाणी माँ के प्रसाद से, होवें सम्यक्धारी।। 4।।
अमृत पान करें अंतर में, यही सार सुखकारी।
रत्नत्रयमय पथ पर चलकर, पावें शिव अविकारी।। 5।।
जिनवाणी आनन्दमय, दिव्यध्वनि का सार।
सब जग में नित विस्तरे, नमो त्रियोग सम्हार।। 6।।

(200)

(तर्ज : मंगल अवसर आज सुरगण आये...)

आया रे अवसर महान, आओ जिनवाणी सुनें।
जिनवाणी सुनें, आत्मज्ञानी बनें।। टेक।।
जिनवाणी अमृत भरी, करे सर्व कल्याण।
मोह महातम नाश कर, प्रगटावे निज ज्ञान।। 1।।
नव तत्त्वों से भिन्न निज, आत्म तत्त्व दरशाय।
निर्विकल्प चैतन्यमय उपादेय सुखदाय।। 2।।
निज आतम के ज्ञान बिन, घूमे सकल जहान।
निज आतम के ध्यान से, पावें पद निर्वाण।। 3।।

धन्य-धन्य हमको मिला, परम धर्म उपदेश।
परमानन्द निज में लह्यो, नाशें सर्व क्लेश।। 4।।
धरि निर्ग्रन्थ स्वरूप प्रभु, ध्याऊँ आतमराम।
यही भावना हो रही, रहूँ सदा निष्काम।। 5।।

(201)

पाया जिनागम सार, भक्ति से नमन करें।। टेक।।
आगम औ अध्यात्म पढ़ें-पढ़ावें,
तत्त्व-अभ्यास में चित्त लगावें।
नाशें मिथ्यात्व अंधकार।। भक्ति से.।। 1।।
पाप वासना दूर भगावें,
तत्त्व भावना नित ही भावें।
खोलें सु मुक्ति का द्वार।। भक्ति से.।। 2।।
अनेकान्तमय ज्ञान प्रकाशे,
साम्यभाव चारित्र विकासे।
पावें समय का सार।। भक्ति से.।। 3।।
पक्षातिक्रान्त अनुभूति विलासी,
हो तीव्र मैत्री ज्ञान-क्रिया की।
सहज ही हों भव पार।। भक्ति से.।। 4।।
रत्न अमोलक हाथ है आया,
आनंद अंतर में न समाया।
आनंद अपरम्पार।। भक्ति से.।। 5।।

(202)

आज का दिवस है मंगलकारी, आज का दिवस है आनन्दकारी।
महाभाग्य से हमने पाई, जिनवाणी निज-पर हितकारी।। टेक।।
तत्त्वों का हम मर्म पिछाना, पाया भेदज्ञान अविकारी।
स्वानुभूति की कला प्रकाशी, वीतराग परिणति विस्तारी।। 1।।
दीखे जग अनित्य अरु अशरण, इन्द्रिय भोग महा दुखकारी।
ऐसा हो पुरुषार्थ हमारा, होऊँ सहज महाव्रतधारी।। 2।।
सब संकल्प-विकल्प नशावें, ध्यान दशा होवे सुखकारी।
परम साध्य पावें लोकोत्तम, सफल भावना होय हमारी।। 3।।

(203)

ओ मेरे मन, जिनवाणी सुन।
आनन्द का धाम, स्वयं आतमराम, स्वयं आतमराम।। टेक।।
बाहर में व्यर्थ ही भटके, पुण्योदय में अटके।
ये सब विनाशीक हैं, निज को समझ ले तू अब के।। 1।।
चहुँगति में स्वामी है ठोकर,स्वयं ही नादान होकर।
आज है अवसर आया, सुख पाओ सु स्वाधीन होकर।। 2।।
शक्तियाँ अनंत उछलतीं, मुक्ति किल्लोलें करती।
अहो! आत्म वैभव अनुपम, जहाँ प्रभुता अनन्त विलसती।।3।।
अहो! महिमा है अपरम्पार, तीन भुवन में सार।
पर से निरपेक्ष शाश्वत प्रभो, आज ज्ञायक स्व तत्त्व निहार।।4।।
तृप्ति निज में स्वयं ही तू पाये, त्रैलोक्य नाथ कहाये।
कर्मों का नाश होवे स्वयं ही, मुक्ति प्रकटे, न फिर भव में आये।।5।।

(204)

जिनवाणी सुनि उपजे आनन्द अपार।
आनन्द अपार, ज्ञान-आनन्द अपार।। टेक।।
मिथ्या भ्रान्ति मिटी दुखदायी, दीखे नहीं संसार।
सब कर्मों से भिन्न ज्ञानमय, दीखे निज पद सार।। 1।।
सिद्ध प्रभु सम अपनी प्रभुता, दीखे ध्रुव अविकार।
नहीं अवकाश विकल्पों का कुछ, देखन-जाननहार।। 2।।
उछले ज्ञानमात्र आतम में, शक्तियाँ अपरम्पार।
लखि अनुपम चैतन्य विभूति, चाह न रही लगार।। 3।।
तृप्त हुआ कृतकृत्य हुआ बस, यही भाव सुखकार।
मग्न रहूँ अपने में ही नित, हो वंदन अविकार।। 4।।

(205)

भैया! जगा रही जिनवाणी, अब तो पहिचानो निज रूप।
पहिचानो निज रूप, तुम हो सहज शुद्ध चिद्रूप।। टेक।।
कैसे हों संयोग अपने, नहिं शरीर जहँ अपना।
मोह नींद में सोते-सोते, दीखे झूठा सपना।। 1।।
देखो अन्तर्दृष्टि से आतम, रागादिक से न्यारा।
निर्विकल्प निर्भेद परम ध्रुव, ज्ञायक रूप तुम्हारा।। 2।।
सिद्ध प्रभु ज्यों सिद्धालय में, तिष्ठें जाननहार।
स्वयं सिद्ध शाश्वत परमातम, अतंर माँहि निहार।। 3।।
यों भटको यह शोभा नाहीं, तुम अनन्त गुण धाम।
तृप्त स्वयं में रहो सहज ही, मिले मुक्ति अभिराम।। 4।।

(206)

जय जिनवाणी माँ, जय जिनवाणी माँ,
मैं पाऊँ बोधि-समाधि रे।। टेक।।
पुण्योदय जिनशासन पाया, आनंद हुआ अपार रे।
सारभूत शुद्धातम भासा, सब संसार असार रे।। 1।।
महापुरुषों का आराधन लख, रोम-रोम हुलसाया।
सहज ज्ञान-वैराग्यमयी जीवन हो, यही सुहाया।। 2।।
भेदज्ञान कर तत्त्व भावना से रागादि निवारूँ।
जासो बंध नवीन न होवे, पूरव कर्म विडारूँ।। 3।।
अक्षय प्रभुता निज की पाई, निज में तृप्त रहाऊँ।
यही भाव धरि सहज नमन करि, जाननहार रहाऊँ।।4।।

(207)

निज स्वभाव को जो दर्शावे, मुक्तिमार्ग निर्दोष दिखावे।
मोहादिक के नाशनहारे, वीतरागता-पोषक धारे।। 1।।
श्री जिनशास्त्र परम उपकारी, पढ़ो-पढ़ावो मंगलकारी।
द्वादश अंग महान सु जानो, आतम अनुभव सार पिछानो।।2।।
प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं, चहुँ अनुयोग बने अति भव्य।
भेदज्ञान अनुभव चित लावें, रागादिक फिर दूर भगावें।। 3।।
निज में ही निश्चल रम जावें, शीघ्रहिं सिद्ध दशा प्रगटावें।
श्रुत आराधन सब सुखदाता, हुआ अकर्त्ता सहजहिं ज्ञाता।।4।।
शुद्ध स्वरूप लह्यो अविकारी, अक्षय प्रभुता सहज निहारी।
जग की अब परवाह नहीं है, पर भावों की चाह नहीं है।।5।।

परम तृप्ति निज में ही पाई, किम्-अधिकं नहीं द्वैत दिखाई।
भेद-भ्रान्ति नहीं अब उपजावे, सहजहिं जाननहार जनावे।।6।।

(208)

माँ जिनवाणी ज्ञायक बताय दियो रे।
आनंद भयो रे, आनंद भयो रे॥
सविनय शीश नवाय रह्यो रे।
आनन्द भयो रे, आनंद भयो रे॥ टेक॥
काल अनादि से भ्रमता फिरता,
जन्म- जन्म में बहु दुःख सहता।
अब सब दुःख पलाय गयो रे॥ 1॥
जो प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है,
ज्ञायक शुद्ध अभेद सही है।
स्वयं सिद्ध दर्शाय रह्यो रे॥ 2॥
पर अवलम्बन छोड़ जु देख,
निज का वैभव प्रत्यक्ष देख।
सम्यक् भाव जगाय रह्यो रे॥ 3॥
अब न कामना कोई बाँकी,
निज महिमा सर्वोत्तम आँकी।
निज महिमा माँहि डुबाय रह्यो रे॥ 4॥

(209)

(तर्ज: करलो जिनवर का गुणगान)

करलो जिनवाणी अभ्यास, आई मंगल घड़ी।
करलो आतम का विश्वास, आई मंगल घड़ी॥

छोड़ो-छोड़ो पर की आस, आई मंगल घड़ी ।
अपना प्रभु है अपने पास, आई मंगल घड़ी॥ टेक॥
तत्त्व प्रयोजन भूत हैं, सात सुनो धर ध्यान।
उनका मर्म पिछान कर, करो भेद विज्ञान॥ 1॥
दुःख के कारण हेय हैं, आस्रव बन्ध सु जान।
मुक्ति के कारण अहो, संवर निर्जर मान॥ 2॥
पर पदार्थ अति भिन्न हैं, झूठी ममता त्याग।
आश्रय करने योग्य, निज शुद्धातम में पाग॥ 3॥
आतम की अनुभूति ही, परम धर्म है सार।
प्रगटाओ पुरुषार्थ से, खोलो मुक्ति द्वार॥ 4॥
आत्मलीन निर्ग्रन्थ हो, पाओ शिव अभिराम।
जिनवाणी प्रसाद से, रहो सुखी निष्काम॥ 5॥

(210)

(तर्ज : रोम रोम पुलकित हो जाय...)

जिनवाणी जग में सुखदाय, पढ़ो-सुनो भवि शीश नवाय।
मुक्ति का मारग दरशाय, सहज रूप निज तत्त्व दिखाय॥ टेक॥
निज-पर भेदज्ञान प्रगटाय, उपादेय अरु हेय बताय।
साम्यभाव का यत्न सिखाय, वैभाविक दुष्कर्म नशाय॥ 1॥
सबसे मैत्री भाव जगाय, गुणीजनों में मोद सिखाय।
दुखियों प्रति करुणा दर्शाय, दुर्जन प्रति माध्यस्थ रहाय॥ 2॥
संयोगों की रुचि विनशाय, विषयों की आसक्ति मिटाय।
परिग्रह की मूर्छा छुड़वाय, निर्ग्रन्थ मार्ग रही दर्शाय॥ 3॥
अपने घर का विभव बताय, अपने हित की बात सुनाय।
लोकोत्तर उपकार कराय, भव दुःखों से लेय बचाय॥ 4॥

(211)

बोलो जय-जयकार, जिनवाणी सुखकार।
जय-जयकार जय, जयकार जय, जयकार॥ टेक॥
तू एकांत नशाने वाली, अनेकान्त दर्शाने वाली।
मुक्तिमार्ग बतलाने वाली, नाशक मिथ्याचार॥1॥
तुझ ही से जग में उजियाला, तू पवित्र श्रुतज्ञान निराला।
है शुभ गुण मंडित भविमाला, तू जग का शृंगार॥ 2॥
तीर्थंकर प्रभु की है वाणी, अंजुलि भर-भर पीवे ज्ञानी।
आत्मज्ञान पावे भवि प्राणी, तू ही जग आधार॥ 3॥
सम्यक् दर्शन मित्र हमारा, सम्यक् ज्ञान विचित्र हमारा।
सत्सम्यक् चारित्र हमारा, मुक्ति मारग हितकार।। 4।।
माँ हमको स्वात्माभिमान दे, रत्नत्रय का सहज दान दे।
कर्म विनाशक विमल ज्ञान दे, वरद स्वपाणि पसार ॥5॥
तू ही रक्षक जननी हमारी, तन-मन-धन तुझ पर बलिहारी।
पावें निज स्वभाव अविकारी, नमन है बारम्बार ॥ 6 ॥

(212)

(तर्जः हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम...)

नित्य बोधनी जिनवाणी, तत्त्व बोधनी जिनवाणी।
आनंदमयी जिनवाणी, मुक्ति प्रदायी जिनवाणी।। टेक।।
ज्ञेयों में से ज्ञान न आवे, विषयों से कोई सुख नहिं पावे।
संयोगों से हो नहीं प्रभुता, व्यर्थ मूढ़ हो बाहर भ्रमता।। 1।।
करो निरन्तर ज्ञानाभ्यास, छोड़ो मिथ्या पर की आस।

मोह-अंधेरा दूर भगाओ, भेद-विज्ञान कला प्रकटाओ।। 2।।
सब पर भाव हेय पहिचानो, उपादेय शुद्धातम जानो।
स्वानुभूति कर मंगलकारी, होओ निश्चय शिवमगचारी।। 3।।
रागादिक दुर्भाव नशाओ, हो निर्ग्रन्थ निजातम ध्याओ।
कर्म-कलंक सहज नश जावें, स्वयं सिद्ध प्रभुता प्रगटावे ।।4।।
भक्ति भाव से शीश नवाओ, जिनवाणी सब पढ़ो-पढ़ाओ।
ऐसा अवसर चूक न जाना, करो भव्य आतम कल्याणा।। 5।।

(213)

(तर्ज: जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ...)

जिनवाणी माता बोधि समाधि सु पाऊँ।
जिनवाणी माता निश-दिन शीश नवाऊँ।। टेक।।
तत्त्वज्ञान की निमित्त भूत है, जग में श्री जिनवाणी।
सम्यक् मुक्तिमार्ग दिखाती, भव्यों को कल्याणी।। 1।।
दुख का लक्षण है अभिलाषा, निरभिलाष सुख पावे।
भेदज्ञान का हो अभ्यासी, धर्मी निज पद ध्यावे।। 2।।
इन्द्रिय सुख तो हेय रूप है, सुख अतीन्द्रिय साँचा।
ज्ञायक का जो अनुभव करता, वह ही कर्म नशाता।। 3।।
मोह-क्षोभ से रहित होय मैं, साम्य भाव प्रगटाऊँ।
पर से हो निरपेक्ष निराकुल, परमानंद विलसाऊँ।। 4।।
जयवन्तो जग में जिनशासन, सभी जीव सुख पावें।
निर्भय हो निज पद आराधें, आवागमन मिटावें।। 5।।

(214)

(तर्जः जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ...)

हे माँ जिनवाणी आतम रूप सु ध्याऊँ।
हे माँ जिनवाणी बोधि समाधि पाऊँ ॥ टेक॥
आत्मज्ञान बिन भटकत-भटकत, दुर्लभ अवसर पायो।
तत्त्व प्रीति जागी अन्तर में, जिनशासन मन भायो ॥ 1॥
विषय-भोग दुखमय ही दीखें, सब संसार असारा।
दुर्विकल्प सब मिथ्या भासें, पायो पद अविकारा॥ 2॥
लगे कलंक समान परिग्रह, निर्ग्रन्थ पद सुखकारी।
साक्षात् मुक्ति का मारग, पाऊँ मंगलकारी।। 3।।
जीतूँ सहज उपसर्ग परीषह, निज में ही थिरता हो।
कर्म-कलंक समूल नशावें, ज्ञानमयी समता हो॥ 4॥
कुछ न कामना, सहजपने निष्काम सदैव रहाऊँ।
अन्तर्दृष्टि प्रदाता माता, सविनय शीश नवाऊँ॥ 5॥

(215)

(तर्जः तुझे बेटा कहूँ की वीरा...)

मैं महाभाग्य से पायी, जिनवाणी मंगलकारी।
निज-पर विवेक प्रगटाया, हो परम साम्य अविकारी॥ टेक॥
माध्यस्थ रहें दोषों में, नहीं क्षोभ हृदय में आवे।
मोही कर्मों के प्रेरे, यों जिनवाणी समझावे॥
देखो तो द्रव्यदृष्टि से, सब गुण अनंत के धारी ॥ 1॥
भक्ति हो देव-गुरु प्रति, गुणीजन से हर्ष अपारा।
संवेग-प्रशम-अनुकम्पा, आस्तिक्य भाव अवधारा॥
निज परम ध्येय को पाया, हो ध्यान दशा सुखकारी॥ 2॥

आदर्श परम प्रभु मेरे, गुरुओं की संगति पाऊँ।
सब दोष सहज विनशावें, निर्दोष स्वगुण प्रगटाऊँ॥
मैं शीश नवाऊँ माता, आशीष दो आनंदकारी॥ 3॥
जीवन का प्रति पल बीते, आराधन में ही मेरा।
चैतन्य-भावना भाऊँ, मेटूँ भव-भव का फेरा॥
निर्मुक्त तृप्त निज में ही, होऊँ चैतन्य-विहारी॥ 4॥

(216)

(तर्ज: बड़ी भली है जिनवाणी माँ...)

अहो! अहो! जिनवाणी माता, सहज समागम पाया है।
जिनवाणी की चर्चा सुनकर, आनंद उर न समाया है॥ टेक॥
वीतराग सर्वज्ञ देव, निर्ग्रन्थ गुरु पहिचाने हैं।
अहो प्रयोजनभूत तत्त्व नौ, जिनवाणी से जाने हैं॥
माता तेरे ही प्रसाद से, भेदज्ञान प्रगटाया है॥ 1॥
जिनको हमने अपना समझा, वे अति भिन्न दिखाये हैं।
तुच्छ असार जगत के वैभव, भोग न रंच सुहाये हैं॥
अहो! देह भी लगे पड़ौसी, अशरीरी प्रभु भाया है॥ 2॥
अन्य न कोई दुःख के कारण, व्यर्थ मोहवश क्लेश सहे।
रहे उलझते पर्यायों में, अपने से अनजान रहे॥
धन्य-दिवस धनि-घड़ी आज की, ज्ञायक प्रभु दर्शाया है॥ 3॥
जिसकी महिमा में परमेष्ठी, प्रभु भी अन्तर्लीन रहें।
तृप्त स्वयं में तुष्ट स्वयं में, सहज सदा स्वाधीन रहें॥
शाश्वत अनुपम निज परमेश्वर, प्रत्यक्ष अनुभव आया है॥ 4॥

यही भावना ज्ञानानंदमय, निर्ग्रन्थ पद में होय विहार।
ज्ञान-ध्यान-तप लीन रहूँ नित, लगें नहीं कोई अतिचार॥
रहूँ सहज निष्काम निराकुल, सविनय शीश नवाया है॥ 5॥

(217)

(तर्जः महावीर की जय बोल...)

जिनवाणी सुनो सुखकार, फाटक हिय के खुलें।
जिनवाणी सुनो हितकार, सुख का मारग मिले॥ टेक॥
जिनवर-ध्वनित कही है ज्ञानी, नित्य बोधिनी माँ जिनवाणी।
सुनो वस्तु स्वरूप अविकार, मिथ्या मोह टले॥ 1॥
निज स्वभाव की महिमा आवे, परिणति अंतर में ढल जावे।
होवे आनंद अपरम्पार, अन्तर्कमल खिले ॥ 2॥
वीतरागता मंगलकारी, परमधर्म है आनंदकारी।
भवि हर्ष सहित अवधार, भव से पार चलें॥ 3॥
भक्ति सहित निज शीश नवाओ, गुण गाओ अरु पढ़ो-पढ़ाओ।
ये ही तीन भुवन में सार, कर परिणाम भले ॥4 ॥

(218)

(तर्जः चाह मुझे है दर्शन की...)

जिनवाणी सुखकारी है, सुखकारी दुखहारी है ॥ टेक॥
जीवन का आदर्श बतावे, परिणामों का ज्ञान करावे।
बाह्य निमित्त क्रिया समझावे, वस्तु स्वभाव सहज दरशावे॥
चहुँ अनुयोग विचारी है॥ 1॥
स्याद्वाद शैली है अनुपम, सहज नशावे मोह महातम।
अनेकांतमय तत्त्व प्रकाशे, निज-पर भेद-विज्ञान विकाशे॥
भविजन को हितकारी है॥ 2॥

धर्म अहिंसा मंगलकारी, दशलक्षणमय है अविकारी।
गुणस्थान की हो बढ़वारी, प्रगटे शिवपद आनंदकारी॥
कर्म नशावनहारी है ॥ 3॥
विनय सहित नित ही विस्तारें, पढ़ें-सुनें निज भाव सुधारें।
सम्यक् बोधि समाधि सु पायें, अपना जीवन सफल बनायें॥
नित प्रति धोक हमारी है॥ 4॥

(219)

(तर्जः प्रभु तुम मूरति हम सों...)

जब हि सुनी हम श्री जिनवाणी, आनंद उर न समाया है॥ टेक॥
भूल रहा था जिस स्वरूप को, वह चिद्रूप दिखाया है।
भ्रमवश रहा भटकता भव में, सुख अंतर में पाया है॥ 1॥
तृप्त हुआ निज वैभव लखकर, बाहर कुछ न सुहाया है।
निज में ही रम जाऊँ माता, निर्ग्रन्थ पद ही भाया है॥ 2॥
धर्मी, धर्म, धर्म-फल अद्भुत, आज सहज दर्शाया है।
हुई परम संवेग भावना, मन थिरता में आया है॥ 3॥
पाऊँ दशा परम अविकारी, सम्यक् गुण प्रगटाया है।
हर्ष विभोर हुआ भक्तिवश, सविनय शीश नवाया है॥ 4॥

(220)

(तर्जः जंगल में मुनिराज अहो...)

जिसने जिनवाणी को अपनी, सच्ची मात बनाई।
नहीं बनानी पड़ती उसको, दूजी माता भाई॥ टेक॥
स्वयं सिद्ध अनुपम शुद्धातम, जिनवाणी दरशावे।
पर्यायों के स्वांगों से, न्यारा शुद्ध चिद्रूप दिखावे॥

महिमावंत स्वरूप सुनत ही, भेदज्ञान प्रगटाई॥ 1॥
रागादिक सब न्यारे भासे, एक स्वरूप दिखाता।
अहो! अपरिमित सुख का सागर, अन्तर में लहराता ॥
ढले स्वयं उपयोग स्वयं में, भेद न देय दिखाई॥ 2॥
मोह पलावे द्रव्य दृष्टि हो, भव सन्तति कट जाती।
अपनी प्रभुता अपने में ही, मुक्त रूप दिखलाती॥
उस आनंद को वे ही जानें, जिन अंतर विलसाई॥ 3॥
घर कारागृह वनिता बेड़ी, भोग-रोग सम दीखें।
निज रस फिर न सुहाये, अन्य बाह्य रस फीके॥
रहें उदास अलिप्त, धन्य निर्ग्रन्थ भावना भाई॥ 4॥
होय विरागी सब परिग्रह तज, जिन मुद्रा को धारें।
होय अकिंचन केशलोंच कर, मोह शत्रु को मारें॥
प्रचुर स्व-संवेदन रस प्रगट्यो, चौकड़ी तीन नशाई॥ 5॥
पंच महाव्रत समिति शोभे, पंचेन्द्रिय जय पावें।
षट्-आवश्यक मज्जन, मंजन रहित दिखलावें॥
पाणि पात्र में खड़े-खड़े, एक बार ही अशन कराई॥ 6॥
केश घास सम लुंचे निर्मम, इक करवट भू-पर सोवें।
नाम मात्र निद्रा है मुनि तो, जागृत निजपद जोवें॥
परीषह विजयी उपसर्गों में, अविचल ध्यान लगाई॥ 7॥
अहो! यतीश्वर सावधान रह, निज स्वरूप को साधें।
क्षपक श्रेणी आरोहण करते, कर्म स्वयं ही भागें॥
ध्रुव स्वभाव को ध्याते-ध्याते, ध्रुव प्रभुता प्रगटाई॥ 8॥

अहो! ज्ञान में भव तो नहीं है, भव का भाव नहीं है।
ज्ञान स्वरूप सहज शुद्धातम, एकहि शरण सही है॥
प्रगटी ज्ञानानुभूति अहो! तृप्ति निज में ही पाई॥ 9॥

(221)

(तर्जः मोक्ष के प्रेमी हमने...)

जय जिनवाणी माता, भक्ति में चित्त पागे।
भाव यही है माता, अध्यातम ज्योति जागे॥ टेक॥
दुर्लभ नर जन्म पाया, जिनशासन हाथ आया।
आतम अनुभूति प्रगटे, मोहादिक दूर भागे॥ 1॥
जग का रस घटता जावे, आतम रस बढ़ता जावे।
ममता की बेड़ी टूटे, इन्द्रिय सुख नीरस लागे॥ 2॥
घर छोड़ूँ वन को जाऊँ, निर्ग्रन्थ मार्ग पाऊँ।
आशा विषयों की नाँही, आरम्भ-परिग्रह सब त्यागे॥ 3॥
चेतन स्वरूप भाऊँ, ज्ञायक स्वरूप ध्याऊँ।
भव-भव के बंधन छूटें, अक्षय शिव पद प्रगटावे॥ 4॥
जग में जिनशासन फैले, नाशें दुष्कर्म मैले।
चरणों में शीश नाऊँ, बोधि समाधि आवे॥ 5॥

(222)

(तर्जः जय-पारस, जय पारस देवा...)

जय-जिनवाणी, जय-जिनवाणी, जय-जिनवाणी माता।
महा भाग्य से पाई मैंने, अब जिनवाणी माता॥ टेक॥
दिव्यध्वनि का सार बतावे, मिथ्या भ्रम नश जाता।
तत्त्वों का शुभ ज्ञान करावे, भेदज्ञान प्रगटाता॥ 1॥

शुद्धातम का अनुभव होवे, निजानन्द विलसाता।
हिंसादिक दुर्भाव नशावें, संयम भाव जगाता ॥ 2॥
निकट भव्य निज में थिर होता, मुक्तिपद प्रगटाता।
नहीं बनानी पड़ती उसको, फिर तो दूजी माता॥ 3॥
शीश नवाऊँ श्रद्धा लाऊँ, पाऊँ ध्रुव सुख-साता।
नित अभ्यासूँ मोह विनाशूँ, गाऊँ गौरव गाथा॥ 4॥

(223)

जिनवाणी माता, मेरे शीश विराजो।
जिनवाणी माता, मेरे हृदय विराजो॥ टेक॥
मोह महातम नाशती, जिनवाणी अविकार।
अभ्यासो आनंद से, भविजन मंगलकार॥ 1॥
हो प्रभावना ज्ञानमय, सुखी रहें सब जीव।
सत्स्वरूप पहिचानकर, धर्मामृत नित पीव॥ 2॥
जिनवाणी अभ्यास से, निर्मल भाव सु होंय।
सहज कर्म बंधन कटें, मुक्त भव्यजन होंय॥ 3॥
परम प्रीति से वंदना, करो नित्य सुखदाय।
दिन दूना वात्सल्य हो, सब संक्लेश नशाय॥ 4॥

(224)

(तर्जः ऐसे मुनिवर देखे वन में...)

जिनवाणी सुन हितकारी, भव बन्ध छुड़ावनहारी।
जातें देव-शास्त्र-गुरु साँचे, धर्म परम उपकारी॥ टेक॥

तत्त्वों का सम्यक् निर्णय कर, भेदज्ञान सुखकारी।
कर पुरुषार्थ स्वानुभव पावें, होवें शिवमगचारी॥ 1॥
हेय रूप रागादिक त्यागें, पावें पद अविकारी।
भक्ति भाव से करें वंदना, निश दिन मंगलकारी॥ 2॥

(225)

जिनवाणी जीवन का आधार है।
जिनवाणी जीवन का शृंगार है॥ टेक॥
जिनवाणी शुद्धात्मा हूँ दिखाती।
स्याद्वाद से देह भिन्न बताती॥ 1॥
मोहादि दुख मूल कारण बताती।
रत्नत्रय ही सुख कारण दिखाती॥ 2॥
कहती है संसार असार है।
सहज ही अज्ञानतम को हरे है॥ 3॥
सहज ही पापों को दूर करे है।
ज्ञान भंडार सहज ही भरे है॥ 4॥
सब ही समाधान सम्यक् करे है।
गूँजे गगन में जयकार है॥ 5॥
प्रभुवर का आदर्श हमको दिखावे।
मुक्ति के मार्ग में सबको लगावे॥ 6॥
ज्ञान और वैराग्य क्षण-क्षण बढ़ावे।
कर्मों के बन्धन सहज ही छुड़ावे॥ 7॥
त्रिभुवन में जिनवाणी ही सार है।

जिनवाणी सब ही सुनें और सुनावें ॥8।।
अन्तर में साधर्मी प्रेम बढ़ावें।
प्रगटावें धर्म अहिंसा महान॥ 9।।
सदा सर्व जीवों का हो कल्याण।
भक्ति सहित नित नमस्कार है ॥ 10।।

(226)

(तर्ज-तिहारे ध्यान की मूरत......)

परम उपकारी जिनवाणी,सहज ज्ञायक बताया है।
हुआ निर्भार अन्तर में, परम आनन्द छाया है।। टेक।।
अहो परिपूर्ण ज्ञाता रूप, प्रभु अक्षय विभवमय हूँ।
सहज ही तृप्त निज में ही, न बाहर कुछ सुहाया है।। 1।।
उलझकर दुर्विकल्पों में, बीज दुख के रहा बोता।
ज्ञान-आनन्दमय अमृत, धर्म-माता पिलाया है।। 2।।
नहीं अब लोक की चिन्ता, नहीं कर्मों का भय किंचित्।
ध्येय निष्काम ध्रुव ज्ञायक, अहो दृष्टि में आया है।। 3।।
मिटी भ्रान्ति मिली शान्ति, तत्त्व अनेकान्तमय जाना।
सार वीतरागता पाकर, शीश सविनय नवाया है।। 4।।

(227)

(तर्ज-हूँ स्वंतत्र निश्चल......)

मंगलमय है जिनवाणी, आनंदमय है जिनवाणी।
नित्य बोधिनी जिनवाणी, जग कल्याणी जिनवाणी।। 1।।
साँची माता जिनवाणी, संकट त्राता जिनवाणी।
सब सुख दाता जिनवाणी, मोक्ष प्रदाता जिनवाणी ।। 2।।

मोह भगावे जिनवाणी, ज्ञान जगावे जिनवाणी।
काम नशावे जिनवाणी, वैराग्य बढ़ावे जिनवाणी।। 3।।
निजानंद रस बरसानी, निज निधि निज में ही जानी।
कोई नहीं जिसकी सानी, सहज नमूँ माँ जिनवाणी।। 4।।

(228)

(तर्ज :सिद्धान्त की डगर पर ....)

हे द्वादशांग वाणी, जय हो सदा विजय हो।
निज आत्मरूप दर्शन, सुख ज्ञान का उदय हो।। टेक।।
जिनदेव-शास्त्र-गुरु की, सम्यक् प्रतीति वर्ते।
प्रतिकूलताओं में भी, श्रद्धा न चल विचल हो।। 1।।
तत्त्वों का होवे निर्णय, फिर भेदज्ञान द्वारा।
पर से पृथक निजातम, मम दृष्टि का विषय हो।। 2।।
संयोग कर्म परिणति, रागादि भी न दीखे।
पर्याय शुद्ध भी ना, गुण भेद भी विलय हो।। 3।।
मम ज्ञान साधना में, हो ज्ञान मात्र ज्ञायक।
नित ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञाता, तीनों अभिन्न अमल हों।। 4।।
मैं बाह्य में अटक कर, निज को न भूल जाऊँ।
माँ गृहस्थपन ये छूटे, मुनिधर्म का उदय हो।। 5।।
निज की शरण से ही माँ, कर्मों का नाश होवे।
निष्कर्म निर्विकारी, ध्रुव सिद्ध पद अचल हो।। 6।।

(229)

धन्य धन्य जिनवाणी माता, ज्ञायक रूप दिखाया है।
तीन लोक चूड़ामणि अद्भुत, ज्ञायक रूप दिखाया है।। टेक।।

नवतत्त्वों से न्यारा आतम, शुद्ध बुद्ध शाश्वत परमातम।
नित्य निरंजन चिन्मय अनुपम, ज्ञायक रूप दिखाया है।। 1।।
अभूतार्थ व्यवहार बताया, शुद्धनय को भूतार्थ जताया।
शुद्धनय का अवलम्बन लेकर, ज्ञायक रूप दिखाया है।। 2।।
कर्मादिक का कथन कराया, पर न्यारा चेतन दरशाया।
आश्रय करने योग्य एक ही, ज्ञायक रूप दिखाया है।। 3।।
बाह्य आचरण सबहि बतलाया, पर ज्ञायक को नहीं भुलाया।
अहो लीनता योग्य सहज, एक ज्ञायक रूप दिखाया है।। 4।।
जो भूले उन्हीं दुःख पाया, जिन ध्याया तिन शिवपद पाया।
उनकी जीवन गाथा में भी, ज्ञायक रूप दिखाया है।। 5।।
आज सुनहरा अवसर आया, जिनवाणी उपदेश सुहाया।
सम्यक् श्रद्धा भक्ति सहित मैं, सविनय शीश झुकाया है।। 6।।

(230)

(तर्ज- न समझो अभी मित्र कितना अंधेरा...)

नमों मैं सदा ही श्री जैनवाणी, हमें आत्मप्रभुता दिखाती है वाणी।। टेक।।
परमज्ञान दाता यही धर्म माता, हमें मुक्ति मारग दिखाती है वाणी।। 1।।
विरह ज्ञानियों का हमें है सताता,संदेश उनका सुनाती है वाणी।। 2।।
परम वीतरागी हुए होंगे ज्ञानी,सु परिचय सभी का कराती है वाणी।। 3।।
गुरुवर का उपदेश तत्काल बोधक, सतत बोधिनी है कही जिनवाणी।।4।।
महामोह अंधेर जगभर में छाया,सहज ज्ञान सूरज उगाती है वाणी।। 5।।
विषय चाह दावाग्नि लागी भयंकर, उसे ज्ञान जल से बुझाती है वाणी।।6।।
महिमा स्वयं की स्वयं ही न जानी,हमें आत्म प्रत्यक्ष दिखाती है वाणी।।7।।

समझकर स्वयं में ही रम जावें यदि हम,हमें भी परम प्रभु बनाती है वाणी ।।8।।
सबके ह्रदय में बसे जिनवाणी, परम शान्ति पावें सभी भव्य प्राणी।।9।।

(231)

नित जयवंत प्रभु दर्शाती, जिनवाणी जयवंत रहे।। टेक।।
निज अक्षय वैभव दर्शाती, निज शाश्वत प्रभुता दर्शाती।
आनन्दमय ज्ञायक दर्शाती, जिनवाणी जयवंत रहे।। 1।।
सब संसार असार दिखाती, सारभूत समयसार दिखाती।
साँचा मुक्तिमार्ग दिखाती, जिनवाणी जयवंत रहे।। 2।।
नवतत्त्वों का स्वांग दिखाती, भिन्न सहज चिद्रूप दिखाती।
ज्ञानमात्र शिवरूप दिखाती, जिनवाणी जयवंत रहे।। 3।।
अन्तर द्रव्य दृष्टि प्रकटाती, अनेकांतमय ज्योति जगाती।
परम अहिंसा ध्वज फहराती, जिनवाणी जयवंत रहे।।4।।
सत्य शील सन्तोष जगाती, अविनाशी सुख शांति दिखाती।
भाव नमन हो सहज नमन हो, जिनवाणी जयवंत रहे।।5।।

(232)

माँ जिनवाणी मुझ अन्तर में, होकर मुझ रूप समा जाओ।
शान्त शुद्ध ध्रुव ज्ञायक प्रभु की, महिमा प्रतिक्षण दर्शाओ।। टेक।।
चैतन्य नाथ की बात सुने से, अद्‌भुत शान्ति मिलती है।
मानो निज वैभव प्रकट हुआ, सब आधि व्याधि टलती है।।1।।
ज्ञायक महिमा सुनते सुनते, ज्ञायकमय ही जीवन होवे।
ज्ञायक में ही रम जाऊँ, सुनने का भाव विलय होवे।। 2।।
हे माँ तेरा उपकार यही, प्रभु सम प्रभु रूप दिखाया है।
चैतन्य रूप की बोधक माँ, मैं सविनय शीश नवाया है।। 3।।

(233)

(तर्ज : रे मन भजले आतम राम....)

सुन चेतन चतुर सुजान, अब मन लाओ जिनवाणी।। टेक।।
क्यों मोह नींद में सोवे, अनुभव आनंद रस खोवे।
कर लो तुम सम्यग्ज्ञान, अब मन लाओ जिनवाणी ।।सुन. ।।1।।
देव-शास्त्र-गुरु पहिचानो, तत्त्वों का मर्म सु जानो।
फिर करो भेदविज्ञान, अब मन लाओ जिनवाणी।। सुन. ।।2।।
फिर सर्व विकल्प भगाओ, स्व सन्मुख दृष्टि लाओ।
हो स्वानुभूति सुखखान, अब मन लाओ जिनवाणी ।।सुन. ।।3।।
जिनवाणी जग हितकारी, शिवमार्ग दिखावन हारी।
प्रगटाओ आतमज्ञान,अब मन लाओ जिनवाणी।। सुन. ।।4।।
जिनवाणी पढ़ो-पढ़ाओ, नित सविनय शीश झुकाओ।
हो सब जग का कल्याण, अब मन लाओ जिनवाणी।।सुन. ।।5।।

(234)

(तर्ज: जयवंतो जिनवाणी...)

जिनवाणी साँची माँ, जिनवाणी साँची माँ।
जयवन्तो जिनवाणी, जयवन्तो जिनवाणी।। टेक।।
श्री सर्वज्ञ प्रभु की वाणी, गणधर गुरु उर माँहि समानी।
चुनि चुनि अंग रचे सुखदानी, द्वादशांगमय श्री जिनवाणी।। 1।।
नित्यबोधिनी माँ जिनवाणी, स्व-पर विवेक कराती वाणी।
मिथ्या भ्रान्ति नशाती वाणी, ज्ञायक प्रभु दर्शाती वाणी।। 2।।
असदाचरण नशाती वाणी, सत्य धर्म प्रगटाती वाणी।
भव दुःख हरण पीयूष समानी, भवदधि तारक नौका जानी।। 3।।

जो हित चाहो भवि जन प्राणी, पढ़ो-सुनो-ध्यावो-जिनवाणी।
स्वानुभूति से करो प्रमाणी, शिवपथ की है यही निशानी ।। 4।।

(235)

सुन प्राणी जिनवाणी, सफल होय जिन्दगानी।। टेक।।
काहे अकुलाए,काहे भरमाए,माँ की शरण में क्यों नहीं आये।
जिनवाणी निजभाव बताए, क्षणभर में सब दुःख मिट जाये।।
कर्मों की हो हानी, सुन प्राणी जिनवाणी ।। 1।।
पर से सुख-दुःख कभी न पाये, निज अज्ञान तुझे भटकाये।
भव-भव का फेरा मिट जाये, सम्यग्ज्ञान की ज्योति जगाये।।
स्वातम ही सुखखानी, सुन प्राणी जिनवाणी ।। 2।।
संयोगों का नहीं भरोसा, व्यर्थ करे तू राग अरु रोषा।
निज में ही पाओ सन्तोषा,व्यर्थ कर्म को तूने पोषा।।
दुनियाँ आनी जानी, सुन प्राणी जिनवाणी ।। 3।।
द्रव्यदृष्टि से आज निहारो, चेतन अपनो रूप चितारो।
सब संकल्प-विकल्प विडारो, रत्नत्रय परिणति विस्तारो।।
शिव की यही निशानी, सुन प्राणी जिनवाणी।। 4।।

(236)

(तर्ज : धन्य-धन्य आज घड़ी कैसी....)

जिनवाणी जीवन में, सुख का आधार है।
महिमा अपार है, महिमा अपार है।। टेक ।।
जिस तम को दीप चंद्र, सूर्य भी न हर सकें।
जिनवाणी माता ही, मोह तम को हरे।।
सम्यग्ज्ञान का प्रकाश,होय सुखकार है।।महिमा.।। 1।।

जिनवर की दिव्यध्वनि, गणधर सम्हारि कै ।
द्वादशांग रचना की, भवि हित विचारि कै।।
चार अनुयोगमय, महा मंगलकार है ।। महिमा.।। 2।।
वस्तु के स्वरूप को, माँ ही बताती है।
वीतरागी संतों से, माँ ही मिलाती है।।
सिखलावे ज्ञान-वैराग्य हितकार है।। महिमा.।। 3।।
जिनवाणी माता की हम, करें प्रभावना।
तत्त्वबोध पावें सब, ये ही एक भावना।।
भक्ति से प्रीति से वंदना अविकार है।। महिमा.।। 4।।

(237)

शिव सुखदानी है जिनवाणी।
है जिनवाणी, है जिनवाणी।।टेक।।

स्वयं स्वयं को भूल गयो है, मोह महातम छाय रहो है।
दूर करन सूरज जानी, शिवसुखदानी है जिनवाणी।। 1।।
परभावों से भिन्न स्व आतम, ज्ञानरूप शाश्वत परमातम।
द्रव्यदृष्टि से दर्शानी, शिवसुखदानी है जिनवाणी।। 2।।
स्याद्वाद शैली अति प्यारी, वस्तु स्वरूप दिखावन हारी।
अनेकान्तमय गुणखानी, शिवसुखदानी है जिनवाणी।। 3।।
जिनवाणी अभ्यास करें जो, सम्यक् तत्त्व प्रतीति धरें जो।
पावें निश्चय शिव रजधानी, शिवसुखदानी है जिनवाणी।।4।।
शीश नवावें श्रद्धा लावें, जिनवाणी नित पढ़ें-पढ़ावें।
रागादिक की हो हानि, शिवसुखदानी है जिनवाणी।। 5।।

(238)

अंतरंग प्रीति से सुनना, अहो! भव्यजन जिनवाणी।
सहज परम प्रीति से सुनना, अहो! भव्यजन जिनवाणी।। टेक।।
सुनी अनसुनी कभी न करना, अनेकान्तमय तत्त्व समझना।
सम्यक् भेदविज्ञान सु-करना, ज्ञानमात्र शुद्धात्म समझना।।
स्वानुभूति से करो प्रमाणित, अहो! भव्यजन जिनवाणी।। 1।।
बिना ज्ञान वैराग्य न होवे, बिन वैराग्य ज्ञान नहीं होवे।
ज्ञान-वैराग्य आत्मामय है, आत्मानुभव ही आनंदमय है।।
आत्मार्थी हो सुनना पढ़ना, अहो! भव्यजन जिनवाणी।। 2।।
विषय-कषायों की नाशक है, वीतरागता की पोषक है।
मोह नशावे ज्ञान प्रकाशे, द्रव्य-भाव-नोकर्म विनाशे।।
अभ्यासो उल्लास सहित नित, अहो! भव्यजन जिनवाणी।। 3।।
मत शब्दों को कभी पकड़ना, नहीं पक्ष का पोषण करना।
गुरुओं का अभिप्राय समझना, पक्षातिक्रांत स्वरूप समझना।।
अंतर में रमना सिखलाती, अहो! भव्यजन जिनवाणी।। 4।।
महाभाग्य जिनवाणी पाई, वीतरागता हमें सुहाई।
भव-भव के संताप नशाती, मोक्षमार्ग में हमें लगाती।।
करें वंदना भक्तिभाव से, उर में धारें जिनवाणी।। 5।।

(239)

समयसार अविकारा जी, समयसार सुखकारा जी।। टेक।।
अखिल विश्व में एकहि शोभे समयसार प्रभु प्यारा जी।
नित्य निरंजन ध्रुव परमातम, समयसार प्रभु प्यारा जी।। 1।।

विन्मूरति-चिन्मूरति अनुपम, तीन भुवन में सार जी।
आश्रय योग्य उपादेय एकहि, समयसार प्रभु प्यारा जी।। 2।।
समयसार अनुभव में आवे, आनन्द अपरम्पार जी।
और कछू न सुहावे भावे, समयसार प्रभु प्यारा जी।। 3।।
समयसार के आराधक धनि, शीघ्र लहें भव पारा जी।
जयवन्तो जग में मंगलमय, समयसार प्रभु प्यारा जी।। 4।।
अहो ! अवंचक गुरुओं का यह, सहज परम उपकारा जी।
भगवन् दर्शायो अनुपम, समयसार प्रभु प्यारा जी।। 5।।

(240)

(तर्ज : मन भज ले श्री भगवान ...)

ध्यावो समयसार अविकार, अब उत्तम अवसर आयो।
अब उत्तम अवसर आयो, अब स्वर्णिम अवसर आयो।। टेक।।
जो समयसार नहिं जाने, दुःख पावे निज गुण हाने।
बहु भ्रमत फिरे संसार, अब उत्तम अवसर आयो।। 1।।
जो समयसार पहिचाने, नव तत्त्वों से भिन्न जाने।
लहे सम्यग्दर्शन सार, अब उत्तम अवसर आयो।। 2।।
निर्ग्रन्थ रूप प्रगटावे, अरु समयसार को ध्यावे।
निश्चय पावे भव पार, अब उत्तम अवसर आयो।। 3।।
उत्तम श्रावक कुल पाकर, भवि समयसार अपनाकर।
हाँ करो आत्म उद्धार, अब उत्तम अवसर आयो।। 4।।
कुछ और उपाय नहीं है, रे शाश्वत शरण यही है।
यही द्वादशांग का सार, अब उत्तम अवसर आयो।। 5।।

धन-जन कुछ काम न आवे, क्यों मिथ्या मोह बढ़ावे।
कर सत्य तत्त्व स्वीकार, अब उत्तम अवसर आयो।। 6।।
कर्त्तृत्व विकल्प सु छोड़ो, निज को निज में ही जोड़ो।
हो केवल जाननहार, अब उत्तम अवसर आयो।। 7।।

(241)

(तर्ज : हमको भी बुलवा लो भगवन् ...)

अहो! अहो आराधूँ भगवन्, समयसार अविकार मैं।
स्वयं-स्वयं में तृप्त रहूँ प्रभु, भ्रमूँ नहीं संसार में।। टेक।।
समयसार ही ध्येय रूप है, समयसार ही ध्यान में।
समयसारमय रत्नत्रय से, जाऊँगा भव पार मैं।। 1।।
समयसार को बिन पहिचाने, पाया दुख अपार मैं।
आराधन कर समयसार का, तिष्ठूँ मुक्ति मँझार में।। 2।।
देखा जाना समयसार ही, तीन भुवन में सार मैं।
सहज परम शान्त परमातम, समयसार सुखकार मैं।। 3।।
दीखें सब स्वारथ के जग में, जाना जगत असार मैं।
एक मात्र पाया जीवन में, समयसार आधार मैं।। 4।।
धन्य हुआ कृतार्थ हुआ, नहाऊँ समरस धार में।
पाया स्वाभाविक ज्ञानानन्द, आनन्द अपरम्पार मैं।। 5।।

(242)

(तर्ज : आतम स्वभाव से ...)

जानूँ मैं जाननहार रे,
तृप्त स्वयं में पूर्ण स्वयं में, समयसार अविकार रे।
जानूँ मैं जाननहार रे।। टेक।।

अक्षय प्रभुता अद्भुत वैभव, नित्य-निरंजन नहीं धरता भव।
सहज मुक्त निर्भार रे।। जानूँ मैं.।। 1।।
पर भावों का नहीं अवलम्बन, सहज रूप अपना ही अनुभवन।
आनन्द अपरम्पार रे।। जानूँ मैं.।। 2।।
विनमूरति-चिन्मूरति आतम, स्वयं सिद्ध कारण परमातम।
तीन भुवन में सार रे।। जानूँ मैं.।। 3।।
और न जग में शरण दिखावे, एक सुहावे, एक ही भावे।
एक ही है आधार रे।। जानूँ मैं.।। 4।।
हो एकाकी वन में रहाऊँ, एक रूप शुद्धातम ध्याऊँ।
निश्चय होऊँ भव पार रे।। जानूँ मैं.।। 5।।
नहीं जरूरत नहीं है शक्ति, निज में निज की वर्ते व्यक्ति।
यही समय का सार रे।। जानूँ मैं.।। 6।।

(243)

(तर्ज : भक्ति का प्रसार है ...)

स्वयं-स्वयं में सार है, समयसार अविकार है।
महिमा अपरम्पार है, वर्ते जय जयकार है।। टेक।।
भावान्तरों से पार है, आत्मा सहज मुक्त सुखकार है।
प्रभुता का नहीं पार दिखावे, वर्ते निज आधार है।। 1।।
योग युक्ति के पार है, ज्ञायक जाने जाननहार है।
अक्षय गुण भंडार अलौकिक, साँचा तारणहार है।। 2।।
जिसमें कभी विकार न होवे, नय पक्षों के पार है।
अजर अमर अविकार प्रभु, सब धर्मों का आधार है।। 3।।
आओ समझें और अनुभवें, सहज करें स्वीकार है।
व्यर्थ भटकते बहु दुःख पाये, अब पावें भव पार है।। 4।।

(244)

श्री समयसार भक्ति

जय-जय समयसार, जय-जय समयसार।।टेक।।
कारण समयसार, कार्य समयसार।
अव्यक्त समयसार, व्यक्त समयसार।। 1।।
वाच्य समयसार, वाचक समयसार।
आदेय जग में है अपना समयसार।। 2।।
ध्येय समयसार, ध्यान समयसार।
साध्य समयसार, साधन समयसार।। 3।।
ज्ञेय समयसार, ज्ञान समयसार।
ज्ञाता समयसार, मैं हूँ समयसार।। 4।।
मैं हूँ समयसार, मैं हूँ समयसार।
अनुभव में आवे सु, मैं हूँ समयसार।। 5।।
प्रभुवर का गुरुवर का, ये ही है उपकार।
दर्शाया प्रत्यक्ष, मैं हूँ समयसार।। 6।।
अद्भुत समयसार, अनुपम समयसार।
मंगलमय आनन्दमय, मैं हूँ समयसार।। 7।।

(245)

(तर्ज : भक्ति का प्रसार है ...)

तीन भुवन में सार है, महिमा अपरम्पार है।
धन्य नित्य आनन्दमयी प्रभु, समयसार अविकार है।। टेक।।
अहो! सहज निर्दोष ज्ञानमय, गुण अनन्त की खान है।
सब स्वांगों से न्यारा अनुपम, ध्रुव ज्ञायक भगवान है।। 1।।

स्वानुभूतिमय महास्वाद पा सर्व द्वन्द्व मिट जाता है।
सहज उदासी होय स्वयं में, स्वयं सहज रम जाता है।। 2।।
परम सरस चिद्रूप अहो, मंगलमय तृप्ति प्रदाता है।
चिदानन्द प्रभु का आश्रय ही, परम सिद्ध पद दाता है।। 3।।
चाह मिटी चिन्ता सब टूटी, ज्ञायक में ही मग्न रहूँ।
जो कुछ होना हो सो होवे, मैं प्रभु ज्ञाता मात्र रहूँ।। 4।।

(246)

(तर्ज : ते गुरु मेरे ...)

दीनपनो तज प्रभु भजो, पाओ सुख अपार।
धन्य-धन्य पायो अहो, समयसार अविकार।। टेक।।
देखो अन्तर्दृष्टि से, शाश्वत मंगलरूप।
स्वाभाविक प्रभुतामयी, चिदानन्द चिद्रूप।। 1।।
सदा सहज परिपूर्ण है, स्वयं-स्वयं में देव।
निज से निज में मग्न हो, शिवपद हो स्वयमेव।। 2।।
निज प्रभुता देखे नहीं, पर की आस लगाय।
दुःख सहे चहुँगति विषै, व्यर्थ रहो भरमाय।। 3।।
ज्ञानमात्र निज भाव में, उछले शक्ति अनन्त।
सहज स्वयं की शरण से, होवे भव का अन्त।। 4।।
पूर्ण सु ज्ञानानन्दमय, अनुभव माँहि लखाय।
निर्वांछक कृतकृत्य हो, पूर्ण दशा विलसाय।। 5।।
ज्ञेयों से निरपेक्ष हो, जानो ज्ञायक भाव।
सहज रूप ज्ञायक रहो, नाशें सर्व विभाव।। 6।।
निज में ही संतुष्ट हो, निज में हो रतिवन्त।
सहज स्वयं भगवन्त हो, कहें अनुभवी संत।। 7।।

(247)

(तर्ज : मैं परम दिगम्बर ...)

ध्रुव ध्येय रूप निज समयसार ही ध्याऊँ रे।
हो निर्वांछक परिपूर्ण स्वयं को भाऊँ रे।।
मैं स्वयं सदा ही स्वयं में तृप्त रहाऊँ रे।। टेक।।
सत् शिव सुन्दर शुद्धातम, चिन्मात्र सहज परमातम।
अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमयी, नित ध्याऊँ रे।। 1।।
परिग्रह किंचित् न सुहावे, अब यही भाव उमड़ावे।
निर्मोही हो निर्ग्रन्थ आत्मा ध्याऊँ रे।। 2।।
कर्त्तापन झूठा लगता है, हाँ होने योग्य ही होता है।
बस निर्विकल्प हो, जाननहार रहाऊँ रे।। 3।।
पर लक्षी वृत्ति मिटाऊँ, थिर रूप हूँ थिर हो जाऊँ।
अविनाशी आनन्दरूप, सिद्ध पद पाऊँ रे।। 4।।

(248)

(तर्ज : आतम स्वभाव ...)

निरुपचार शुद्ध रत्नत्रय ही,
साँचा मुक्तिमार्ग रे।
नियमसार सुखकार है।। टेक।।
नियमसार बिन जीवन निष्फल,
शांति नहीं मिलती इक भी पल।
भ्रमता नित संसार रे।। 1।।
द्रव्य आनंदमय, गुण भी आनंदमय,
पर्याय भी हुई, सहजानंद मय।
आनंद अपरम्पार रे।। 2।।

स्वच्छन्द जीवन तो, पशु से भी बदतर,
निज को दुःखमय, पर को भी दुःखकर।
ज्ञानी कहें धिक्कार रे।। 3।।
महाभाग्य श्रावक कुल पाया,
सम्यक् तत्त्वोपदेश सुहाया।
धरूँ नियम अविकार रे।। 4।।
कारण नियम शुद्ध चेतना परिणाम,
कार्य नियम दृग-ज्ञान अनुष्ठान।
आत्मामय अवधार रे।। 5।।
निज को न जाना, बहु यत्न कीने,
व्यवहार रत्नत्रय भी जीव ने।
धरो अनन्ता बार रे।। 6।।
अब पहिचानो शुद्ध चिद्रूप को,
पक्षातिक्रान्त सु आत्म स्वरूप को।
होऊँ भव से पार रे।। 7।।

3. श्री जिनगुरु भक्ति

(249)

(तर्जः आतम रूप अनुपम अद्भुत)

आतम रूप अनुभवें मुनिवर ॥ टेक॥

देह रहे पर देह से न्यारे, कर्म रागादि विकल्पों से न्यारे।
सब स्वांगों से भिन्न लखावें, निर्ग्रन्थ निरपेक्ष सहज रहावें॥ 1॥
स्वयं सहज परिणमन दिखावे, दुःखमय कर्त्ता भाव न आवे।
इष्ट-अनिष्ट न भासे कोई, क्रोधादिक उत्पन्न न होवे॥ 2॥

बहे सु समता रस की धारा, मुनिवर सहज रहें अविकारा।
तृप्त रहें निज से निज माहीं, दोष शील में लागे नाहीं॥ 3॥
आत्म ध्यान में शोभे निश्चल, वृद्धिगंत हो सहज आत्मबल।
निज बल से ही कर्म नशावें, मुक्तिमार्ग जग को दर्शावें॥ 4॥
धन्य सहज मुनिवर का जीवन, सहज तत्त्व है सहज आराधन।
सहजपने हम भी प्रगटावें, भक्ति भाव से शीश नवावें॥ 5॥

(250)

आवे गुरुवर याद तुम्हारी, आवे मुनिवर याद तुम्हारी ॥ टेक॥
जब से गुरु स्वरूप है जाना, होय भावना निशदिन म्हारी।
धन्य भाग्य प्रत्यक्ष लखावें, वीतराग मुनि मुद्रा प्यारी॥ 1॥
साँचे तारण-तरण तुम्हीं हो, दुनियाँ तो स्वारथ की सारी।
जग-प्रपंच से चित घबरावे, साधु दशा लागे सुखकारी॥ 2॥
रहित अडम्बर सहज दिगम्बर, तृप्ति स्वयं में मंगलकारी।
नहीं आरम्भ नहीं कुछ चिन्ता, धनि स्वाधीन वृत्ति अविकारी॥ 3॥

(251)

निर्ग्रन्थ गुरुवर कब दर्श पाऊँ,निर्ग्रन्थ पद मैं कब प्रगटाऊँ ॥ टेक॥
भली भाँति मैंने पहिचाना, तत्त्व यही है धर्म यही है।
सहज स्वाभाविक रूप मनोहर, मुक्ति का साँचा मार्ग यही है॥
आरम्भ-परिग्रह तज वन को जाऊँ॥ 1॥
जग में अलौकिक अन्यत्र दुर्लभ,संयम का आदर्श मुनिवर में देखा।
विषयों से निरपेक्ष सहज अतीन्द्रिय,समता का आनंद गुरुवर में देखा॥
ऐसा ही वैराग्य कब मैं भी पाऊँ॥ 2॥

निज में ही संतुष्ट निज में ही निमग्न, भोगों की आशा भी जिनको नहीं है।
ज्ञान-ध्यान-तप लीन रहें नित,कुछ भी तो परवाह जिनको नहीं है॥
शांत मूर्ति लख उत्सव मनाऊँ॥ 3॥
घोर परीषह उपसर्गों में मेरू सी, निष्कम्पता अरु अचलता।
अन्तर में वर्ते बाहर में दर्शे,सहज स्वाभाविक आनंदमय समता॥
ऐसा ही जीवन कब मैं भी पाऊँ॥ 4॥
सर्व जगत के निरपेक्ष बान्धव,सहज सभी से निरपेक्ष रहते॥
भव्यों को मुक्तिमार्ग दिखाते, आप अकर्त्ता निर्मुक्त रहते॥
प्रचुर स्वसंवेदन कब मैं भी पाऊँ॥ 5॥
मुनिराज से गुण मुनिराज में ही,धन्य दशा है धन्य स्वरूप।
नित अविकारी आतम विहारी, दर्शाते चैतन्य स्वरूप॥
उनके ही संग में असंग रहाऊँ॥ 6॥
संतों की महिमा है वचन अगोचर, इन्द्रादिक भी मुनि गुण गायें।
द्वारापेक्षण चक्री करते, भक्ति भाव से शीश नवायें॥
गुरु चरणों बलि-बलि जाऊँ।। 7।।

(252)

(तर्ज : वीरनाथ का मंगल शासन.....)

धन्य मुनीश्वर निज आतम में मग्न रहें, हाँ मग्न रहें॥ टेक॥
अन्तर्दृष्टि का बल वर्ते, घोर परीषह सहज सहें।
उपसर्गों में क्षोभ न किंचित्, शांत रहें मुनि सौम्य रहें॥ 1॥
अहो! अतीन्द्रिय ज्ञानानंदमय, परम निस्पृही संत रहें।
स्वयं स्वयं में पूर्ण सदा ही, अनुभवते कृतकृत्य रहें॥ 2॥

निज रस से ही तृप्त यतीश्वर, निर्वांछक निर्ग्रन्थ रहें।
अप्रभावित पर परिणति से मुनि, धीर-वीर गम्भीर रहें॥ 3॥
कोलाहल से दूर मुनीश्वर, केवल जाननहार रहें।
आत्मध्यान धरि कर्म नशावें, तिन चरणन हम शीश धरें॥ 4॥
मुनिवर दर्शित निज शुद्धातम, सतत सहज अनुभवन करें।
तोरि सकल जग द्वन्द-फन्द निज परमातम पद प्राप्त करें॥ 5॥

(253)

अहो झूलते प्रशम भाव में, देखो ज्ञानी संत रे।
अहो स्वानुभव रस आस्वादें, आतम ध्यानी संत रे ॥ टेक॥
चित्स्वरूप को ध्याते-ध्याते, करें भव का अन्त रे।
निस्पृह हो जग में दर्शावें, साँचा मुक्ति पंथ रे॥ 1॥
पशु भी बोध लहें चरणों में, चक्री शीश धरन्त रे।
घोर परीषह उपसर्गों में, समता धरें अनन्त रे॥ 2॥
राग न जिनके द्वेष न जिनके समरस माँहि रमन्त रे।
एकाकी निर्द्वन्द रहें नित, निज में केलि करन्त रे॥ 3॥

(254)

(तर्ज: जैन मंदिर हमको लागे प्यारा....)

निर्ग्रन्थ मार्ग मोहि लागे प्यारा ॥ टेक॥
रहित अडम्बर सहज दिगम्बर, यथाजात शोभे अविकारा।
जहाँ नहीं प्रतिबन्ध है कोई, निर्बन्ध आराधन सुखकारा॥ 1॥
चाह मिटी चिंता सब छूटी, आरम्भ-परिग्रह सकल विडारा।
प्रचुर स्वसंवेदन जहँ वर्ते, होवे आनंद अपरम्पारा ॥ 2॥

एकाकी निर्भय निस्पृह हो, साधूँ निज पद तिहुँ जग सारा।
वीतरागता बढ़ती जावे, सर्व विभाव कार्य निरवारा॥ 3॥
परम जितेन्द्रिय हो वीरज सति, ब्रह्मचर्य निर्दोष सुधारा।
धनि दिन ऐसो मारग पाऊँ, होऊँ भव सागर से पारा॥ 4॥

(255)

(तर्जः फल पायो आतम ज्ञानी...)

कब सहज दिगम्बर साधु दशा मैं पाऊँ।
कब शुद्धोपयोगी सहज दशा मैं पाऊँ॥ टेक॥
मैं जग प्रपंच से दूर रहूँ, निज आराधन में शूर रहूँ।
निर्द्वन्द्व निराकुल समता रूप रहाऊँ॥ 1॥
कुछ ख्याति लाभ की चाह नहीं, उपसर्गों की परवाह नहीं।
निष्काम रहूँ नित शुद्ध भाव निज ध्याऊँ॥ 2॥
भोगों में किंचित् सार नहीं, यहाँ लाभ का कुछ व्यापार नहीं।
हो परम जितेन्द्रिय निज प्रभुता प्रगटाऊँ ॥ 3॥
यह दुर्लभ अवसर पाया है, मेरे मन यही समाया है।
जागे सम्यक् पुरुषार्थ परम पद पाऊँ॥ 4॥

(256)

मुनिवर का जीवन आनंदमय, है आनंदमय, परमानंदमय ॥ टेक॥
तृप्त स्वयं रागादि न उपजें, जीवन सहज है समतामय।
परम शांत निर्ग्रन्थ रूप है, सर्व लोक को मंगलमय॥ 1॥
परिणति सहज अनन्यगत वर्ते, सर्व दुःखों का होता क्षय।
परम जितेन्द्रिय मग्न स्वयं में, होवें सहज परीषहजय ॥ 2॥

उपसर्गों में भी वे मुनिवर, निरुपसर्ग रह लहें विजय।
सहजपने दर्शावें हमको, चित्स्वरूप अपना सुखमय ॥ 3 ॥
भाव नमन हो उन संतों को ध्यावें चित्स्वरूप अक्षय।
चित्स्वरूप ध्याते-ध्याते, मम सर्व कर्म हो जाय विलय ॥ 4 ॥

(257)

(तर्ज: मैया त्रिशला तेरो लाल जगत को...)

होगी धन्य घड़ी जब प्रभुवर, विचरूँ सहज दिगम्बर वेश।
सहज दिगम्बर वेश, होवे नहीं परिग्रह लेश॥ टेक॥
देह मात्र भी दिखे परिग्रह, ध्याऊँ नाथ विदेह।
चित्प्रकाशमय महल है शाश्वत, निवसूँ अपने गेह ॥ 1 ॥
विषय अभेद शुद्ध आतम इक, अन्य विषय नहीं होय।
निरारम्भ निज आनंद वेदूँ, जगे कषाय न कोय॥ 2 ॥
बाह्य दिगम्बर परम निरम्बर, सहज चिदम्बर रूप।
तृप्त स्वयं में सहज सदा, निर्ग्रन्थ स्वरूप अनूप॥ 3 ॥
उपसर्गों में क्षोभ न वर्ते, वर्ते आतम ध्यान।
कर्म जलें पर जलूँ नहीं मैं, प्रगटे पद निर्वाण ॥ 4 ॥

(258)

(तर्ज : रोम-रोम पुलकित हो जाय...)

ज्ञानी मुनिवर सुखी महान, सतत करें आतम का ध्यान।
दर्शन कर मन जगा विचार, आतम ही सुख का आधार ॥ टेक॥
देखो तन पर वस्त्र नहीं, हाथों में कोई शस्त्र नहीं।
बार-बार आहार नहीं, मनमाना व्यवहार नहीं ॥ 1 ॥
जीवन भर स्नान नहीं, फिर भी हो मन म्लान नहीं।
जिनके घर परिवार नहीं, कर्तृत्व का कुछ भार नहीं॥ 2 ॥

विषयों की कुछ चाह नहीं, चलते उल्टी राह नहीं।
नहीं मोबाईल नहीं टी.वी., राग-द्वेष करते न कभी ॥ 3 ॥
नहीं पराई जिनको आस, देते नहीं झूठा विश्वास।
क्षण-क्षण ज्ञानाभ्यास करें, आतम रस में मग्न रहें॥ 4 ॥
भाव सहित हम करें नमन, परमातम का करें भजन।
पर से सुख तो कभी न होय, हो विमूढ़ जीवन मत खोय॥ 5 ॥

(259)

भक्ति से मुनिवर नमन करूँ,
भक्ति से गुरुवर नमन करूँ॥ टेक॥
गुरुवर हृदय में वास करो, परिणति में ज्ञान प्रकाश भरो।
गुरु मोह-अंधेरा दूर करो, संक्लेश सर्व ही सहज हरो॥
चरणों में श्रद्धा सुमन धरूँ॥ 1 ॥
जग का व्यवहार न भाता है, भयभीत चित्त हो जाता है।
अपना नहीं कोई दिखाता है, मिथ्या ही माना नाता है॥
मंगलमय चरणों शीश धरूँ॥ 2 ॥
शाश्वत शुद्धातम दर्शाया, रत्नत्रयमय मार्ग सु बतलाया।
वह ही स्वामी मुझको भाया, करते स्मरण हर्ष छाया॥
रत्नत्रय का वरण करूँ।। 3।।

(260)

(तर्जः गहरी गहरी नदियाँ नाव बीच धारा है...)

देखो मुनिराज निज ध्यान में मगन,
ध्यान में मगन, निज ज्ञान में मगन।
ज्ञान में मगन, आनंद में मगन,
आनंद में मगन, निज आतम में मगन ॥ टेक ॥

विषयों की चाह की दीनता नहीं,
परिग्रह और आरम्भ हैं ही नहीं।
निर्विकार परम शांत तन है नगन ॥ 1 ॥

तत्त्वों का श्रद्धान सम्यक् है जिनको,
आतम का अनुभव, सद्ज्ञान जिनको।
चारित्र सम्यक् निष्पाप मन॥ 2 ॥

अद्भुत है समता, अद्भुत है प्रभुता,
अद्भुत है लघुता, अद्भुत है गुरुता।
द्रव्यदृष्टि सम वृत्ति जिनकी पावन॥ 3 ॥

पीछी कमण्डल समीप रखे हैं,
अत्यन्त निर्मम हो निज में रमे हैं।
इन्द्रादि भी जिनका करते भजन॥ 4 ॥

पुरुषार्थ ऐसा हमारे भी होवे,
पूज्य जिन मुद्रा हमारी भी होवे।
कर्मों को नाश मेटें आवागमन ॥ 5 ॥

क्षण-क्षण याद आवे ललचावे मन,
आत्मा हमारा भी नित ज्ञान घन।
भाव वन्दना ऐसा हो अनुभवन॥ 6 ॥

भगवान आत्मा, शाश्वत परमात्मा,
कारण परमात्मा, सहज शुद्ध आत्मा।
निरपेक्ष तृप्ति हो, निज में मगन ॥ 7 ॥

(261)

(तर्जः ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाला है...)

गम्भीर गुरुता वाले हैं, गुरुवर हमारे॥ टेक॥
निजानन्द में परिणति पागी, आरम्भ-परिग्रह के हैं त्यागी।
मोह को जीतन हारे हैं गुरुवर हमारे॥ 1॥
सर्व जगत से धरें उदासी, तोरी जिनने आशा पाशी।
पंच महाव्रत धारे हैं गुरुवर हमारे ॥ 2॥
यथाजात मुद्रा के धारी, तीन कषाय चौकड़ी मारी।
सहजहिं समता वाले हैं गुरुवर हमारे ॥3॥
ज्ञान-ध्यान में लीन मुनीश्वर, उपसर्गों में अडिग यतीश्वर।
तिरें सु तारन हारे हैं गुरुवर हमारे॥ 4॥
आत्म स्वरूप सहज दरशावें, साँचा मुक्तिमार्ग बतावें।
परमानन्द विस्तारे हैं गुरुवर हमारे॥ 5॥

(262)

(तर्ज : कहबे को मन सूरमा करवे को काचा...)

इस दुखमा पंचमकाल में, गुरु अमृत बरसायो।
अहो! अहो! परमागम में, गुरु अमृत बरसायो॥ टेक॥
कंठ माँहि देवों के झरता, वह तो अमृत नांहि।
यदि वह साँचा अमृत होता, फिर क्यों वे मर जायें॥ 1॥
जन्म-मरण जिसमें नहीं, नहीं आधि नहीं व्याधि।
नहिं उपाधि चिद्रूप में, वर्ते सहज समाधि॥ 2॥
निज स्वरूप के ज्ञान बिन, पाये दुःख अपार।
ज्ञान मात्र ध्रुव रूप गुरु, दर्शायो अविकार॥ 3॥

(263)

(तर्ज : गुरुवर मेरे उर में आओ...)

गुरुवर साँचे शरण हमारे, मिथ्या मोह निवारन हारे॥ टेक॥
रत्नत्रयमय मुक्तिमार्ग में, बढ़े हैं और बढ़ावन हारे।
शाश्वत मंगलमय शुद्धातम, देखें और दिखावन हारे॥ 1॥
पर नहीं सुख-दुख का कारण हो, समझें अरु समझावन हारे।
सुख धर्म से धर्म ज्ञान से, होता है बतलावनहारे॥ 2॥
दुर्विकल्प सब ही मिथ्या हैं, ये ही क्लेश बढ़ावनहारे।
छोड़ो पर की आस आत्मन्, गुरु निर्ग्रन्थ ही तारण हारे॥ 3॥
विषय-कषायारम्भ रहित हैं, परम शांत दर्शन अघ टारे।
ज्ञान-ध्यान में लीन मुनीश्वर, तिनके चरणों नमन सदा रे ॥ 4॥
भव-समुद्र से तारण हारे, भव का भ्रमण मिटावन हारे।
ज्ञान-कला विस्तारन हारे, ये ही बंध छुड़ावन हारे॥ 5॥

(264)

(तर्ज : चित्स्वरूप महावीर तुम्हीं ने दरशाया...)

जयवन्तो गुरुदेव हृदय में जयवन्तो ॥ टेक॥
अहो! स्वानुभवमय है जीवन, परम सरस हैं जिनके प्रवचन।
शुद्धातम सबको दरशावें, मोह-अंधेरा दूर भगावें॥ 1॥
सकल परिग्रह के हैं त्यागी, विषयों से अत्यंत विरागी।
ज्ञान-ध्यान-तप में अनुरागी, निज परिणति निज में ही पागी॥ 2॥
आतम श्रद्धा सम्यग्दर्शन, आतम ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान।
आत्म लीनता सम्यक् चारित्र, पायें अद्भुत रत्न महान॥ 3॥
ये ही मोक्षमार्ग है साँचा, चलें-चलावें श्री गुरुदेव।
भव दुःखों से हमें बचाते, परम शरण हैं श्री गुरुदेव॥ 4॥

भाव सहित हम करें वंदना, गुरु आज्ञा में सदा रहें।
द्रव्यदृष्टि अन्तर में वर्ते, मुक्तिमार्ग में बढ़े चलें॥ 5॥

(265)

मेरे ह्रदय विराजो गुरुवर॥ टेक॥

सम्यग्ज्ञानी परम विरागी, रत्नत्रय निधि के अनुरागी।
परिणति ध्रुव स्वभाव में पागी, पर भावों के सच्चे त्यागी॥ 1॥
ज्ञाता रूप सहज परमातम, अंतर में देखें शुद्धातम।
परीषहों में नहीं अकुलावें, उपसर्गों से नहीं चिगावें॥ 2॥
तोड़ी जिनने ममता फाँसी, इष्ट-अनिष्ट कल्पना नाशी।
कभी न कोई जिनको भय है, जिनका जीवन समतामय है॥ 3॥
उदासीन हैं सारे जग से, तृप्त सदा ही स्वयं स्वयं से।
इन्द्रादिक भी करें वंदना, तो भी हो अभिमान रंच ना ॥ 4॥
मैं भी भेदज्ञान नित भाऊँ, सम्यक् समता सहज ही पाऊँ।
आप रहो आदर्श हमारे, मिथ्या भाव नशावन हारे॥ 5॥
भक्ति सहित चरणों शिर नाऊँ, कब निर्ग्रन्थ दशा प्रगटाऊँ।
निर्वाछंक हो मैं भी चाहूँ, सम्यक् बोधि समाधि पाऊँ॥ 6॥

(266)

निर्ग्रन्थ पद की भावना भाऊँ।

जिनवर वाणी ह्रदय समानी, शुद्धातम पद ध्याऊँ-ध्याऊँ॥ टेक॥
मिला नहीं मिल भी नहीं सकता, सुख पर में नहीं चित्त भ्रमाऊँ।
सुख सागर उछले अन्तर में, हो निमग्न निज में रम जाऊँ॥ 1॥
परिग्रह सकल क्लेशमय तजकर, सहज रूप निर्ग्रन्थ हो जाऊँ।
गुरु चरणों में मुनि दीक्षा ले, निर्मल आतम ध्यान लगाऊँ॥ 2॥

साम्य भाव धर घोर परीषह, उपसर्गों में नहीं घबराऊँ।
आधि-व्याधि-उपाधि रहित मैं, परम समाधि सहज ही पाऊँ॥ 3॥
निजानंद रस वेदूँ अनुपम, निश्चय आवागमन मिटाऊँ।
सहज सिद्ध पद की प्रभुता हो, मैं तो जाननहार रहाऊँ॥ 4॥

(267)

(तर्जः निरखी-निरखी मनहर मूरत...)

धन्य-धन्य वे ज्ञानी मुनिवर, वर्तें जो समभाव में।
धन्य-धन्य वे ज्ञानी मुनिवर, रमें सहज निज भाव में॥ टेक॥
पर भावों की मूर्च्छा त्यागी, रहें उदास शरीर से।
परम जितेन्द्रिय रहित अडम्बर, दूर रहें भव भीर से॥
नहीं प्रयोजन जिन्हें जगत से, रहें संतुष्ट स्वभाव में॥ 1॥
भिन्न रहें जो कर्मोदय से, ज्ञानोदय जिनके घट माँहि।
निर्मोही मुनि बंध नशावें, पूर्व कर्म भी झड़ते जाँहि॥
सहज तिरें भव सिन्धु जो, बैठे रत्नत्रय की नाव में॥ 2॥
रोवें और रुलावें मोही, सन्त सान्त्वना देते हैं।
स्व-पर भेद-विज्ञान करावें, सर्व क्लेश हर लेते हैं॥
आओ बैठो अहो! भव्य जन, गुरु चरणों की छाँव में॥ 3॥
संत वचन ही परम औषधि, अमृत सम तृप्ति कारक।
भव-भय नाशक मुक्ति प्रकाशक, मंगलमय मंगल कारक॥
निज में निश्चल हो रम जावें, तब कर्म स्वयं ही झड़ जावें॥ 4॥

(268)

प्रभुवर ! संयम कब प्रगटे।
निजानंद में तृप्त रहूँ विभु! सर्व विकल्प मिटें ॥ टेक॥
नया बंध होवे नहीं स्वामिन् ! चिद्विलास विलसे।
साम्य भाव वर्ते सुखकारी, पूरव कर्म कटें॥ 1॥
पर द्रव्यों में भले-बुरे का, मिथ्या भाव नशे।
क्रोध न होवे मान न आवे, माया लोभ मिटे॥ 2॥
होऊँ जितेन्द्रिय परम अहिंसा परिणति में विलसे।
हो स्वरूप विश्रान्ति आनंदमय, इच्छा नहीं उपजे॥ 3॥
निरतिचार निर्ग्रन्थ दशा हो, ज्ञानानंद वर्ते।
सहज अकिंचन जीवन होवे, ब्रह्मचर्य विलसे॥ 4॥
बाह्य प्रतिष्ठा बाहरी वैभव, विभु! निस्सार लगे।
ज्ञान-ज्ञान में होय प्रतिष्ठित, भाव यही सुफले॥ 5॥

(269)

निर्ग्रन्थ जीवन, सहज शांत जीवन।
निर्द्वन्द्व निर्विकल्प, निरपेक्ष जीवन॥ टेक॥
ज्ञान-वैराग्य शल्य न कोई।
साम्य भाव वर्ते विषमता न होई॥
आप तिरें अरु पर को तारें।
प्रचुर स्व-संवेदनमय जीवन॥ 1॥
स्वाश्रित हैं निर्भार गुप्त स्वयं में।
निष्पाप निश्चिंत निर्मुक्त स्वयं में॥
एकाकी पावन अहो! मन भावन।

निर्भय निशंकित है आदर्श जीवन॥ 2॥
नहीं कामना है, नहीं याचना है।
नहीं दीनता कुछ परम शूरता है॥
अहो क्रूरता बिन सहज सिंह वृत्ति।
परम स्वाभिमानी है धन्य मुनि जीवन॥ 3॥
नहीं कुछ परिग्रह, नहीं कुछ अडम्बर।
यथाजात मुद्रा सहज हैं दिगम्बर॥
साध्य एक मुक्ति, ध्येय ध्रुव आत्मा।
आराधनामय सहज रूप जीवन॥ 4॥
हो ऐसा जीवन यही भावना है।
इन्द्रिय सुखों की न कुछ चाहना है॥
अहो! आत्मामय शुद्ध रत्नत्रय।
सहज पूर्ण हो पाऊँ मुक्ति का जीवन॥ 5॥

(270)

प्रभु यही भावना होती है, निर्ग्रन्थ दशा मंगलमय हो॥ टेक॥
श्रद्धान सहज सम्यक् वर्ते, श्री देव-शास्त्र अरु गुरुओं का।
श्रद्धान सहज सम्यक् वर्ते, जीव अजीवादि नव-तत्त्वों का॥ 1॥
श्रद्धान सहज सम्यक् वर्ते, आतम का और अनातम का।
श्रद्धान सहज सम्यक् वर्ते, निज चित्स्वरूप शुद्धातम का॥ 2॥
अतिचार नहीं कोई लागे, भय भी हमसे भय कर भागे।
अन्तर में तत्त्व भावना हो, वृद्धिंगत आत्म साधना हो॥ 3॥
अन्तर का बल बढ़ता जावे, रागादिक मल धुलता जावे।
अंतर में सहज विराग धार, परिग्रह प्रपंच में लात मार ॥4॥

गुरुवर के चरणों में जावें, मुनि दीक्षा की अनुमति पावें।
कर केश लौंच अपने कर से, अति प्रीति धार आतम घर से ॥ 5 ॥
शुद्धोपयोगमय धर्म धरें, उपसर्गों से भी नहीं डरें।
परीषह जीते धर सहज भाव, निज पद पाने का परम चाव ॥ 6 ॥

(271)

(तर्जः दर्शन नहिं ज्ञान न चारित्र...)

कब मुनिवर दर्शन पाऊँ, कब गुरुवर दर्शन पाऊँ।
गुरु के पावन चरणों में, मैं जीवन सफल बनाऊँ॥ टेक॥
अब विरह सहा नहीं जाता, दुनियाँ से चित घबराया।
स्वाधीन निराकुल शिवपद, पाने को मन ललचाया॥
जग झूठा स्वारथ साधे, मैं परम स्वार्थ को भाऊँ॥ 1॥
आरम्भ-परिग्रह विरहित, निर्ग्रन्थ स्वरूप मुनीश्वर।
विषयाशा-शून्य निरामय, निर्द्वन्द्व स्वरूप ॠषीश्वर॥
बस गया हृदय में मेरे, कब परिणति में प्रगटाऊँ॥ 2॥
पुरुषार्थ सु बढ़ता जावे, वैराग्य सु बढ़ता जावे।
हो उदय प्रतिज्ञा का जब, तब संयम नाम कहावे॥
हो सर्व संग निर्वृत्ति, निज परम ब्रह्म को भाऊँ॥ 3॥
ख्याति से रहे उदासी, हो आत्मख्याति अविकारी।
निर्भय निःकलंक अनिन्दित, परिणति हो मंगलकारी॥
हो सफल ब्रह्मचर्य मेरा, निज में ही तृप्त रहाऊँ॥ 4॥

(272)

धन्य-धन्य निर्ग्रन्थ दशा है, परम धन्य निर्ग्रन्थ स्वरूप।
जगत पूज्य निर्ग्रन्थ दशा है, सहज पूज्य निर्ग्रन्थ स्वरूप॥ टेक॥

अहो! सहज निर्ग्रन्थ स्वरूप, धन्य-धन्य निर्ग्रन्थ स्वरूप।
पर भावों से शून्य सदा ही, स्वयं स्वयं में पूर्ण स्वरूप॥ 1॥
अहो! सहज निर्द्वन्द्व स्वरूप, धन्य निर्द्वन्द्व स्वरूप।
सहजानंदमय परमानंदमय, ज्ञानानंदमय ब्रह्म स्वरूप॥ 2॥
अहो! सहज निर्मुक्त स्वरूप, धन्य-धन्य निर्मुक्त स्वरूप।
बंध मुक्ति के स्वांगों से है भिन्न, सदा निर्मुक्त स्वरूप॥ 3॥
अहो! सहज परमात्म स्वरूप, धन्य-धन्य परमात्म स्वरूप।
स्वाभाविक प्रभुता से मंडित, है शाश्वत भगवान स्वरूप॥ 4॥
अहो! सहज प्रभु ज्ञायक रूप, धन्य-धन्य प्रभु ज्ञायक रूप।
ज्ञेयों से निरपेक्ष ज्ञानमय, परम शुद्ध निर्भेद स्वरूप॥ 5॥
महाभाग्य से पाया मैंने, उपादेय शुद्धात्म स्वरूप।
तृप्त स्वयं में तुष्ट स्वयं में, रहूँ सहज कृतकृत्य स्वरूप॥ 6॥
अहो! सहज चैतन्य स्वरूप, धन्य-धन्य चैतन्य स्वरूप।
चिदानंदमय निजानंदमय, रहूँ सदा चैतन्य स्वरूप॥ 7॥

(273)

देखो हैं मुनिराज कैसे मगन।
देखो हैं ऋषिराज कैसे मगन॥ टेक॥

निर्मम हैं देह से, निर्मम हैं कर्मों से,
राग भले हो, निस्पृह हैं राग से।
धनि निर्ग्रन्थ स्वरूप अहो,
धनि निर्मोही स्वरूप अहो।।
जंगल में भी निर्भय है जिनका मन॥ 1॥

ज्ञान में सोहें, ध्यान में सोहें,
निश्चल रूप भव्य मन मोहे।
विषयों की आशा से शून्य अहो,
पापों की छाया से दूर अहो।।
तप ही जिन्हों का है अद्‌भुत सु-धन ॥2॥

विश्राम पावें सु बैर भुलावें,
पशु भी निकट आकर सम्यक्त्व पावें।
धन्य प्रभावक स्वरूप अहो,
धनि शिव साधक स्वरूप अहो।।
अंग विकारादि दीखें न तन॥ 3॥

संतुष्ट निज में, रहें तृप्त निज में,
जग के प्रपंचों में, किंचित् न उलझें।
रहते विकल्पों से दूर अहो,
अद्‌भुत है शांत स्वरूप अहो।।
स्वयमेव झुक जाए चरणों में मन॥4॥

(274)

गुरु वन्दनाष्टक

पूर्ण तत्त्व ही ध्याते गुरुवर, पूर्ण तत्त्व दर्शाते हैं।
पूर्णानंदमय ज्ञानानंदमय, शुद्ध तत्त्व दर्शाते हैं॥ टेक॥
जिसको जाने पहिचाने बिन, जीव महा दुःख पाता है।
इच्छाओं की पूर्ति न होती, तृष्णा व्यर्थ बढ़ाता है॥
महानंदमय वह शुद्धातम, गुरुवर सहज दिखाते हैं॥ 1॥
मंगलमय हो लोकोत्तम हो, अशरण जग में शरण वही।
दुख सागर से सहज उबारो, साँचे तारण-तरण वही॥
दिव्य-देशना द्वारा मुनिवर, मुक्तिमार्ग दर्शाते हैं॥ 2॥

ज्ञान-ध्यानमय पावन मुद्रा, अपने पास बुलाती है।
विषय-कषाय क्लेशमय लगते, सहज वृत्ति हट जाती है॥
सिद्ध समान परम प्रभुतामय, निज स्वरूप दर्शाते हैं॥ 3॥
अब तो विरह सहा नहीं जाता, क्षण-क्षण याद सु आती है।
अहो! अहो! निर्ग्रन्थ दशा को, परिणति अति अकुलाती है॥
निद्रा में भी वे योगीश्वर, स्वप्न माँहि आ जाते हैं॥ 4॥
सम्यग्ज्ञान दूज का चन्दा, केवलज्ञान पूर्णिमा है।
प्रगट होय परिणति में तब ही, सच्ची गुरु पूर्णिमा है॥
चरणों में नत भव्यों को भी, आप समान बनाते हो॥ 5॥
साक्षात् दर्शन दे गुरुवर! अब तो मुझे निहाल करो।
वरद हस्त मस्तक पर वर्ते, जीवन सहज खुशाल करो॥
अप्रमत्त शासन द्वारा, निर्दोष मार्ग दर्शाते हैं॥ 6॥
जिनशासन की परम्परा, निर्दोष मुनीश्वर बनी रहे।
आराधन में अरु प्रभावना में, ही परिणति सनी रहे॥
भय प्रलोभनों के प्रसंग में, गुरुवर सहज बचाते हैं॥ 7॥
पूर्ण दशा ही परम साध्य है, पूर्ण तत्त्व ही ध्येय है।
इसकी प्राप्ति में बाधक, जो गुरुवर सब ही हेय हैं॥
भाव नमन हो द्रव्य नमन हो, पल-पल आप जगाते हैं॥ 8॥

(275)

गुरु वन्दना सप्तक

पूर्णिमा के चंद्र सम जो ज्ञान सिंधु उछालते ।
जिनका दर्श कर भव्यजन आनंद अपना पावते॥
भक्ति करें उल्लास से गुणगान कर हर्षावते।
अशरण जगत में शरण जिनकी प्राप्त कर सिर नावते॥ 1॥

ज्ञान नेत्र सु खोलकर गुरु नेत्रवान हमें किया।
मुक्तिमार्ग दिखा हमें अज्ञानतम गुरु हर लिया॥
जिनवाणी सुनकर हे गुरु! अब कर्ण सार्थक हो गये।
हित-अहित को पहिचान कर साक्षात् संज्ञी हम भये॥ 2॥
कर विनय वैयावृत्ति गुरुवर, सफल हैं हम हाथ भी।
सानिध्य पाकर आपका निश्चय हुए सनाथ भी॥
गमन आप समीप करके चरण पावन हो गये।
दर्श कर गुरुदेव के अब रोम पुलकित हो गये॥ 3॥
सर्वस्व तो तुमने दिया बहुमान हम कैसे करें।
आराधना करते हुए प्रभावना सहजहिं करें॥
रत्नत्रय निर्दोष हो हम साध्य साधें ज्ञान से।
निर्दोष आत्मा प्राप्त कर हम मुक्ति पावें ध्यान से॥ 4॥
गौरव गुरो ! बढ़ता रहे, संतुष्ट निज में ही रहें।
अंतरंग में आत्मख्याति जगत ख्याति नहीं चहें॥
तृप्त निज में ही रहूँ इन्द्रादि पद की चाह ना।
ज्ञाता रहूँ निस्पृह रहूँ नहीं कोई मन में कामना॥ 5॥
हो आप तो बस आप ही उपकार गुरो अचिन्त्य।
प्रभुता अरे! महिमा अरे! शक्ति अरे! अनचिन्त्य॥
उपकार हम सार्थक करें शिवमार्ग में बढ़ते रहें।
आदर्श आप रहें सदा अनुगमन कर हर्षित रहें॥ 6॥
परिग्रह विषय आरंभ से सूने रहें सूने रहें।
उत्तम क्षमादिक धर्म नित दूने बढ़ें दूने बढ़ें॥
हो पूर्णता का लक्ष्य गुरु अटकें नहीं भव पाश में।
परिणाम शुद्ध रहें सदा तिष्ठें सहज ही पास में॥ 7॥

(276)

(तर्ज- मेरे प्रभु वीतराग...)

मेरे गुरु निर्ग्रन्थ वीतराग होई।
साँचे गुरु निर्ग्रन्थ वीतराग होई।। टेक।।
हिंसादिक पापों के सर्वदेश त्यागी,
देह मात्र परिग्रह से भी विरागी।
निरपेक्ष निर्द्वन्द निरामय होई।। साँचे.।। 1।।
निरावरण निर्विकार यथाजात काया,
पीछी कमण्डल ही साथ सुहाया।
धीर वीर जितेन्द्रिय निष्काम होई।। साँचे.।। 2।।
मुनिवर हैं निःस्वार्थ, सबके उपकारी,
रत्नत्रय रूप भाव सदा अविकारी।
ज्ञान-ध्यान-तप लीन परम सुखी होई।। साँचे.।।3।।
ऐसे वनवासी साधु कर्मबन्ध टारैं,
आप तिरैं औरन को सहजपने तारैं।
हो नमोस्तु मेरी दशा ऐसी कब होई।। साँचे.।।4।।

(277)

(तर्ज : सन्त साधु बनके ...)

हो दिगम्बर ध्याऊँ निजपद,धन्य घड़ी कब आयेगी।
परिणति शुद्धोपयोगी,सहज कब प्रगटायेगी।। टेक।।
ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय अभिन्न हो,ज्ञानमय ही अनुभवन।
तृप्त निज में ही रहूँगा, वह घड़ी कब आयेगी।। 1।।
झूठे विषयों की न आशा, निरालम्ब निर्ग्रन्थ हो।
राग से अति भिन्न ज्ञायक,भावना वर्तायेगी।। 2।।

अशुभ जहाँ उपजे नहीं, शुभ में उदासी हो सहज।
परवाह नहीं उपसर्गों की,श्रेणी दशा कब आयेगी।। 3।।
कर्म विनशें सुगुण विलसें, आत्म-प्रभुता प्रगट हो।
ध्रुव अचल अनुपम गति हो, धन्य घड़ी कब आयेगी।। 4।।

(278)

(तर्ज : जिन दीक्षा लेके जंगल में जाएँ सुकमाल...)

जिनदीक्षा लेके जंगल में जाऊँ जिनराज।
एकाकी वन में शुद्धातम ध्याऊँ जिनराज।। टेक।।
जब तैं निज अनुभव रस प्रगट्यो, और न कछु सुहाय।
भोग-भुजंग समान भयानक, जगत असार दिखाय।। 1।।
सहज अकम्प परम आनन्दमय, जाननहार जनाय।
घोर परीषह उपसर्गों से, नाहीं चित्त चलाय।। 2।।
राग कौन से द्वेष कौन से, करूँ व्यर्थ अकुलाय।
जड़-चेतन की निज-निज परिणति, भिन्न-भिन्न विलसाय।।3।।
जग के झूठे सपने सारे, व्यर्थ रह्यो भरमाय।
सम्यक् भेदज्ञान उर प्रगट्यो, नहीं संबंध दिखाय।। 4।।
लूँ निर्दोष महाव्रत समिति, पंचेन्द्रिय जय पाय।
षट् आवश्यक शेष गुणों में,नहीं दोष उपजाय।। 5।।
उदासीनता सहज रूप हो, रहे न लेश कषाय।
अपनी प्रभुता अपने में ही, सहजपने विलसाय।। 6।।
नहिं कुछ चिन्ता नहिं कुछ वाँछा, अविचल ध्यान लगाय।
कर्म कलंक जलाय के स्वामिन्, अविनाशी पद पाय।।7।।

(279)

धनि मुनिराज हमारे हैं, धनि मुनिराज हमारे हैं ।। टेक ।।
सकल प्रपंच रहित निज में रत, परमानन्द विस्तारे हैं।
निर्मोही रागादि रहित हैं, केवल जाननहारे हैं।।1।।
घोर परीषह उपसर्गों को, सहज ही जीतनहारे हैं।
आत्मध्यान की अग्निमाँहि जो, सकल कर्म-मल जारे हैं।।2।।
साधैं सारभूत शुद्धातम, रत्नत्रय निधि धारे हैं।
तृप्त स्वयं में तुष्ट स्वयं में, काम सुभट संहारे हैं ।। 3 ।।
सहज होंय गुण मूल अट्ठाईस, नग्न रूप अविकारे हैं।
वनवासी व्यवहार कहत हैं, निज में निवसन हारे हैं ।।4 ।।

(280)

निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु, अलौकिक जग में।
निर्भय स्वाधीन विचरते, मुक्ति-मग में ।। टेक।।
अन्तर्दृष्टि प्रगटाई, निज रूप लख्यो सुखदाई।
बाहर से हुये उदास, सहज अंतरंग में।। 1।।
जग में कुछ सार न पाया, अन्तर पुरुषार्थ बढ़ाया।
तज सकल परिग्रह भोग, बसे जा वन में।।2।।
निर्दोष अट्ठाईस गुण हैं, देखो निज माँहि मगन हैं।
कुछ ख्याति लाभ पूजादि,चाह नहिं मन में।। 3।।
जिन तीन चौकड़ी टूटी, ममता की बेड़ी छूटी।
अद्भुत समता वर्ते, जिनकी परिणति में ।। 4।।
निस्पृह आतम आराधैं, रत्नत्रय पूर्णता साधैं।
निष्कम्प रहें परीषह और उपसर्गन में।। 5।।

शुद्धात्म स्वरूप दिखावैं, शिवमार्ग सहज ही बतावें।
गुण चिंतन कर, निज शीश धरें चरणन में।। 6।।

(281)

धन्य-धन्य मुनिवर का जीवन, होवे प्रचुर आत्म-संवेदन।
धन्य-धन्य जग में शुद्धातम, धन्य अहो आतम आराधन।। टेक।।
होय विरागी सब परिग्रह तज, शुद्धोपयोग धर्म का धारन।
तीन कषाय चौकड़ी विनशी, सकल चरित्र सहज प्रगटावन।। 1।।
अप्रमत्त होवें क्षण-क्षण में, परिणति निज स्वभाव में पावन।
क्षण में होय प्रमत्तदशा फिर, मूल अट्ठाईस गुण का पालन।। 2।।
पंच महाव्रत पंच समिति धर,पंचेन्द्रिय जय जिनके पावन।
षट् आवश्यक शेष सात गुण, बाहर दीखे जिनका लक्षण।। 3।।
विषय कषायारम्भ रहित हैं, ज्ञान-ध्यान-तप लीन साधुजन।
करुणा बुद्धि होय भव्यों प्रति, करते मुक्तिमार्ग सम्बोधन।। 4।।
रचना शुभ शास्त्रों की करते, निरभिमान निस्पृह जिनका मन।
आत्मध्यान में सावधान हैं, अद्भुत समतामय है जीवन।। 5।।
घोर परीषह उपसर्गों में, चलित न होवे जिनका आसन।
अल्पकाल में वे पावेंगे, अक्षय अचल सिद्ध पद पावन।। 6।।
ऐसी दशा होय कब 'आत्मन्', चरणों में हो शत-शत वंदन।
मैं भी निज में ही रम जाऊँ, गुरुवर समतामय हो जीवन।। 7।।

(282)

धन्य मुनिराज की समता, धन्य मुनिराज का जीवन।
धन्य मुनिराज की थिरता, प्रचुर वर्ते स्वसंवेदन।। टेक।।

शुद्ध चिद्रूप अशरीरी, लखें निज को सदा निज में।
सहज समभाव की धारा, बहे मुनिवर के अंतर में।।
है पावन अन्तरंग जिनका, है बहिरंग भी सहज पावन।।1।।
कर्मफल के अवेदक वे, परम आनंद रस वेदें।
कर्म की निर्जरा करते, बढ़े जायें सु शिवमग में।।
मुक्ति पथ भव्य प्रकटावें, अहो करके सहज दर्शन।।2।।
परम ज्ञायक के आश्रय से, तृप्त निर्भय सहज वर्तें।
अवांछक निस्पृही गुरुवर, नवाऊँ शीश चरणन में।।
अन्तरंग हो सहज निर्मल, गुणों का होय जब चिन्तन।।3।।
जगत के स्वांग सब देखे, नहीं कुछ चाह है मन में।
सुहावे एक शुद्धातम, आराधूँ होंस है मन में।।
होय निर्ग्रन्थ आनन्दमय, आप सा मुक्तिमय जीवन।।4।।
भावना सहज ही होवे, दर्श प्रत्यक्ष कब पाऊँ।
नशे रागादि की वृत्ति, अहो निज में ही रम जाऊँ।।
मिटे आवागमन होवे, अचल ध्रुव सिद्ध गति पावन।।5।।

(283)

जंगल में मुनिराज अहो, मंगल स्वरूप निज ध्यावें।
बैठ समीप संत चरणों में, पशु भी बैर भुलावें।। टेक।।
अरे सिंहनी गौ वत्सों को, स्तनपान कराती।
हो निशंक गौ सिंह सुतों पर, अपनी प्रीति दिखाती।।
न्योला अहि मयूर सब ही मिल, तहाँ आनन्द मनावें।।1।।
नहीं किसी से भय जिनको, जिनसे भी भय न किसी को।
निर्भय ज्ञान गुफा में रह, शिव-पथ दर्शायें सभी को।।
जो विभाव के फल में भी,ज्ञायक स्वभाव निज ध्यावें।।2।।

वेदन जिन्हें असंग ज्ञान का, नहीं संग में अटकें।
कोलाहल से दूर स्वानुभव, परम सुधारस गटकें।।
भवि दर्शन उपदेश श्रवण कर, जिनसे शिवपद पावें।।3।।
ज्ञेयों से निरपेक्ष ज्ञानमय, अनुभव जिनका पावन।
शुद्धातम दर्शाती वाणी, प्रशममूर्ति मनभावन।।
अहो! जितेन्द्रिय गुरु अतीन्द्रिय, ज्ञायक गुरु दरशावें।।4।।
निज ज्ञायक ही निश्चय गुरुवर, अहो दृष्टि में आया।
स्वयं सिद्ध ज्ञानानन्द सागर, अन्तर में लहराया।।
नित्य निरंजन रूप सुहाया, जाननहार जनावे।।5।।

(284)

वनवासी सन्तों को नित ही, अगणित बार नमन हो।
द्रव्य नमन हो भाव नमन हो, अरु परमार्थ नमन हो।। टेक।।
गृहस्थ अवस्था से मुख मोड़ा,सब आरम्भ परिग्रह छोड़ा।
ज्ञान-ध्यान-तप लीन मुनीश्वर, अगणित बार नमन हो।।1।।
जग विषयों से रहे उदासी, तोड़ी जिनने आशा पाशी।
ज्ञानानंद विलासी गुरुवर, अगणित बार नमन हो।। 2।।
अहंकार ममकार न लावें, अंतरंग में निज पद ध्यावें।
सहज परम निर्ग्रन्थ दिगम्बर, अगणित बार नमन हो।। 3।।
ख्यातिलाभ की नहीं अभिलाषा, सारभूत शुद्धातम भासा।
आतम लीन विरक्त देह से, अगणित बार नमन हो।। 4।।
उपसर्गों में नहीं अकुलावें,परीषहों से नहीं चिगावें।
सहज शान्ति समता के धारक, अगणित बार नमन हो।।5।।

जिनशासन का मर्म बतावें, शाश्वत सुख का मार्ग दिखावें।
अहो! अहो! जिनवर से मुनिवर, अगणित बार नमन हो।।6।।
ऐसा ही पुरुषार्थ जगावें, धनि निर्ग्रन्थ दशा प्रगटावें।
समय-समय निर्ग्रन्थ रूप का, सहजपने सुमिरन हो।। 7।।

(285)

(तर्ज : मैं परम दिगम्बर...)

कब सहज दिगम्बर साधु दशा मैं पाऊँ रे।
हो निर्विकल्प निर्द्वन्द्व आत्मपद ध्याऊँ रे।।
नित निजानन्द रस में ही तृप्त रहाऊँ रे।। टेक।।
भोगों से चित घबराया, पर परिकर कुछ न सुहाया।
हो परम जितेन्द्रिय चित्स्वरूप ही भाऊँ रे।। 1।।
क्षणभंगुर जग की माया, है भिन्न अचेतन काया।
हो निर्मम निर्मल, आतम ध्यान लगाऊँ रे।। 2।।
लोकोत्तम मंगलकारी, निर्ग्रन्थ दशा अविकारी।
निष्काम रहूँ, कृतकृत्य दशा प्रगटाऊँ रे।। 3।।
ज्ञायक ही आश्रय लायक, प्रभुता हो जिससे क्षायिक।
निज ज्ञायक में ही, निशदिन लीन रहाऊँ रे।।4।।
अब अन्य न कुछ अभिलाषा, अक्षय सुख निज में भासा।
निज आश्रय से ही, कर्म-कलंक नशाऊँ रे।। 5।।

(286)

निर्ग्रन्थ महामुनिराज, आज मैंने सपने में देखे।
सपने में देखे, प्रत्यक्ष से देखे।। टेक।।
शैल शिला पर अचल विराजे
ध्यान लीन महाराज, आज मैंने.... ।। 1।।

मुद्रा शान्त दिगम्बर सोहे
तारण तरण जिहाज, आज मैंने...... ।। 2 ।।
धर्म मूर्ति निर्द्वन्द निराकुल
विज्ञानघन ऋषिराज, आज मैंने...... ।। 3 ।।
ज्योतिपुंज निष्काम निरामय
आतम गुण भंडार, आज मैंने...... ।। 4 ।।
वन के पशु पक्षी भी बैठे
इकटक रहे निहार, आज मैंने...... ।। 5 ।।
तब ही जन समूह तहँ आया
चरणों शीश नवाय, आज मैंने...... ।। 6 ।।
सहज भाव से सब ही बैठे
शान्ति सुधा बरसाय, आज मैंने...... ।। 7 ।।
टूटा ध्यान मुनीश्वर का तब
धर्मामृत छलकाय, आज मैंने...... ।। 8 ।।
ज्ञायक भाव की महिमा सुनकर
महातृप्ति उपजाय, आज मैंने...... ।। 9 ।।
कितने ही तो मुनिव्रत धारें
आनंद उर न समाय, आज मैंने...... ।। 10 ।।
कोई अणुव्रत, कोई मूलगुण
कोई नियम धराय, आज मैंने...... ।। 11 ।।
धन्य हुआ कृतकृत्य हुआ मैं
निर्ग्रन्थ भावना भाय, आज मैंने..... ।। 12 ।।

साँचा होवे मेरा सपना
निर्ग्रन्थ पद प्रगटाय, आज मैंने...... ।। 13 ।।

(287)

निर्ग्रन्थ दशा कब पाऊँ।
निर्ग्रन्थ रूप प्रगटाऊँ ।। टेक।।

देहादिक से भिन्न ज्ञानमय,
ज्ञायक रूप लखाऊँ।। 1 ।।

निजानंद निज में ही वेदूँ,
निज में तृप्त रहाऊँ।। 2 ।।

हो चर्या निर्दोष निराकुल,
सहज विरक्त रहाऊँ।। 3 ।।

पर में इष्ट-अनिष्ट कल्पना,
नहीं कदाचित् लाऊँ।। 4 ।।

एकाकी निर्जन वन माँही,
निज शुद्धातम ध्याऊँ।। 5 ।।

घोर परीषह उपसर्गों में,
समता भाव धराऊँ।। 6 ।।

नहीं कुछ चिन्ता, नहीं हो वांछा,
नित निर्द्वन्द रहाऊँ।। 7 ।।

रहूँ सहज ही दृष्टा-ज्ञाता,
कर्म-कलंक नशाऊँ।। 8 ।।

अपनी अक्षय प्रभुता प्रगटे,

आवागमन मिटाऊँ।। 9।।

सादि अनंत समाधि सुख में,

रहूँ परमपद पाऊँ।। 10।।

(288)

(तर्जः जिनवाणी हमारी हीरा जड़ी...)

आवे अहो! निर्ग्रन्थ दशा, धन्य घड़ी कब होगी प्रभो।। टेक।।

काल अनादि से मोह के वश हो।

विषय सुखों में व्यर्थ फँसा।।

लेश नहीं पाया सुख क्षण भी।

चतुर्गति दुःख माँहि धँसा।। 1।।

महाभाग्य पाया जिनशासन।

आस्वादा निज-आनन्द रसा।।

रस नीरस तब लागे सबही।

निज स्वाभाविक रूप लखा।। 2।।

अपनी अद्भुत प्रभुता देखी।

निज वैभव निज में विकसा।।

मुक्ति का साम्राज्य सु पाने।

उर में उछला आत्म रसा।। 3।।

हुई उदासी बाह्य जगत से।

भोगों में वीभत्स रसा।।

अपनी अनुपम शोभा लखकर।

प्रगटा उर श्रृंगार रसा।। 4।।

धीर वीर गम्भीर हुआ मन।
गुरुओं का सानिध्य रुचा।।
हौंस जगी जिनमुद्रा धरने।
रोम-रोम मेरा उलसा।। 5।।
मंगलमय मुनिधर्म सुपाऊँ।
होवे निश्चल ध्यान दशा।।
क्षपक श्रेणि चढ़ि कर्म निवारूँ।
प्रगट होय अरहंत दशा।। 6।।
योग रहित हो शिवपद पाऊँ।
दु:खमय आवागमन नशा।।
काल अनंत रहूँ ज्यों का त्यों।
ध्रुव स्वाभाविक पद विलसा।। 7।।

(289)

गुरुवर तुम ही शरण हमारे[2]।। टेक।।
परम विशुद्ध-ज्ञान-आनंदमय,
आतम रूप दिखावनहारे।
दुर्निवार जो मोह महातम,
सहजहिं ताहि नशावनहारे।। 1।।
पर-निरपेक्ष अरु स्व-पर प्रकाशक,
ज्ञान भानु विकसावन हारे।
विषय चाह दव दाह भंयकर,
मेघ समान बुझावन हारे।। 2।।

परम जितेन्द्रिय अहो अतीन्द्रिय,
ज्ञानानंद विस्तारन हारे।
मुद्रा सौम्य परम अविकारी,
शान्ति सुधा बरसावन हारे।। 3।।
अहो! अलौकिक चरित तुम्हारे,
ज्ञान-विराग बढ़ावन हारे।
परम दिगम्बर रहित आडम्बर,
दुखमय बन्ध विडारन हारे।। 4।।
लौकिक जन तो मोह बढ़ावें,
तुम ही भव से तारण हारे।
हे योगीश्वर! परम वैद्य तुम,
जन्म-जरा-मृत रोग निवारे।। 5।।
मुनिवर संगति मिले तुम्हारी,
गावें निशदिन सुगुण तुम्हारे।
भाव वंदना कर सुख पावें,
चरणों में धर शीश तुम्हारे।। 6।।
लगन लगी निर्ग्रन्थ रूप की,
परम विशुद्धि होय हमारे।
यही भावना रहे यतीश्वर,
होंय सफल आशीष तुम्हारे।। 7।।

(290)

होवे साधु दशा सुखकारी[2] ।। टेक।।

विषय कषायारम्भ रहित हो,
नग्नरूप अविकारी।
ज्ञान-ध्यान अरु तपमय होवे,
परिणति मंगलकारी।। 1।।

इष्ट-अनिष्ट दोऊ पर दीखें,
सम हो गरिमा-गारी।
रत्न-काँच रिपु-मित्र मांहि हो,
समता आनन्दकारी।। 2।।

होय जितेन्द्रिय निज बल से ही,
हों नहिं भाव विकारी।
रहूँ सहज संतुष्ट स्वयं में,
होऊँ शिवमगचारी।। 3।।

निजानंद आस्वादी होऊँ,
हो चैतन्य विहारी।
क्षपक श्रेणि पर आरोहण कर,
पाऊँ पद अविकारी।। 4।।

हूँ निरपेक्ष सहज स्वाश्रय से,
फले भावना म्हारी।
भक्ति सहित मैं करूँ वन्दना,
गुरु चरणन बलिहारी।। 5।।

(291)

(तर्ज : जिनवाणी अमृत रसाल.....)

निर्ग्रन्थ पद हितकार, आत्मन् धारण करो।
धारण करो, हाँ धारण करो।। टेक।।
संयोग तो भिन्न रहते सही हैं,
परद्रव्य अपने होते नहीं हैं।
विषयों से दुःख का निवारण नहीं हो,
परिग्रह तो सुख का कारण नहीं हो।।
मोह तजो दुःखकार, भव का निवारण करो।। 1।।
अन्त में मिलती है बाहर निराशा,
पहले ही छोड़ो विषयों की आशा।
तत्त्व विचार करो सुखदाई,
वैराग्य भावना भाओ रे भाई।।
सब संसार असार, जीरण तृण सम तजो।। 2।।
होओ रे निर्मम निर्द्वन्द निराकुल,
सिद्ध समान समझकर निज कुल।
गुरुवर की साक्षी में हर्षित होकर,
वस्त्राभूषण सब ही तजकर।।
केशों को कर से उखाड़, पीछी कमंडल धरो।। 3।।
व्रतादि की ले सुखमय प्रतिज्ञा,
सहज ढले अन्तर में प्रज्ञा।
निर्विकल्प हो आत्म भावना,
शेष नहीं कुछ रहे कामना।।
भावलिंग अविकार, अंतर प्रगट करो।। 4।।

प्रचुर स्वसंवेदन सुखकारी,
अक्षय सुख की हो तैयारी।
सहजपने हो समताधारी,
वृत्ति अलौकिक हो अविकारी।।
ज्ञान-ध्यान-तप लीन, हो भव सफल करो।। 5।।
ऐसा निश्चल ध्यान लगाओ,
सब वैभाविक कर्म नशाओ।
निज प्रभुता निज में प्रगटाओ,
दुःखमय आवागमन मिटाओ।।
ध्रुव अनुपम अरु सार, शिवपद प्रगट करो।। 6।।

(292)

आनन्द का दिन आयेगा आयेगा,
निर्ग्रन्थ जीवन आयेगा आयेगा।। टेक।।
स्वरूप निर्ग्रन्थ, श्रद्धा है निर्ग्रन्थ।
भाऊँ सहज ही मैं भावना निर्ग्रन्थ।।
निर्ग्रन्थ परिणाम आयेगा[2]।। 1।।
अणुमात्र भी मुझको, मेरा न दिखता।
ज्ञायक स्वयं में ही परिपूर्ण दिखता।।
प्रचुर स्वसंवेदन आयेगा[2]।। 2।।
संयोग के काल में ही हैं न्यारे।
संयोग होते कभी न हमारे।।
निरपेक्ष जीवन आयेगा[2]।। 3।।

वैभव स्वयं का, स्वयं में ही शाश्वत।
प्रभुता स्वयं की स्वयं में ही शाश्वत।।
स्वाधीन जीवन आयेगा[2] ।। 4।।
बाहर से कुछ भी आता नहीं है।
अपना कभी कुछ न जाता कहीं है।।
निश्चिंत जीवन आयेगा[2] ।। 5।।
स्वभाव से ही ज्ञानमयी हूँ।
स्वभाव से ही आनंदमयी हूँ।।
निर्द्वन्द जीवन आयेगा[2] ।। 6।।
तृप्त स्वयं में, तुष्ट स्वयं में।
लीन स्वयं में, मग्न स्वयं में।।
सिद्धों सा जीवन आयेगा[2] ।। 7।।
वस्तु स्वरूप सदा है अवस्थित।
मार्ग यही है हुई मति व्यवस्थित।।
प्रभुतामय जीवन आयेगा[2] ।। 8।।

(293)

(तर्ज : जैसो समकित महा सुखखान...)

जैसो मुनिवर करें उपकार, दूजा कोई नहीं।
जैसो गुरुवर करें उपकार, दूजा कोई नहीं।।टेक।।
मुनिवर आत्मस्वरूप दिखावें।
शाश्वत चित्स्वरूप दर्शावें।।
रागादिक ते भिन्न बतावें।

रत्नत्रयमय मार्ग सिखावें।।
जैसे मुनिवर जगत हितकार।। 1।।
गुरु तत्त्वों का ज्ञान करावें।
निज-पर भेदज्ञान सिखलावें।।
हेयरूप परभाव छुड़ावें।
उपादेय ज्ञायक दर्शावें।।
मुनिमार्ग महासुखकार ।। 2।।
परम पवित्र मुनीश्वर जीवन।
ब्रह्मचर्य जिनका अति पावन।।
निरखत ही आनंद उपजावे।
आकुलता सहजहिं मिट जावे।।
शोभें मुनिवर महाअविकार ।। 3।।
यही भाव मुनि संगति पावें।
अपना जीवन सफल बनावें।।
दीक्षा धारें निज पद ध्यावें।
कर्म-कलंक समूल नशावें।।
पावें शिवपद परम सुखकार।। 4।।

(294)

(तर्ज : तेरी पावन प्रतिमा देख...)

निर्दोष तत्त्व की दृष्टि धरूँ।
निर्दोष मार्ग में गमन करूँ।।
निर्दोष मार्ग निर्ग्रन्थ मार्ग।

निर्ग्रन्थ मार्ग में अब विचरूँ।।टेक।।

निर्मोह रहूँ अन्तर्मुख हो।
नहीं इष्ट-अनिष्ट कल्पना हो।।
कुछ क्षोभ न हो, प्रभु राग न हो।
निर्द्वन्द्व निराकुल सहज रहूँ।। 1।।

नहीं चिन्तन पूरव भोगों का।
आगामी की कुछ चाह न हो।।
स्वाभाविक उदासीनता हो।
नित निजानन्द रस पान करूँ।।2।।

नहीं परिग्रह हो, नहीं आरम्भ हो।
तन से भी सहज विरक्ति हो।।
प्रभु परम अहिंसक जीवन हो।
नित ज्ञान-ध्यान-तप लीन रहूँ।।3।।

परम भाव की सहज भावना।
जग में धर्म प्रभावना हो।।
हो निष्कषाय परिणति स्वामी।
नित निर्विकार निष्पाप रहूँ।। 4।।

भय, लालच में नहीं फँसू कहीं।
निस्पृहता का नित भाव रहे।।
निर्मद निर्मल निष्काम रहूँ।
निज आराधन में मग्न रहूँ।। 5।।

(295)

(तर्ज : सुनकर वाणी....)

गुण चिन्तत श्री मुनिवर के,
म्हारे आनन्द उर न समाय जी।
धन्य भाग्य जब दर्शन पाऊँ,
यही भाव उमगाय जी।। टेक।।
निस्पृह शान्त विरागी मुद्रा,
शान्ति सुधा बरसाय जी।
धीर वीर गम्भीर परिणति,
शिवपथ में हुलसाय जी।। 1।।
जिनकी वाणी दिव्यध्वनि सम,
चित्स्वरूप दरशाय जी।
अचल ध्यान मूरति जिनकी लख,
मृग गण खाज खुजाय जी।। 2।।
जात विरोधी पशु भी जिनके,
सन्मुख बैर भुलाय जी।
रत्नत्रयमय मुनिवर को लख,
सहज शीश झुक जाय जी।। 3।।

(296)

(तर्ज : केशरिया चावल रंगवा दो....)

मुनीश्वर के गुण गाओ रे[2]।
निज कल्याण हेतु मुनिपद की भावना भाओ रे।। टेक।।
कैसा सुन्दर मुनि का जीवन, यथाजात अविकारी।
रहित अडम्बर सहज दिगम्बर, शाश्वत मंगलकारी।।
परमानंदमय होय, शीश चरणों में नाओ रे।। 1।।

पंच महाव्रत पंच समीति, निज-पर को हितकारी।
उदासीनता पंचेन्द्रिय के, विषयों में धारी।।
अहो अतीन्द्रिय, परम जितेन्द्रिय गुण चित लाओ रे।।2।।
समता वंदनादि आवश्यक, यथायोग्य हो हैं।
रहें यतीश्वर स्ववश, परम आवश्यक से सोहें।।
शेष सप्त गुण भी अद्भुत, अन्यत्र न पाओ रे।। 3।।
अन्तर महिमा कहें कहाँ तक, गुण रत्नाकर हैं।
साक्षात् मुक्ति के साधक, सबको सुखकर हैं।।
प्रचुर स्वसंवेदनमय समता, लख हर्षाओ रे।। 4।।
मुनिपद बिना न शिवपद होवे, यह निश्चय जानो।
विषय कषायातीत सहज, निर्ग्रन्थ दशा मानो।।
स्वाश्रय से ही मुनि समान, पुरुषार्थ जगाओ रे।। 5।।

(297)

(तर्ज : तुम्हारे दर्श बिन स्वामी......)

अहो! निर्ग्रन्थ गुरुवर का दर्श साक्षात् कब होवे।
यही है भावना मेरी, दशा निर्ग्रन्थ कब होवे।। 1।।
चित्त घबराया है मेरा, असत् जग के प्रपंचों से।
रहूँ एकाकी जंगल में, निस्पृही परिणति होवे।। 2।।
विषय के रोगियों को देखकर, करुणा ही आती है।
विनाशी इन्द्रिय भोगों से, उदासी सहज ही होवे।। 3।।
अबाधित पुण्य की तृष्णायतनता, दीखती जग में।
तृप्ति पर में असम्भव है, तृप्ति निज में सहज होवे।।4।।

(298)

(तर्ज : घड़ी जिनराज दर्शन की.......)

रहूँ जंगल में एकाकी, स्वयं में तृप्त आनंदमय।
सहज निर्ग्रन्थ अरु निर्द्वन्द्व, नित निष्काम अरु निर्भय।। टेक।।
रहूँ चैतन्यमय घर में, न कुटिया की जरूरत हो।
बाह्य वैभव लगे फीका, लखूँ निज में ही वैभवमय।।1।।
सहज स्वाधीन वृत्ति हो, अपेक्षा कुछ नहीं पर से।
निराकुल शान्त कृतकृत्य हो, जीवन आत्मप्रभुतामय।। 2।।
न होवें भाव वैभााविक, स्वाभाविक भाव विकसित हों।
नहीं हों कर्म के बन्धन, रहूँ निर्बन्ध मुक्तिमय।।3।।
परम आह्लाद है मेरे, परम उत्साह है मेरे।
ब्रह्मचर्य हो सफल मेरा, ब्रह्ममय ज्ञान आनन्दमय।।4।।

(299)

(तर्ज : रोम-रोम पुलकित हो जाय....)

मुनि दर्शन को चित हुलसाय, धन्य भाग्य प्रत्यक्ष लखाय।
स्वाभाविक जिनरूप सुहाय, सहज शीश चरणन झुक जाय।।टेक।।
विषयाशा आरम्भ न लेश, तीन चौकड़ी हुई निःशेष।
प्रचुर स्व-संवेदन अभिराम, साधें निजपद आठों याम।। 1।।
जग से परम उदास रहाय, वन खण्डादिक वास कराय।
पीछी शास्त्र कमण्डल सोय, और परिग्रह नाहीं कोय।। 2।।
सिंहवृत्ति पर नाहीं क्रूर, इन्द्रिय मद मेटन को शूर।
अभयरूप मुद्रा सुखदाय, ज्ञान-ध्यान तपलीन रहाय।। 3।।

मुनिवर की है क्षमा अनूप, सबको लखें शुद्ध चिद्रूप।
रत्नत्रय साधक निर्ग्रन्थ, सहज सुझावें भव का अन्त।। 4।।
उपसर्गों में नहीं चिगाय, निश्चल निज में मग्न रहाय।
ख्याति लाभ की नहीं अभिलाष, अन्तर गुप्त सु अनियतवास।।5।।
करें न मिथ्या मंत्र अरु तंत्र, जिनका नाम स्वयं ही मंत्र।
आत्म शान्ति संदेश सुनाय, देखत वंदत दुःख पलाय।। 6।।
सहज सु धर्मामृत बरसाय, सम्यक् तत्त्व स्वरूप दिखाय।
भव्यों का करते उपकार, आप तिरें पर तारणहार।। 7।।
ऐसा मुनिपद मन को भाय, यही भाव निज में प्रगटाय।
पाऊँ रत्नत्रय अविकार, वर्ते ज्ञानानन्द अपार।। 8।।

(300)

मुनिवर कब दर्शन पाऊँ, गुरुवर कब दर्शन पाऊँ।। टेक।।
साक्षात् जिनरूप निहारूँ, चरणन बलि- बलि जाऊँ।
तुम साक्षी में दीक्षा धारूँ, निर्ग्रन्थ पद प्रगटाऊँ।। 1।।
लौकिक संग न मोहि सुहावे, पद असंग नित भाऊँ।
अन्तर्द्वन्द क्लेशमय भासे, नित निर्द्वन्द रहाऊँ।। 2।।
परमानंदमय ध्येय आपका, अन्तर्मुख हो ध्याऊँ।
आधि-व्याधि-उपाधि न उपजे, परम समाधि पाऊँ।। 3।।
तुम प्रसाद से अहो ऋषीश्वर, भव-बन्धन विनशाऊँ।
परम दशा विलसे अविकारी, जीवन सफल बनाऊँ।। 4।।

(301)

देखो ज्ञानमयी मुनिराज।। टेक।।
सहज निरम्बर, रहित अडम्बर, पर सौं कछू न काज।

सुगुण करण्ड, परम वैभवमय, ज्ञानमयी साम्राज्य।। 1।।
नहीं कुछ चिन्ता, नहीं कुछ वांछा, सहज तृप्त ऋषिराज।
ध्यानमग्न शोभें मुनि अविचल, सेवे भव्य समाज।। 2।।
मूर्तिमान मुक्ति का मारग, तारण तरण जहाज।
दर्शावें रागादि शून्य, ज्ञानानंदमय जीवराज।। 3।।
धन्य-धन्य निर्ग्रन्थ निस्पृही, तीन भुवन सिरताज।
सहज नमन परमार्थ स्तवन, होय सहज अविकार।। 4।।

(302)

(तर्ज : धन्य-धन्य आज घड़ी...)

जयवन्तो निर्ग्रन्थ साधु सुखकार हैं, दर्श मंगलकार हैं[2] ।। टेक।।
विषय कषायें सु, जिनके नहीं हैं।
आरम्भ परिग्रह भी जिनके नहीं हैं।।
निष्काम निश्चिंत जीवन अविकार है।। 1।।
जिनके सु भावों में वर्ते शुद्धात्मा।
चर्चा में आवे सु आत्मा परमात्मा।।
अहो ध्यान मुद्रा में दिखे नियमसार है।। 2।।
घोर उपसर्ग भी न जिनको डिगा सकें।
देवांगनाएं भी मन ना चला सकें।।
निष्कम्प मेरु सम अहो अनगार हैं।। 3।।
भव-रोग हरने को वैद्य के समान हैं।
निरपेक्ष बान्धव हैं शरण अम्लान हैं।।
गुरुवर की संगति सु सर्व हितकार है।। 4।।

कब होगा मुनिवर का प्रत्यक्ष दर्शन।
ज्ञान-आनन्दमयी चरणस्पर्शन।।
होय सफल भावना वन्दना अविकार है।। 5।।

(303)

(तर्ज : चाह जगी मोहि....)

साधु दशा प्रगटायेंगे, सिद्ध दशा प्रगटायेंगे।। टेक।।
स्वयं सिद्ध ध्रुव परमातम, परमानन्दमय शुद्धातम।
अन्तर्मुख हो ध्यायेंगे।। 1।।
ज्ञान सुख नहीं है पर में, अपनी प्रभुता अपने में।
पर से चित्त हटायेंगे।। 2।।
होय विरागी परिग्रह छोड़, इन्द्रिय-विषयों से मुख मोड़।
गुरु चरणों में जायेंगे।। 3।।
हर्ष सहित निर्ग्रन्थपद धार, मूलोत्तर गुण सहज सम्हार।
ज्ञायक भाव सु भायेंगे।। 4।।
उपसर्गों में अचल रहें, परीषहों में अडिग रहें।
सकल विभाव नशायेंगे।। 5।।
कर्म कलंक समूल नशाय, अनुपम आतम गुण विकसाय।
अक्षय प्रभुता पायेंगे।। 6।।

(304)

(तर्ज : प्रभु हम सबका....)

किया अनन्त उपकार, मुनीश्वर किया अनन्त उपकार हो।। टेक।।
देहादिक से भिन्न दिखाया, समयसार अविकार हो।
रागादिक से भिन्न दिखाया, मुक्तिमार्ग सुखकार हो।। 1।।

स्वयं स्वयं में पूर्ण दिखाया, चाह न रही लगार हो।
रहूँ सदा संतुष्ट दिखाया, सुख अनंत भंडार हो।। 2।।
शुद्ध दिखाया, मुक्त दिखाया, प्रभुता अपरम्पार हो।
निर्विकल्प निर्द्वन्द्व दिखाया, चेतन पद अविकार हो।। 3।।
अहो! सहज निरपेक्ष दिखाया, परमभाव ही सार हो।
काल अनन्त निमग्न रहूँ प्रभु, भवसागर से पार हो।। 4।।
पाने योग्य स्वयं में पाया, अक्षय विभव अपार हो।
भाव नमन हो सहज नमन हो, रहूँ सु जाननहार हो।। 5।।

(305)

(तर्ज : प्रभु हम सबका एक.....)

धन्य-धन्य मुनिराज रमें, निज में ही, निज में हो।।टेक।।
होय विरागी परिग्रह डारा, शुद्धोपयोग धर्म है धारा।
आतम रूप लखें निज में ....।। 1।।
निर्मम शुद्ध परम अविकारी, नशे विभाव परिणति सारी।
पूरव कर्म झरै छिन में....।। 2।।
पद विरूद्ध क्रिया नहीं कोई, योग्य क्रिया भी सहजहिं होई।
निष्क्रिय रूप लखें निज में....।।3।।
ग्रीष्म में पर्वत पर राजें, चित्स्वरूप में सहज विराजें।
शीतल शान्त रहें निज में....।। 4।।
वर्षा ऋतु तरुवर के नीचे, धर्म वृक्ष को निश-दिन सींचें।
मुक्तिफल पावें निज में...।। 5।।
शीतकाल दरिया के किनारे, अपना ज्ञायक रूप सम्हारें।
परमानन्द लहें निज में....।। 6।।

अद्भुत रत्नत्रय निधि धारी, हो अद्वैत नमन सुखकारी।
साधु दशा पाऊँ निज में....।।7।।

(306)

(तर्ज : मन लागे...)

जग में सन्त चरण सुखकार,
कब पाऊँ, कब पाऊँ, कब पाऊँ रे।
जग में निर्ग्रन्थ पद ही सार,
प्रगटाऊँ, प्रगटाऊँ, प्रगटाऊँ रे।।टेक।।
परिग्रह भोग दिखें दु:खकार,
वन जाऊँ, वन जाऊँ, वन जाऊँ रे।
सहज ज्ञायक प्रभु अविकार,
नित ध्याऊँ, नित ध्याऊँ, नित ध्याऊँ रे।।1।।
क्लेशमय सब विभाव असार,
नहीं चाहूँ, नहीं चाहूँ, नहीं चाहूँ रे।
वर्ते शुद्धोपयोग सुखमय,
निज भाऊँ, निज भाऊँ, निज भाऊँ रे।।2।।
सहज परिपूर्ण शुद्धातम सार,
रम जाऊँ, रम जाऊँ, रम जाऊँ रे।
शुद्ध रत्नत्रय भाव सुधार,
तिर जाऊँ, तिर जाऊँ, तिर जाऊँ रे।।3।।
छूटें कर्म-कलंक असार,
शिव पाऊँ, शिव पाऊँ, शिव पाऊँ रे।
हो न आवागमन संसार,
सिद्धालय तिष्ठाऊँ, तिष्ठाऊँ, तिष्ठाऊँ रे।।4।।

(307)

धन्य हैं मुनि मंगल दातार।
धन्य गुरु शिव स्वरूप शिवकार।। टेक।।
शुद्ध स्वरूप सदा मंगलमय, परिणति भी अविकार।
गुरुवर की मंगल वाणी से, होय तत्त्व निर्धार।। 1।।
शुद्धातम की महिमा जागे, नशे मोह दुःखकार।
रागद्वेषमय दुर्विकल्प भी, दीखें नहीं लगार।। 2।।
स्वानुभूति हो ज्ञानमयी, परमानंद अपरम्पार।
जगे परम पुरुषार्थ शीघ्र ही, होवें भव से पार।। 3।।
जाननहार स्वरूप अलौकिक, गुरुवर जाननहार।
निर्विकल्प परमार्थ नमन गुरु, रहूँ सु जाननहार।। 4।।

(308)

अलौकिकवृत्ति अहो मुनिराज।
रह निरपेक्ष सर्व भावों से, वेदें निजपद सार।। टेक।।
लौकिक जन पर ही को देखें, धारें भाव विकार।
ध्रुव दृष्टि ध्रुव आश्रय से ही, मुनि होवें भव पार।। 1।।
ज्ञेय लुब्ध लौकिक जन क्षण भी, लहें न आतम स्वाद।
प्रचुर स्व-संवेदनमय मुनि को, किंचित् हो न विषाद।। 2।।
भोगासक्त लोकजन करते,पाप हर्ष उर धार।
उनका चिन्तन भी नहीं होवे, गुरु के स्वप्न मंझार।। 3।।
लौकिक जन को भीड़ सुहाए, मुनि एकान्त विहार।
इष्ट-अनिष्ट न ठानें पर में, ज्ञाता भाव सम्हार।। 4।।

लौकिक जन एकत्व धरें, मुनि भेदविज्ञान विचार।
शुद्धातम में मग्न रहें नित, नमन होय अविकार।। 5।।

(309)

(तर्ज : मारे ज्ञान मां ज्ञायक जणाय रह्यो रे...)

मेरे गुरुवर ने ज्ञायक दर्शाय दियो रे।
मेरे अनुभव में प्रत्यक्ष आय रह्यो रे।।
धन्य-धन्य गुरुवर[2] ।। टेक।।
आप स्वयं ज्ञायक रस रसिया,
अनुभव रस में डुबाय रह्यो रे।
किंचित् विकल्प भव्यों प्रति जागा,
ज्ञायक स्वरूप बताय दियो रे।। 1।।
नय प्रमाण युक्ति से गुरुवर,
हस्तामलकवत् दिखाय दियो रे।
परम दिगम्बर निर्ग्रन्थ गुरुवर,
समरस सागर छलकाय दियो रे।। 2।।
अव्यक्त ज्ञायक शुद्धनय द्वारा,
शास्त्रों माँहि लिखाय दियो रे।
धीर गंभीर मुद्रा वाणी के द्वारा,
मुझको भी रसिया बनाय दियो रे।। 3।।
नमन परम उपकारी गुरुवर,
भव के दुःखों से छुडाय दियो रे।
सहजानंदमय परमानंदमय,

मुक्तिपथ में लगाय दियो रे।। 4।।
नहिं प्रमत्त नहिं अप्रमत्त ध्रुव,
एक रूप ज्ञायक दिखाय रह्यो रे।
निज में ही रम जाऊँ गुरुवर,
भाव यही उमगाय रह्यो रे।। 5।।

(310)

अज्ञानी प्राणी से कहें गुरु ज्ञानी,
महिमा है सिद्ध समान रे।। टेक।।
एकत्व पर में तू करके भटकता,
पुण्य-पापमय भव-भव में रुलता।
जाना न जाननहार, इसी से अज्ञानी।। महिमा.।। 1।।
मानी न प्रभुता, प्रभुता है फिर भी,
निश्चय से देखे भगवान तू भी।
अकलंक मूरति परमाभिरामी।। महिमा.।। 2।।
सौभाग्य से आज अवसर है आया,
अध्यात्म संदेश तुमको सुहाया।
स्वानुभूति पाकर बनो आत्मज्ञानी।। महिमा.।। 3।।
आनन्द अतीन्द्रिय अहो प्रगटाए,
पुरुषार्थ थिरता का बढ़ता ही जाए।
धन्य मुनिदशा हो परम सुख निधानी।। महिमा.।। 4।।

(311)

भवि कहना गुरु का मान, समझ शुद्धातम हूँ।
गुण अनन्त की खान, सहज परमातम हूँ।। टेक।।
बहिर्भाव लख हेय तज, अन्तर आतम होय।
परमातम को ध्याय नित, परमातम पद होय।।भवि.।। 1।।
शुद्धातम समझे बिना, पायो दुःख अपार।
श्री गुरुवर समझा रहे, समझ होऊ भवपार।।भवि.।। 2।।
हो वियोग संयोग का, उपजे सो विनशाय।
चिदानन्दमय आत्मा, ध्रुव स्वरूप विलसाय।।भवि.।। 3।।
हुए, हो रहे, होयेंगे, जो अनन्त भगवन्त।
आत्माराधन की अहो, महिमा कहते सन्त।।भवि.।। 4।।

(312)

अपना करना हो कल्याण, साँचे गुरुवर को पहिचान।
जिनकी वाणी में अमृत बरसता है।। टेक।।
रहते शुद्धातम में लीन, जो हैं विषय-कषाय विहीन।
जिनके ज्ञान में ज्ञायक झलकता है।। 1।।
जिनकी वीतराग छवि प्यारी, मिथ्यातिमिर मिटावनहारी।
जिनके चरणों में चक्री भी झुकता है।। 2।।
पाकर ऐसे गुरु का संग, ध्यावो ज्ञायक रूप असंग।
निज के आश्रय से ही शिव मिलता है।। 3।।
अनुभव करो ज्ञान में ज्ञान, होवे ध्येय रूप का ध्यान।
फेरा भव-भव का ऐसे ही मिटता है।। 4।।

(313)

मुनीश्वर मग्न रहे निज माँहि।। टेक।।
सहज स्वभावहि से आनंदित, तृप्त रहें निजमाँहि।
सतत अनुभवें इक शुद्धातम, अन्य कुछ चिन्ता नाहिं।। 1।।
देव पशु जड़ जन के द्वारा, कृत उपसर्गों माँहि।
साम्य भाव धरि सावधान रहें, निज आराधन माँहि।। 2।।
घोर परीषह उपसर्गों में, रंच आकुलित नाहिं।
सहज निराकुल ज्ञाता रहते, वे कर्मोदय माँहि।। 3।।
नहीं असाता में विषाद कछु, हर्ष न साता माँहि।
उदासीन निस्पृही धन्य मुनि, लगन लगी निज माँहि।। 4।।
मुनि की परिणति मुनि जैसी ही, दिखे और में नाहिं।
उनका रूप विचार किये तैं, पातक सर्व नशाहिं।। 5।।
हे गुरुवर तुम सम निर्ग्रन्थ हो, हम भी वन को जाँहि।
एकाकी निस्पृह आनन्दमय, निज में तृप्त रहांहि।। 6।।

(314)

कब मैं अलौकिक वृत्ति धरूँगा।
लौकिकता से अति विरूद्ध हो, मुनि हो आतम ध्यान धरूँगा।। टेक।।
पाप क्रिया और पाप वचन से, विरत होय मैं दूर रहूँगा।
पाप क्रिया चिन्तन भी, मुनिसम नहीं करूँगा-नहीं करूँगा।। 1।।
इस तन की किंचित् संभाल, अरु पोषण का नहीं भाव करूँगा।
उग्र परीषह उपसर्गों में, निश्चल समता भाव धरूँगा।। 2।।
जन समुदाय न रूचिकर लागे, एकाकी वन में विचरूँगा।
हो सब संग विमुक्त विरागी, शुद्धातम में मग्न रहूँगा।। 3।।

कोलाहल से दूर शान्तिमय, आतम नन्दन में विचरूँगा।
निज अक्षय वैभव को पाकर, चाह-दाह में नहीं जलूँगा।।4।।
धन्य-धन्य मुनिदशा अलौकिक, प्रचुर स्व-संवेदन सु-करूँगा।
निज में थिरता वृद्धिंगत हो, चढ़ श्रेणी घातिया हनूँगा।।5।।
निज में पूर्ण लीनता होवे, भाव मुक्त अरहंत बनूँगा।
योग दशा भी सहज नशेगी, सिद्धालय में जा तिष्ठूँगा।।6।।

(315)

निज ज्ञायक ही आनन्दधाम,
गुरु ऐसे दृष्टिधारी हैं।
सहजानन्द में ही तृप्त होय,
अस्थिर जग प्रीति विसारी है।।1।।
तीन कषाय चौकड़ी नाशी,
यथाजात मुद्रा धारी।
विषयाशा आरम्भ परिग्रह,
रहित ज्ञानमय अविकारी।।2।।
सब परभावों से भिन्न सदा,
शुद्धातम अनुभव करते हैं।
किंचित् करुणा जब आती है,
ज्ञायक महिमा दर्शाते हैं।।3।।
पावन पुरुषार्थ प्रकट होवे,
यह धन्य दशा कब प्रगटाऊँ।
तोड़ सकल जग द्वन्द-फन्द,

गुरु सम निज गुरुता को ध्याऊँ।।4।।

जिन उपसर्गों की मात्र कल्पना से,
अज्ञानी घबराते।
उपसर्ग नहीं मेरे ऊपर,
यों समझ सौम्यता दिखलाते।।5।।

वे दुष्ट मूढ़जन थक जावें,
नहिं किंचित् तुम्हें चिगा पाते।
कितने ही अंत में द्वेष त्याग,
तुम चरणों में ही झुक जाते।।6।।

चक्री इन्द्रादि चरण पूजें,
बहु ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रगट हुई।
पर धन्य-धन्य निर्ग्रन्थ गुरु,
उनमें नहीं परिणति भ्रमित हुई।।7।।

चैतन्य ऋद्धि में मग्न हुए,
किंचित् परवाह नहीं जग की।
मुक्ति की भी वांछा न करें,
बस महिमा जागी निजपद की।।8।।

निर्दोष मूलगुण अट्ठाईस,
बाहर परिणति में होते हैं।
उनको भी तुष सम ही समझें,
अक्षय पद अनुभव करते हैं।।9।।

वे वंदनीय आदर्श परम,
समतामय जिनका जीवन है।

समतामय ज्ञायक दृष्टि धर,
चरणों में शत-शत वंदन है।।10।।

(316)

(तर्ज-हृदय में विराजो श्री भगवान....)

मन मंदिर में तिष्ठो, श्री मुनिराज।। टेक।।
काठ कमण्डल हाथ में, पीछी पंख मयूर।
परमातम पद साधते, अहो जितेन्द्रिय-शूर।। 1।।
रत्नत्रयमय सम्पदा, पाई अपरम्पार।
निज में ही संतुष्ट हैं, परिग्रह नहीं लगार।। 2।।
निजानन्द रस भोगते, निज में तृप्त रहाय।
इन्द्रिय भोगों की नहीं, चाह हृदय उपजाय।। 3।।
घोर परिषह जीतते, अन्तर्बल प्रगटाय।
ऐसा ही बल हो प्रगट, चरणों शीश नवाय।। 4।।
आप समीप बुलाओ अब, विरह सहा नहीं जाय।
विषय चाह दावाग्नि से, गुरुवर लेहु बचाय।। 5।।
ज्ञान-ध्यान-तप लीन गुरु, करें परम उपकार।
प्रचुर स्व-संवेदनमयी, पद पाऊँ अविकार।। 6।।

(317)

अब जिनदीक्षा लेना चाहिए, निज आराधन करना चाहिए।। टेक।।
जीवन का है नहीं ठिकाना, यहाँ से कब हो जावे जाना।
अब विलम्ब नहीं करना चाहिए।। अब...।। 1।।
है स्वाधीन सु बाह्य व्यवस्था, कर्मोदय की अति विचित्रता।
लखकर समता धरना चाहिए।। अब...।। 2।।

जीव स्वयं ही सुख-दुःख भरता, कोई किसी का कुछ नहीं करता।
ज्ञाता-दृष्टा रहना चाहिए।। अब...।। 3।।
सुख का कारण नहीं परिग्रह, परिग्रह से तो होते विग्रह।
अब निर्ग्रन्थ सु-रहना चाहिए।। अब...।। 4।।
मिथ्या पर में निज संकल्प, अरे निरर्थक सर्व विकल्प।
नित निर्द्वन्द्व सु-रहना चाहिए।। अब...।। 5।।
इच्छाओं की पूर्ति असम्भव, अक्षय सुख निज में ही सम्भव।
निर्वांछक ही रहना चाहिए।। अब...।। 6।।
त्याग कुसंग महादुखकारी, होवें निश्चय शिवमगचारी।
सहज असंग ही रहना चाहिए।। अब...।। 7।।
सब प्रकार अवसर है आया, मन में यही भाव उमगाया।
सहज समाधि धरना चाहिए।। अब...।। 8।।

(318)

होवे कब निर्ग्रन्थ दशा[2] ।। टेक।।

भेदज्ञान की धारा वर्ते, वेदूँ सहजानंद अहा।
चाहे जैसे जगत परिणमे, रहूँ परम निरपेक्ष सदा।। 1।।
तृप्त रहूँ निज से ही निज में, अक्षय आतम विभव लखा।
नहीं जरूरत पर की किंचित्, स्वयं स्वयं में पूर्ण दिखा।। 2।।
शक्ति अनंतमयी शुद्धातम, शाश्वत प्रभु अन्तर विलसा।
धन्य हुआ संतुष्ट हुआ मैं, ऐसा संचेतन प्रगटा।। 3।।
हूँ स्वभाव से ज्ञाता-दृष्टा, स्वयंसिद्ध निर्मुक्त सदा।
मैं निज में ही निज को ध्याऊँ, यही सहज निष्काम दशा।। 4।।

ग्रन्थि न कोई, द्वंद न कोई, नहीं संकल्प-विकल्प कदा।
नहीं आडम्बर, परम दिगम्बर, जगत्पूज्य जिनरूप लखा।। 5।।
शिवपथ के आदर्श मुनीश्वर, सहज भक्ति से शीश झुका।
उनके संघ में निज हित साधूँ, भाव यही उर में उमगा।। 6।।

(319)

संयताष्टक

संयत का लक्षण समता है, संयत का जीवन समता है।
जिसमें दशलक्षण गर्भित हैं, साक्षात् धर्म तो समता है।। टेक।।
विषय वासना से विरहित, निरपेक्ष शुद्ध निश्चल स्वाधीन।
सहजानंदमय परमानंदमय, रहें सहज आतम में लीन।।
मोह- क्षोभ से शून्य ज्ञानमय, निज परिणति ही समता है।। 1।।
तत्त्वों का श्रद्धान है सम्यक्, ज्ञायक में ही अहं हुआ।
इष्ट- अनिष्ट कल्पना नाशी, निर्मल भेदविज्ञान हुआ।।
सहज तृप्त निष्काम परिणति, किंचित् नहीं विषमता है।। 2।।
परीषहों में चलित न होवें, उपसर्गों में अडिग रहें।
परम जितेन्द्रिय अहो अतीन्द्रिय, ज्ञानानंद में तुष्ट रहें।।
मन-वच-काया में भी जिनको, रही लेश नहीं ममता है।। 3।।
निस्पृह रह शिवमार्ग दिखाते, नहीं भार किंचित् लेते।
अपनी निधि अपने में भोगें, जग की निधि जग को देते।।
पर प्रतिबन्ध निषेधा जिनने, निज में ही अनुबन्धता है।। 4।।
विषय लुब्धता नष्ट हुई है, ज्ञेय लुब्धता नहीं रही।
पर से नहीं प्रयोजन कुछ भी, परिणति निज में लीन हुई।।
सुख यही है शांति यही है, ये ही उदासीनता है।। 5।।

अरे क्षयोपशम न्यूनाधिक हो, चाहे जैसा उदय रहे।
इससे नहीं कुछ अन्तर पड़ता, साधक नित निर्द्वन्द्व रहे।।
धीर-वीर-गम्भीर ज्ञानमय, अहो अलौकिक प्रभुता है।। 6।।
जब मोही भोगों में गाफिल, मोह नींद में सोता है।
इष्ट-अनिष्ट कल्पना करके, हँसता है अरु रोता है।।
तब निर्ग्रन्थ संयमी योगी, निजानंद में रमता है।। 7।।
अंतर्दृष्टि रहे सदा ही, सहज ज्ञानधारा वर्ते।
कर्म-कर्मफल से विरक्त हो, आत्मध्यान धारा वर्ते।।
परम साध्य निज में ही पाऊँ, ये ही भाव उमगता है।। 8।।

(320)

मुनिराज बनेंगे, अहो! जिनराज बनेंगे।
ज्ञायक स्वरूप है, सहज ज्ञायक ही रहेंगे।। टेक।।
परिग्रह प्रपंच में नहीं कुछ सार दिखाया,
मोह मायामय जग जाल से अब चित्त घबराया।
निर्ग्रन्थ रूप है अहो! निर्ग्रन्थ रहेंगे।। 1।।
है देह, देह में अरे! हम देह से न्यारे,
हम ज्ञानमय हैं, ज्ञानमय ही भाव हमारे।
निर्मम हो देह से अहो! विदेह रहेंगे।। 2।।
नहीं अप्रमत्त नहीं प्रमत्त, ज्ञायक मात्र हम,
पर भावों से अति भिन्न, सहज ज्ञान मात्र हम।
हो पर से भिन्न उपासित, सदा शुद्ध रहेंगे।। 3।।

निज में ही मग्न हम रहें, आश्रव न हों स्वयं,
चाहे जैसे हों पूर्व बन्ध, झड़ जावें स्वयं।
निष्काम अरु निष्कर्म, निज में तृप्त रहेंगे।। 4।।
जग से अपेक्षा कुछ नहीं, निरपेक्ष प्रभुतामय,
प्रभु रूप जाना अपना, हम हो गये निर्भय।
ज्ञेयों प्रति निरपेक्ष, जाननहार रहेंगे।। 5।।

(321)

कब मुनिवर दर्शन पाऊँ, कब गुरुवर दर्शन पाऊँ।
गुरु के पावन चरणों में, मैं जीवन सफल बनाऊँ।। टेक।।
अब विरह सहा नहीं जाता, दुनियाँ से चित्त घबड़ाया।
स्वाधीन निराकुल शिवपद, पाने को मन ललचाया।।
जग झूठा स्वारथ साधे, मैं परम स्वार्थ को भाऊँ।। 1।।
आरम्भ-परिग्रह विरहित, निर्ग्रन्थ स्वरूप मुनीश्वर।
विषयाशा-शून्य निरामय, निर्द्वन्द्व स्वरूप ऋषीश्वर।।
बस गया हृदय में मेरे, कब परिणति में प्रगटाऊँ।। 2।।
पुरुषार्थ सु बढ़ता जावे, वैराग्य सु बढ़ता जावे।
हो उदय प्रतिज्ञा का जब, तब संयम नाम कहावे।।
हो सर्व संग निवृत्ति, निज परम ब्रह्म को भाऊँ।। 3।।
ख्याति से रहे उदासी, हो आत्मख्याति अविकारी।
निर्भय निकलंक अनिन्दित परिणति हो मंगलकारी।।
हो सफल ब्रह्मचर्य मेरा, निज में ही तृप्त रहाऊँ।। 4।।

(322)

आचार्य भक्ति

वन्दों नित आचार्य मुनीश्वर, सर्व संघ नायक ऋद्धीश्वर।।टेक।।
सहज विरागी शुद्धोपयोगी, जयवंतें अनुभव रस भोगी।। 1।।
द्वादश तप, दश धर्म सुहावे, पंचाचार सहज पल जावें।। 2।।
षट् आवश्यक अरु गुप्ति त्रय, छत्तीस गुण धारक आचारज की जय।।3।।
दें दीक्षा-शिक्षा सुखकारी, प्राणीमात्र प्रति करुणा धारी।। 4।।
दोष लगे प्रायश्चित बतावें, धर्म तीर्थ निर्दोष चलावें।। 5।।
लेश नहीं जिनके आडम्बर, यथाजात जिन रूप दिगम्बर।।6।।
परीषह अरु उपसर्ग सु आवें, गुरु किंचित् भी नहीं चिगावें।।7।।
अल्पकाल में कर्म नशावें, निश्चय ही शिव पदवी पावें।।8।।
प्रचुर स्व-संवेदनमय जीवन, भाव नमन गुरुवर के चरणन।।9।।

(323)

चारित्र भक्ति

(हरिगीतिका)

मोह क्षोभ विहीन निज परिणाम जो समतामयी।
सम्यक्त्व जिसका मूल है, चारित्र ज्ञानानन्दमयी।। 1।।
आत्म-रुचि सम्यक्त्व निश्चय ज्ञान निज अनुभूति है।
चारित्र निज में लीनता, अविनाशी आत्म-विभूति है।। 2।।
इन्द्रादि चक्री रंक सम, अंतर-विभूति के बिना।
जीवन अरे निस्सार सूना, स्वानुभूति के बिना।। 3।।
व्यर्थ ही भूला हुआ, होता रहा हैरान है।
नित्य निर्मल संपदाओं की स्वयं में खान है।। 4।।

भगवान के सन्मुख खड़ा, पर स्वयं ही भगवान है।
रम जाय निज में ही अहो, निश्चय बने भगवान है।। 5।।
चारित्र निश्चय धर्म है, चारित्र ही आराधना।
अहो! दर्शन ज्ञानमय, चारित्र से शिव पावना।। 6।।
व्रत, शील, संयम भी अरे,साधक दशा में हों सहज।
करुणामयी परिणाम पर, आसक्ति भी छूटे सहज।। 7।।
इससे व्रतादिक भी प्रभो, व्यवहार से चारित्र कहे।
पर हेय हैं श्रद्धान में, छूटें तभी शिवपद लहें।। 8।।
इक वीतरागी भाव ही, चारित्र यह श्रद्धान है।
हो वीतरागी परिणति, पुरुषार्थ होय महान है।। 9।।
छूटे असंयम अहो, सयंम भाव निर्मल प्रगट हो।
साम्यभाव रहे सदा, परमार्थ चारित्र भक्ति हो।। 10।।
ज्ञान में ही हो प्रतिष्ठित, ज्ञान निज महिमामयी।
ज्ञेय भासे निर्विकल्प, अनुभूति हो ज्ञायकमयी।। 11।।
श्रद्धान होवे भावना हो, साथ ही पुरुषार्थ हो।
व्यवहार हो न अयोग्य प्रभु, अंतरंग में परमार्थ हो।। 12।।

(324)

(तर्ज : श्री सिद्धचक्र का पाठ करो ...)

अपनी शक्ति सम्हार, करलो निज उपकार, गुरु उचारो,
तेरे अन्तर में सुख है तुम्हारो।। टेक।।
क्षणभंगुर तेरी काया औ माया, तूने क्यों इनसे नेह लगाया।
बुद्बुद् जल उनहार, इनमें नहीं कुछ सार, ममता टारो।। 1।।

तुम तो चिरकाल से जग में भ्रमते, पंच-परार्वतन के दुख सहते।
पर में आपा विचार, किया मोह अपार, कुछ विचारो।। 2।।
अब तो जिनवर का उपदेश मानो, पर से भिन्न निजातम पिछान।
पर से दृष्टि निवार, तज दो मोहान्धकार दुःखकारो।। 3।।
अपने में थिर रहो मुक्ति पाओ, जन्म-मृत्यु का रोग नशाओ।
समयसार अविकार, सर्व सुख का सार, अब तुम धारो।। 4।।

(325)

धर्मी होवे पाहुने धनि भाग्य हमारे[2]।। टेक।।
गृहस्थ दशा तो हीन दशा है, अविरति है कमजोरी।
महाभाग नर सुख सागर हैं, जिन संयम रति जोरी।। 1।।
तत्त्व की बात करें वे भी, इस दुःखम काल में थोरे।
अधिक जीव तो ऐसे दीखे, राग-रंग में बोरे।। 2।।
ज्ञानी के शुभ दर्शन, चर्चा, सेवा पाप नशावे।
पात्र जीव पुरुषार्थ जगाकर, निज स्वरूप को पावे।। 3।।
शुद्धात्म की अनुपम महिमा, ज्ञानीजन दर्शावें।
समझें, श्रद्धें, ध्यावें हम भी परमानंद प्रगटावें।। 4।।
तत्त्वों का सम्यक् निर्णय कर, भेदज्ञान उर लावें।
हो अन्तर्मुख निर्विकल्प, आतम अनुभव प्रगटावें।। 5।।
तज भव फाँसी हो वनवासी, आतम ध्यान लगावें।
ज्ञानमयी ही चर्या होवे, ज्ञानमयी पद पावें।। 6।।

(326)

मुक्ति का मार्ग तो निर्ग्रन्थ है, स्वाधीन मार्ग तो निर्ग्रन्थ है।। टेक।।
परमार्थ मार्ग तो निर्ग्रन्थ है, सत्यार्थ मार्ग तो निर्ग्रन्थ है।
आतम स्वभाव अहो निर्ग्रन्थ है, वस्तु स्वभाव अहो निर्ग्रन्थ है।। 1।।
आनन्दमय मार्ग तो निर्ग्रन्थ है, समतामय मार्ग तो निर्ग्रन्थ है।
सन्तों का मार्ग तो निर्ग्रन्थ है, वीरों का मार्ग तो निर्ग्रन्थ है।। 2।।
आराध्य का रूप निर्ग्रन्थ है, आराधना सहज निर्ग्रन्थ है।
अनुभव का मार्ग तो निर्ग्रन्थ है, थिरता का मार्ग तो निर्ग्रन्थ है।। 3।।
जहाँ न आरम्भ, जहाँ न परिग्रह, जहाँ न हिंसा, जहाँ न विग्रह।
जहाँ न अनुबन्ध, जहाँ न प्रतिबन्ध, शान्ति का मार्ग तो निर्ग्रन्थ है।।4।।
पर से न सम्बन्ध, सन्तुष्ट निज में, वाँछा न कोई, तृप्त स्वयं में।
निर्भय हो रमते निर्ग्रन्थ निज में, अलौकिक मार्ग तो निर्ग्रन्थ है।। 5।।
कर्म बन्ध जहाँ सहज हैं झड़ते, आत्मीक गुण सहज प्रगटते।
इन्द्रादिक चरणों में नमते, प्रभुतामय मार्ग तो निर्ग्रन्थ है।। 6।।

(327)

गुरु निर्ग्रन्थ परिग्रह त्यागी,भव-तन-भोगों से वैरागी।
आशा पाशी जिनने छेदी, आनंदमय समता रस वेदी।। 1।।
ज्ञान-ध्यान-तप लीन रहावें,ऐसे गुरुवर मोकों भावें।
हरष-हरष उनके गुण गाऊँ, साक्षात् दर्शन मैं पाऊँ।। 2।।
उनके चरणों शीश नवाकर, ज्ञानमयी वैराग्य बढ़ाकर।
उनके ढिंग ही दीक्षा धारूँ, अपना पंचमभाव संभारूँ।। 3।।
सकल प्रपंच रहित हो निर्भय,साधूँ आतम प्रभुता अक्षय।
ध्यान अग्नि में कर्म जलाऊँ, दुखमय आवागमन नशाऊँ।।4।।

(328)

आचार्य कुन्दकुन्द देव भक्ति

(तर्ज : आचार्य श्री धरसेन जो न ग्रंथ रचाते ...)

आचार्य कुन्दकुन्द जो मारग न दिखाते।
शुद्धात्म सुधा सार कहो कौन पिलाते।। टेक।।
दर्शन थे विदेहों में किए जा सीमंधर के,
फिर लौट के आए यहाँ उपदेश को ले के।
जिनवाणी हमें आज न जो आप सुनाते।। 1।।
श्रीमान् ने नाटक है समयसार बनाया,
अरु सूरि सुधाचन्द्र ने है कलश चढ़ाया।
जयचन्द से विद्वान जो टीका न रचाते।। 2।।
प्रवचन व नियमसार से हैं ग्रन्थ बनाए,
पंचास्तिकाय-अष्टपाहुड़ ग्रन्थ रचाए।
निज-पर का भेदज्ञान हमें जो न सिखाते।। 3।।
ये जीव है व्यवहार से बहु रूप कहाता,
है नियत नय से एक सदा दृष्टा-ज्ञाता।
नय पक्ष हमें आ के जो न आप सुझाते।। 4।।
आचार्य कुन्दकुन्द हमारे गुरु ज्ञानी,
परमात्मा सम आत्मा की महिमा बखानी।
आनन्दमय होकर गुरो! हम शीस झुकाते।। 5।।

(329)

(तर्ज : मेरे मन मंदिर में आन पधारो ...)

जय-जय कुन्दकुन्द भगवान, नशाया अंतर का अज्ञान।। टेक।।
जिसने कहना गुरु का माना, जिसने शुद्धातम सरधाना।
उस घट प्रगटे केवलज्ञान ।। नशाया.।। 1।।
कर्म उदय रस भिन्न चखे जो, मन इन्द्रिय को भिन्न लखे जो।
पावे निज अनुभव विज्ञान।। नशाया.।। 2।।
इष्ट संयोग में हर्ष न माने, अरु अनिष्ट से दुख न जाने।
आश्रय वह ज्ञायक गुण जान।। नशाया.।। 3।।
देव-धरम-गुरु का सरधाना, पूजन भजन करो नित क्यों ना।
जगाकर निज का सम्यग्ज्ञान।। नशाया.।। 4।।
ज्ञायक रस का रसिया होना, ज्ञान-ध्यान उस ही का होना।
कहें गुरु सुनियो अब बुधिवान।। नशाया.।। 5।।

(330)

धन्य दिवस यह आज का, धन्य घड़ी महाराज।
दर्शन पाकर आपका, जन्म सफल हुआ आज।।
मन लागा हमारा मुनिवर में।
मन लागा आचार्य कुन्दकुन्द देव में।। टेक।।
दर्शन-ज्ञान-चारित्र से, प्रगटा साधक भाव।
चारित्र दशा आराधकर, साधा ज्ञायक भाव।। 1।।
सीमंधर प्रभु दिव्यध्वनि, सुनी महा सुखकार।
भव्यों प्रति करुणा करी, रचा समय का सार।। 2।।
शास्त्र रचे प्रभु अनोखे, पूरे अद्भुत भाव।

चार संघ पर कृपा कर, खेई शासन नाव।। 3।।
पर्वत यह पावन किया, पावन पोन्नूर ग्राम।
हम सब भी पावन हुये, कुन्दकुन्द के धाम।। 4।।
धन्य भूमि धन्य धूलि यह, धन्य हमारा भाग्य।
संघ सहित दर्शन किये, हुयी सफल मम आस।। 5।।

(331)

तुमसे लगनी लागी मुनिवर, तुमसे लगनी लागी।
कुन्दकुन्द आचार्य शिरोमणि, तुमसे लगनी लागी।।टेक।।
कुन्दकुन्द स्मरण मात्र से, उर में हो उजियारा,
गुरो! आपके ही प्रसाद से पाया, निज पद प्यारा।
शुद्धातम दर्शाया गुरुवर, तुमसे लगनी लागी।। 1।।
सीमंधर प्रभु के दर्शन को, आप विदेह पधारे,
भेंट हुई प्रभु समवशरण में, भक्ति भाव उर धारे।
ऐसी अविकारी भक्ति हो, मुनिवर लगनी लागी।। 2।।
सुनी अपूर्व दिव्यध्वनि प्रभु की, सार अलौकिक लाये,
समयसार से शास्त्र बनाये, भविजन मन हर्षाये।
मुक्तिमार्ग बताया मुनिवर, तुमसे लगनी लागी।। 3।।
असीम शक्तिधर आतम ज्ञानी, चारण ऋद्धिधारी,
लब्ध प्रतिष्ठित शील शिरोमणि ज्ञानी बहुश्रुतधारी।
कुन्द्रादिगिरि से हुयी समाधि, मुनिवर लगनी लागी।।4।।
हुआ आपके ही चरणों से, दक्षिण देश सु पावन,
श्री कुन्दाद्रि तीर्थ कहलाये, भव्यों को मन भावन।
हो प्रतिबुद्ध भव्यजन गुरुवर, तुमसे लगनी लागी।। 5।।

(332)

आचार्य कुन्दकुन्द श्री, भारत में फिर आओ।
अध्यात्म का संदेश शुभ, प्रत्यक्ष सुनाओ॥ टेक॥
मनमाने ढंग से हो रहा है, पक्ष का पोषण।
जिनवाणी की अवहेलना, जिनमार्ग का शोषण॥
पक्षातिक्रान्त स्वानुभूत मार्ग दिखाओ ॥ 1॥
पुज रहे हैं अव्रती भी गुरु की तरह आज।
गुरु वेश धार कर भी कोई पोषे शिथिलाचार॥
आदर्श गुरु स्वरूप अब प्रत्यक्ष दिखाओ॥ 2॥
कोई पुण्य भाव को ही मुक्तिमार्ग जानते।
जड़ देह की क्रिया को ही सर्वस्व मानते॥
कोई हो रहे स्वच्छन्द गुरु विवेक जगाओ॥ 3॥
अविनाशी ज्ञान सुख का आधार आत्मा।
पर्यायों के स्वाँगों से पार शुद्ध आत्मा॥
और आत्मानुभव की विधि सहज बताओ॥ 4॥
ध्रुव आत्मा ही विश्व में इक सार दिखाया।
आराधना का भाव भी है सहज जगाया॥
ध्याऊँ सु ध्येय रूप साक्षी आप रहाओ॥ 5॥
आधार हो मेरे तुम्हीं इस दुषम काल में।
निरपेक्ष हो निर्द्वन्द्व हो, वर्तूं स्व काल में॥
ऋषिराज भावन मन, उर में मेरे बसाओ॥ 6॥

(333)

आचार्य कुन्दकुन्द हैं आदर्श हमारे,
आदर्श हमारे सर्वस्व हमारे।। टेक।।
शुद्धात्मा दर्शाय दिया सहज ज्ञानमय,
आराधना सहज करूँ होकर निर्भय।

आत्मा परमात्मा में दीखे न अंतर,
ध्येय रूप ध्यान माँहि वर्ते निरन्तर।। 1।।
निस्पृह एकाकी हो निर्ग्रन्थ रहाऊँ,
निःशल्य निर्द्वन्द्व चिद्रूप भाऊँ।
कुछ भी प्रयोजन पर से नहीं रे,
मेरा तो सर्वस्व मुझमें दिखे रे।। 2।।
तृप्त हुआ कृतकृत्य हुआ रे,
आनंदमय सहज जीवन हुआ रे।
शब्दों से उपकार कैसे कहूँ मैं,
भाव सहित नित नमन करूँ मैं।। 3।।
ब्रह्म स्वरूप ही अपना दिखे रे,
ब्रह्म स्वरूप ही गुरुवर दिखे रे।
ब्रह्म स्वरूप में मग्न रहूँ रे,
ब्रह्म स्वरूप ही नमन करूँ रे।। 4।।

(334)

धन्य-धन्य कुन्दकुन्द, धन्य-धन्य आत्मा।
जय-जय कुन्दकुन्द, जय-जय आत्मा॥ टेक॥
आत्मा आत्मा, शाश्वत परमात्मा।
ज्ञान मात्र आत्मा, ज्ञान घन आत्मा॥
ज्ञान मूर्ति आत्मा, ज्ञानमय आत्मा।
परम पूज्य आत्मा, स्वयं सिद्ध आत्मा॥ 1॥
नित्य तीर्थ आत्मा, नित्य देव आत्मा।
नित्य तृप्त आत्मा, नित्य पूर्ण आत्मा॥
नीराग निर्द्वन्द्व, निःकषाय आत्मा।
ध्रुव रूप एक रूप, प्रभु रूप आत्मा॥ 2॥

स्वयं मुक्त सदा मुक्त, सहज मुक्त आत्मा।
ध्येय श्रद्धेय, आराध्य एक आत्मा॥
उपादेय एक मात्र, समयसार आत्मा।
अमृतचन्द्र आत्मा, आनंदकंद आत्मा॥ 3॥
कुन्दकुन्द आचार्य देव, नैनों मांहि झूलते।
देखते-दिखाते हैं, परमार्थ आत्मा॥
वंद्य-वंदक भाव भी, विलीन आज हो रहा।
ये ही गुरु वंदना, मैं हूँ सहज आत्मा॥ 4॥

(335)

हे कुन्दकुन्द शिवचारी, गुरुवर लाखों प्रणाम।
हे कुन्दकुन्द अविकारी, गुरुवर लाखों प्रणाम।। टेक।।
सौम्य मूर्ति निर्ग्रन्थ दिगम्बर, लेश नहीं जिनके आडम्बर।
प्रचुर स्वसंवेदनमय जीवन, लाखों प्रणाम...... ।। 1 ।।
समयसार रचनार नमामी, शुद्धातम दातार नमामी।
मूलसंघ के नायक गुरुवर, लाखों प्रणाम...... ।। 2 ।।
विषय कषायारम्भ नहीं है, ज्ञान ध्यान तप लीन सही है।
भव का अन्त सुझाते गुरुवर, लाखों प्रणाम...... ।।3 ।।
है व्यवहार का पक्ष अनादि से, नहिं स्वभाव का लक्ष अनादि से।
पक्षातिक्रान्त दिखाते प्रभुवर, लाखों प्रणाम...... ।। 4 ।।
जैनधर्म के गौरव गुरुवर, तुमसा ही मैं होऊँ सत्वर।
भावलिंगमय संत तुम्हें है, लाखों प्रणाम...... ।। 5 ।।
दृष्टि में ध्रुव शुद्ध आत्मा, ज्ञान अहो अनुभवे आत्मा।
हो रमण आतमा में ही गुरुवर, लाखों प्रणाम...... ।।6 ।।

तुमको अन्तर में ही निरखती, भक्ति हृदय में आज उछलती।
है सर्वस्व समर्पण तुमको, लाखों प्रणाम...... ।। 7 ।।

(336)

जय-जय कुन्दकुन्द आचार्य[2] ।। टेक ।।

शिवपथ दरशाते, ज्ञान जगाते कुन्दकुन्द महाराज।
भव भ्रान्ति मिटाते, तत्त्व सिखाते, नमन करूँ मैं आज ।। 1 ।।
शुद्धातम में मग्न सु रहते, शान्त दिगम्बर रूप।
कियो परम उपकार सु गुरुवर, रचकर ग्रन्थ अनूप ।। 2 ।।
धर्मामृत बरसायो जिससे, हुआ सु शीतल लोक।
ज्ञान सुधारस पीते-पीते, मिटा सहज सब शोक ।। 3 ।।
याद तुम्हारी आते मुनिवर, हृदय भक्ति उमगाय।
ज्ञानमाहिं तब ज्ञानमयी, स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाय ।। 4 ।।
मूलसंघ के नायक गुरुवर, यही भावना मेरी।
चलूँ आपके पदचिन्हों पर, मेटूँ भव-भव फेरी ।। 5 ।।

4. श्री जिनधर्म भक्ति

(337)

जिनधर्म के हम हैं अनुयायी, जिनधर्म की शान बढ़ायेंगे।
जिनवर, जिनवाणी, जिनगुरुओं की सम्यक् श्रद्धा लायेंगे ।। 1 ।।
तत्त्वों का सम्यक् निर्णय करके, भेदज्ञान अपनायेंगे।
शुद्धातम की अनुभूति कर, निश्चय सम्यक् प्रगटायेंगे ।। 2 ।।
इन्द्रिय भोगों से हो उदास, वैराग्य भावना भायेंगे।
हिंसादिक पापों को तजकर, सम्यक् चारित्र अपनायेंगे ।। 3 ।।

है तरण-तारिणी जिनवाणी, नित ही अभ्यास बढ़ायेंगे।
खुद पढ़ें-सुनें अति प्रीति से, सबको भी सहज पढ़ायेंगे।। 4।।
सब जीवों में मैत्री धारें, दुखियों पर करुणा लायेंगे।
गुण ग्रहण करें नित गुणियों से, अन्तर प्रीति बढ़ायेंगे।। 5।।
नहीं द्वेष दुर्जनों पर लावें, माध्यस्थ भावना भायेंगे।
दूर भगायें बुरी रीतियाँ, सब पाखण्ड मिटायेंगे।। 6।।
स्याद्वाद से अनेकान्तमय, वस्तु स्वरूप सिखायेंगे।
परम अहिंसा की जग भर में, धर्म ध्वजा फहरायेंगे।। 7।।
कल्याण करें हम निज-पर का, सब बैर-विरोध नशायेंगे।
रत्नत्रय का आराधन कर, हम परम साध्य को पायेंगे।। 8।।

(338)

पाऊँ हो सुखकार, धर्म जिनेश्वर पाऊँ हो।। टेक।।
धर्म जिनेश्वर रत्नत्रयमय, वीतराग अविकार।
सम्यदर्शन-ज्ञान सहित हो, साम्य भाव हितकार।। 1।।
धर्म जिनेश्वर दशलक्षणमय, अक्षय सुख दातार।
क्षमा भाव सब जीवों प्रति हो, बैर-विरोध विडार।। 2।।
सहज विनय हो, सहज सरलता, सत्य शौच हितकार।
उत्तम संयम-तप आनंदमय, त्याग आकिंचन धार।। 3।।
सहजानन्दमय परमानन्दमय, ब्रह्मचर्य शिवद्वार।
निरतिचार निर्दोष प्रवर्ते, सब धर्मों का सार।। 4।।
धर्म अहिंसा मंगलमय, वर्ते यत्नाचार।
नहिं विराधना किसी जीव की हो निर्मल आचार।। 5।।

स्वानुभूतिमय धर्म आत्मा का है सहज स्वभाव।
धर्मी आत्मा के आश्रय से, होय सहज अविकार।। 6।।
श्री सर्वज्ञ प्रणीत धर्म ही, सबको हो सुखकार।
शाश्वत जैनधर्म की, शाश्वत वर्ते जय-जयकार।। 7।।

(339)

(तर्ज : धन्य-धन्य आज घड़ी ...)

जिनधर्म हमको है प्राणों से प्यारा।
इससे ही पावेंगे शिवसुख अपारा।। टेक।।
धर्म तो वस्तु स्वभाव सही है।
धर्म तो परम अहिंसामयी है।।
उत्तम क्षमादि दशलक्षण हितकारा।। 1।।
सम्यक् दर्शन मूल धरम का।
सम्यक् ज्ञान प्रकाशक मरम का।।
चारित्र कर्म कलंक दहनहारा।। 2।।
मूल प्रणेता हैं सर्वज्ञ स्वामी।
धर्म स्वानुभवमय अभिरामी।।
मोह-क्षोभ शून्य परिणाम अविकारा।। 3।।
धर्म के नाम पर मूढ़ भ्रमावें।
स्याद्वादी निःशंक निजमाँहि पावें।।
निर्ग्रन्थ आनन्दमय धर्म है हमारा।। 4।।
निशदिन करें हम इसी की प्रभावना।
वैभव की, भोगों की, ख्याति की चाह ना।।
बोधि-समाधि का लक्ष्य सुखकारा।। 5।।

(340)

धनि जिनधर्म हमारा है,प्राणों से भी प्यारा है।। टेक।।
भव दुःखों से सहज छुड़ाकर,उत्तम सुख दातारा है।
वस्तु स्वभाव धर्म आनन्दमय,नहीं कुल पक्ष विचारा है।। 1।।
सम्यग्दर्शन मूल धर्म का,भेद-विज्ञान आधारा है।
है साक्षात् धरम चारित्र सु,वीतराग अविकारा है।। 2।।
परम अहिंसा धर्म जानो,निज-पर को हितकारा है।
है सर्वज्ञ प्रणीत अनादि-अनन्त सु मंगलकारा है ।। 3।।
दशलक्षणमय भाव आपका,पर भावों से न्यारा है।
धर्मी शुद्धातम के आश्रय से, प्रगटे सुखकारा है।। 4।।
अशरण जग में यही शरण है,स्वारथ का संसारा है।
धारो-धारो उत्तम अवसर,पाओ सुख अविकारा है।। 5।।

(341)

सत्य सनातन जैन धरम,
सबका प्यारा आत्मधर्म।
परम अहिंसा रूप धरम,
कुन्दकुन्द का, वीर प्रभु का।।
ज्ञानानन्दमय आत्म-धरम,
जयवन्तो नित जैन धरम।। टेक।।
नहीं किसी ने इसे बनाया,
अरहंतों ने मात्र बताया।
जिन-जिन ने समझा सुख पाया,
दुःखदाई भवफन्द मिटाया।।
प्राणीमात्र का जैन धरम।। 1।।

परम पारिणामिक परमातम,
नित्य निरंजन चिन्मय आतम।
निरावरण निर्दोष सदा,
जो पर रूप न होय कदा।।
ज्ञायक प्रभु दरशाय धरम।। 2।।
सम्यग्दर्शन मंगलकारी,
सम्यक् ज्ञान सर्व दुःखहारी।
सम्यक् चारित्र नित अविकारी,
धर्मी गुण अनन्त का धारी।।
आत्माश्रय से होय धरम।। 3।।
'आत्मन्' अवसर चूक न जाना,
भेदज्ञान की ज्योति जगाना।
शुद्धातम को ध्येय बनाना,
निर्मल ध्यान दशा प्रगटाना।।
विज्ञजनों का यही धरम।। 4।।

(342)

जय-जय बोलो, जय-जय बोलो,
श्री जैन धर्म की जय बोलो।। टेक।।
सबके मन में आनन्द छाया,
धर्म महोत्सव का दिन आया।
हर्ष-हर्ष जिनवर गुण गावें,
सम्यक् बोधि-समाधि पावें।। 1।।

पंच-परमेष्ठी पूज्य हमारे,
ज्ञानानन्द दशा विस्तारे।
भाव सहित हम शीस नवावें,
प्रभु के गुण निज में प्रगटावें।। 2।।
जिनवाणी है मात हमारी,
तत्त्वज्ञान प्रगटावन हारी।
तत्त्वज्ञान से मोह नशावे,
साधक होकर शिवपद पावें।। 3।।
सम्यक् दर्शन प्रगटे पावन,
ज्ञान विरागमयी हो जीवन।
राग-द्वेष मय बन्ध मिटावें,
अविनाशी निज प्रभुता पावें।। 4।।
समवशरण सम श्री जिनमंदिर,
जिन सम जिन प्रतिमा है अंदर।
दर्शन कर सुख शान्ति पावें,
अपना जीवन सफल बनावें।। 5।।
अन्य न कोई सुख का कारण,
तन-मन-धन जीवन हो अर्पण।
तत्त्व भावना चित में भावें,
नित्य नये मंगल सब पावें।। 6।।

(343)

जिनधर्म हमको लागे प्यारा।। टेक।।

दशलक्षणमय, रत्नत्रयमय, परम अहिंसामय सुखकारा।
सर्व दुःखों से सहज छुड़ाकर, देवे शिव सुख अपरम्पारा।। 1।।
धर्म सहज स्वभाव अहो आतम का, स्वाश्रय से प्रगटे अविकारा।
आधि-व्याधि-उपाधि न जामें, परम समाधि स्वरूप निहारा।। 2।।
आदि न जाको, अन्त न जाको, श्री सर्वज्ञ प्रणीत अविकारा।
मंगल उत्तम शरण यही है, वीतरागता तिहुँ जग सारा।। 3।।
महाभाग्य जिनधर्म सु पाया, अनुपम रत्न सुगुण भंडारा।
स्वानुभूति करि धारो भाई, याही से हो भव से पारा।। 4।।

(344)

(तर्ज : धनि मुनिराज हमारे हैं ...)

धनि जिनधर्म हमारा है।। टेक।।

वस्तु स्वभाव धर्म आनन्दमय,
नहीं कुल पक्ष सहारा है।
सम्यग्दर्शन मूल धर्म का,
भेद-विज्ञान आधारा है।। 1।।
है साक्षात् धरम चारित्र सु,
वीतराग अविकारा है।
परम अहिंसा धर्म ही जानो,
निज पद को हितकारा है।।2।।
है सर्वज्ञ प्रणीत अनादि,
अनन्त सुमंगलकारा है।

भव दुखों से सहज छुड़ाकर,
उत्तम सुख दातारा है।। 3।।
दशलक्षणमय भाव आपका,
परभावों से न्यारा है।
धर्मी शुद्धातम के आश्रय से,
प्रगटे सुखकारा है।। 4।।
अशरण जग में यही शरण है,
स्वारथ का संसारा है।
धारो-धारो उत्तम अवसर,
पाओ सुख अविकारा है।। 5।।

(345)

समझो-समझो रे धरम को सार, सुखी तुम होवोगे।। टेक।।
धर्म ही मंगल, धर्म ही उत्तम, धर्म शरण सुखकार।
धर्म कर्म-बंधन को गाले, ले जाए मुक्ति मँझार।। 1।।
धर्म तो वस्तु स्वभाव है, पर्यय तीन प्रकार।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान अरु चारित्र सुख करतार।। 2।।
सबसे पहले तत्त्वज्ञान से, निज की करो संभार।
निज के आश्रय से ही कर दो, रागादिक परिहार।। 3।।
वीतराग सर्वज्ञ देव अरु, जिनवाणी दुखहार।
ज्ञान-ध्यान-तप लीन जो निर्ग्रन्थ गुरु आधार।। 4।।

(346)

(तर्ज : भोर भयो ...)

धन्य-धन्य जिनशासन पायो,
निज शुद्धातम ध्याऊँ रे।
निज शुद्धातम ध्याऊँ रे,
अजर अमर पद पाऊँ रे।। टेक।।
निज को भूल बहुत दुःख पाये,
अब इक क्षण न भुलाऊँ रे।
भेदज्ञान निज में ही प्रगट्यो,
निज में ही रम जाऊँ रे।। 1।।
पाने योग्य स्वयं में पाया,
नहीं भव में भरमाऊँ रे।
रहूँ निराकुल सहज निस्पृही,
निज में तृप्त रहाऊँ रे।। 2।।
स्वयं सिद्ध निज प्रभुता पाई,
जाननहार रहाऊँ रे।
ध्येय रूप निज ध्याते-ध्याते,
सर्व विभाव विनशाऊँ रे।। 3।।
स्वाभाविक अर्हत् पद पाऊँ
आवागमन मिटाऊँ रे।
ध्रुव अनुपम अविकारी शिवपद,
मंगलमय प्रगटाऊँ रे।। 4।।

(347)

जय जिनवाणी, जय शुद्धातम,
जय शुद्धातम, जय जिनशासन।। टेक।।
स्वानुभूतिमय जय जिनशासन।
नित मंगलमय श्री जिनशासन।।
अहो अलौकिक श्री जिनशासन।
सहज रूप पावन जिनशासन।। 1।।
संकटत्राता श्री जिनशासन।
आनंददाता श्री जिनशासन।।
रत्नत्रयमय श्री जिनशासन।
मुक्ति प्रदाता श्री जिनशासन।। 2।।
अरहंतों का शाश्वत शासन।
निर्ग्रन्थों का ये ही शासन।।
प्राणों से भी प्यारा शासन।
महाभाग्य पाया जिनशासन।। 3।।
निर्मल भेदविज्ञान करेंगे।
हो निजमय निज रूप लखेंगे।।
सुखसागर अंतर में पाया।
मग्न रहें पाया जिनशासन।। 4।।
अनन्य शरण अपना शुद्धातम।
सहज मुक्त शाश्वत परमातम।।
काल अनंत सुतृप्त रहेंगे।
जयवन्तो जग में जिनशासन।। 5।।

(348)

गाओ-गाओ-गाओ जिनशासन की महिमा।
लाओ-लाओ-लाओ निज आतम की महिमा।। टेक।।
आतम की महिमा पिछाने जो प्राणी।
निश्चय ही होवे वह सम्यक्ज्ञानी।।
भव दुःख नशावे, वह शिव सुख पावे।
आवागमन का वह फेरा मिटावे।। 1।।
अंजन से पापी तिरे जैनशासन से।
तिर्यञ्च सुधरे अहो जैनशासन से।।
नरकों में भी साता हो जैनशासन से।
मुक्ति का मारग खुले जैनशासन से।। 2।।
वीतराग सर्वज्ञ देव कहे हैं।
ज्ञानी सु-निर्ग्रन्थ गुरुवर कहे हैं।।
स्याद्वादमय जिनवाणी कही है।
परम अहिंसा धर्म सही है।। 3।।
छह द्रव्यमय विश्व अनादि अनंत।
कर्ता नहीं मात्र ज्ञाता भगवन्त।।
जीवादि सात तत्त्व निरूपित है जिसमें।
उपादेय शुद्धात्मा एक जग में।। 4।।
आत्मानुभूति ही है जिनशासन।
पुरुषार्थ से भव्य प्रगटाओ पावन।।
अनुभव करो ज्ञान में ज्ञान ही है।

ज्ञानमयी स्वयं भगवान ही है।। 5।।
भक्ति से भगवंत को शीश नाओ।
प्रभुता स्वयं की स्वयं में ही पाओ।।
तृप्त रहो काल अनन्त स्वयं में।
मुक्ति भी पाओ सहज ही स्वयं में।। 6।।

(349)

(तर्ज : कैसे करूँ गुणगान ...)

श्री जिनधर्म महान, जग में श्री जिनधर्म महान।। टेक।।
श्री सर्वज्ञ प्रणेता जिसके, ज्ञानी गुरु व्याख्याता जिसके।
धारक सम्यक्वान।। जग में... ।।1।।
वीतराग से देव जहाँ हैं, तत्त्व प्ररूपक शास्त्र जहाँ हैं।
गुरु निर्ग्रन्थ सु-जान।। जग में...।। 2।।
तत्त्वों का निर्णय हो सुन्दर, भेदज्ञान हो सूक्ष्म निरन्तर।
स्वानुभूति सुखखान।। जग में...।। 3।।
परम धर्म है स्वानुभूतिमय, सम्यग्दर्शन ज्ञान चरितमय।
दशलक्षण अम्लान।। जग में...।। 4।।
परम अहिंसा धर्म यही है, भवि जीवों को शरण यही है।
अविनाशी अम्लान।। जग में...।। 5।।
धर्म नाम पर नहीं भरमायें, धर्मी शुद्धातम को ध्यावें।
हो निज-पर कल्याण।। जग में...।। 6।।

(350)

(तर्ज : घड़ी जिनराज...)

अहो जिनधर्म मंगलमय, अहो जिनधर्म लोकोत्तम।
धर्म ही जग में इक शरणा, हृदय में धार लेवें हम।। टेक।।
धर्म बिन दुःख सहे भव में, धर्म ही सर्व सुख दाता।
निरापद नित रहे वह ही, धर्म में चित्त जो लाता।।
धर्म बिन कोई नहीं अपना।। हृदय में.।। 1।।
धर्म तो सब कहें जग में, धर्म विरला ही पहिचाने।
करे जो स्वानुभव सुखमय, धर्म का मर्म वह जाने।।
धर्म तो भाव समतामय।।हृदय में.।। 2।।
कहा सर्वज्ञ ने वस्तु स्वभाव ही धर्म आनंदमय।
मूल सम्यक्दर्श जिसका, धर्म है ज्ञान चारित्रमय।।
धर्म के दश कहे लक्षण।। हृदय में.।। 3।।
जहाँ हिंसा का पोषण हो, धर्म का अंश नहिं मानो।
वीतरागी अहिंसा ही धर्म, परमार्थ पहिचानो।।
सहज धर्मी के आश्रय से।। हृदय में.।। 4।।
यह अवसर चूक मत जाना, तत्त्व निर्णय करो भाई।
महा सौभाग्य से ऐसी, निधि हमने यहाँ पाई।।
छोड़कर सर्व पक्षों को।। हृदय में.।। 5।।

(351)

(तर्ज : जिनवाणी अमृत रसाल...)

जिनशासन अम्लान, भविजन प्रगटाओ।
प्रगटाओ हाँ प्रगटाओ।। टेक।।

साँचे देव-शास्त्र-गुरु जानो, तत्त्व प्रयोजनभूत पिछानो।
स्व-पर भेदविज्ञान, अन्तर में भाओ।। जिनशासन.।। 1।।
हेय रूप समझो परभाव, उपादेय निज शुद्ध स्वभाव।
आतम है भगवान, अनुभव में लाओ।। जिनशासन.।। 2।।
स्वानुभूति ही जिनशासन है, सन्तों का यह ही जीवन है।
श्री जिनधर्म महान, समझो समझाओ।। जिनशासन.।। 3।।
सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यग्चारित्र रत्न महान।
आतम है रत्नों की खान, निज में रम जाओ।। जिनशासन.।।4।।
जिनशासन स्वाश्रय से प्रगटे, तब ही भव की आपद विघटे।
आया है अवसर महान, शाश्वत पद ध्याओ।। जिनशासन.।।5।।
अक्षय सुख का मार्ग यही है, तीन भुवन में सार यही है।
करो स्व-पर कल्याण, निज में रम जाओ।। जिनशासन.।।6।।
नहीं प्रमादवश काल गँवाना, पीछे से फिर हो पछताना।
गाओ मंगल गान, शिव मारग पाओ।। जिनशासन.।। 7।।

(352)

जयवन्तो नित जिनशासन।। टेक।।

जयवन्तो जग में जिनराज, जयवन्तो निर्ग्रन्थ मुनिराज।
जयवन्तो जग में जिनवाणी, जयवन्तो नित जिनशासन।। 1।।
आत्मा ही भगवान बताता, आराधन का मार्ग सुझाता।
चहुँगति दुःख से सहज छुड़ाता, जयवन्तो पावन जिनशासन।।2।।
मैत्री भाव का पाठ पढ़ाता, परम अहिंसा धर्म सिखाता।
मोह महातम दूर भगाता, अनेकांतमय जिनशासन।। 3।।

साँचा वस्तु-स्वरूप दिखाता, स्व-पर भेदविज्ञान जगाता।
दुर्विकल्प सब सहज नशाता, स्वानुभूतिमय जिनशासन।। 4।।
शुद्धातममय श्री जिनशासन, अध्यातममय श्री जिनशासन।
वीतरागतामय जिनशासन, रत्नत्रयमय जिनशासन।। 5।।
पुण्योदय पाया जिनशासन, अहो! अलौकिक श्री जिनशासन।
हो पुरुषार्थ स्वयं में पावन, नित्य प्रभावैं जिनशासन।। 6।।

(353)

धर्म भावना दशक

(तर्ज-वेश दिगम्बर...)

धर्म दिगम्बर जजो भव्य मंगलकारी।
धर्म दिगम्बर धरो भव्य आनंदकारी।। टेक।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान-चरणमय, धर्म सर्व सुखदाता है।
परम अहिंसामयी धर्म ही, सर्व क्लेश विनशाता है।। 1।।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, जिसके मूल प्रणेता हैं।
धन्य-धन्य निर्ग्रन्थ साधुवर, साधक अरु उपदेष्टा हैं।। 2।।
दशलक्षण हैं अहो धर्म के, इनसे धर्मी पहिचानो।
एकदेश अरु सर्वदेश पहिचान, भव्य उद्यम ठानो।। 3।।
धर्मी बिना न धर्म कहीं हो, समझो अपने धर्मी को।
प्राणों से भी प्यारा समझो, बाहर में साधर्मी को।। 4।।
साधर्मी की संगति में भी, सदा असंग प्रभु ध्याओ।
स्वानुभूति से धर्म प्रगट कर, तत्त्वभावना नित भाओ।। 5।।
हिंसादिक पापों को त्यागो, परलक्षी सब भाव तजो।
ले जिनदीक्षा स्वाश्रय से ही, निश्चय आतम धर्म सजो।। 6।।

नहीं आडम्बर अरे धर्म में, साम्यभाव ही धर्म अहा।
वेश दिगम्बर भाव निरम्बर, स्वानुभूतिमय धर्म अहा।। 7।।
श्रमणोपासक ही श्रावक है, सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित।
यत्नाचार युक्त क्रिया हो, जिसकी सहज विवेक सहित।। 8।।
सब प्रकार अवसर है आया, अब तुम चूक नहीं जाना।
पक्षपात तज निर्णय करना, मुक्तिमार्ग में लग जाना।। 9।।
बाहर तो क्लेशों का सागर, अन्तर ज्ञानानंद लसे।
ज्ञान ज्ञान में होय प्रतिष्ठित, सिद्धालय में सहज बसे।। 10।।

(354)

(तर्ज : झंडा ऊँचा रहे ...)

मंगलमय आतम अविकारा, धन्य धन्य जिनशासन प्यारा।। टेक।।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश हुए, हो रहे, होंय हमेश।
श्री निर्ग्रन्थ संत अम्लान, सम्यक्वंत परम गुणखान।।
इसी धर्म में हो सुखकारा।। 1।।
ध्येय रूप निर्मल निष्काम, शुद्ध बुद्ध निज आतमराम।
अनेकांतमय ज्ञान बताया, परम अहिंसा धर्म सिखाया।।
गूँजे तिहुँ जग में जयकारा।। 2।।
मैत्री भाव सर्व जीवों में, सच्ची करुणा दुःखीजनों में।
गुणीजनों में प्रेम प्रशस्त, विपरीतों में हो माध्यस्थ।।
द्वेष भाव को दूर विडारा।। 3।।
दुःख का कारण निज अज्ञान, विषय-कषाय महादुःख खान।
इनको त्याग निजातम ध्यावें, सो अक्षय परमानंद पावें।।
शिवपथ रत्नत्रय सुखकारा।। 4।।

(355)

शिव सुखदाता जैनधर्म।
शिव सुखदाता जैनधर्म, जैनधर्म हाँ आत्मधर्म।। टेक।।
नहीं किसी ने इसे बनाया, अरहंतों ने मात्र बताया।
जिन-जिन ने समझा सुख पाया, दुखदायी भव फंद मिटाया।।
प्राणी मात्र का जैनधर्म, शिव सुखदाता जैनधर्म।। 1।।
परम अहिंसा रूप धर्म, सत्य सनातन जैन धर्म।
कुन्दकुन्द का यही धर्म, महावीर का यही धर्म।।
समन्तभद्र का जैनधर्म, शिव सुखदाता जैनधर्म।। 2।।

(356)

अनेकांतमय वस्तु स्वरूप, स्याद्वादमय श्री जिनवाणी।
हो एकाग्र नित्य अभ्यासें, वे ही होवें सम्यक् ज्ञानी ॥ टेक॥
परम पुरुष आदर्श हैं जिनके, तत्त्वों का निर्णय है जिनके।
भेद-विज्ञान हृदय में धरते, शुद्धातम का अनुभव करते॥
सफल करें निज जिन्दगानी ॥ 1॥
वीतराग प्रभुवर के भक्त, गुरु निर्ग्रन्थों के ही शिष्य।
करें निरन्तर ज्ञानाभ्यास, करते कभी न पर की आस॥
धर्म अहिंसा के श्रद्धानी॥ 2॥
नित वैराग्य भावना भाते, नहीं विकल्पों में अटकाते।
मुक्तिमार्ग में बढ़ते जाते, शंका चिंता भय नहीं लाते॥
धन्य-धन्य वे भेद-विज्ञानी॥ 3॥

उनका हो जीवन निर्दोष, देखें कभी न पर का दोष।
निज दोषों की निंदा करते, निज निर्दोष स्वभाव निरखते॥
वे ही होते आतम ध्यानी ॥ 4॥
मन में कोई नहीं विकार, सदा करें निज-पर उपकार।
सहज ही रहते जाननहार, भाव नमन उनको अविकार॥
कभी न करते हैं मनमानी ॥ 5॥

(357)

(तर्ज : रोम-रोम पुलकित हो जाए...)

पाया मंगलमय जिनधर्म, समझो सत्य तत्त्व का मर्म।
दूर होय सब मिथ्या भर्म, नाशें दुखदायी दुष्कर्म ॥ टेक॥
ज्ञाता रूप सु जीव है, रागादि भिन्न जान।
स्वयं सिद्ध परमात्मा, गुण अनंत की खान॥ 1॥
देहादिक सु अजीव हैं, सर्व अचेतन जान।
सुख-दुःख वेदन नहीं करे, जाना विधि पहिचान॥ 2।
मोहादिक आश्रव तजो, अपनो रूप निहार।
शाश्वत ज्ञानानंदमय, बंध रूप संसार॥ 3॥
मिथ्या क्रूर कठोर अरु, कुटिल लोभमय भाव।
पाप रूप जानो दुःखद, तज विषयों की चाल॥ 4॥
दया भक्ति व्रत शील तप, सम्यक् तत्त्व विचार।
रत्नत्रय से पूर्व-सह-उत्तर चर व्यवहार ॥ 5॥
पुण्य-पाप जानो सभी, स्याद्वाद सुख रूप।
अनेकांतमय आत्मा, उपादेय शिव भूप॥ 6॥

शुद्धातम का अनुभवन, संवर है सुख रूप।
शुद्ध भावना निर्जरा, फल है मुक्ति स्वरूप ॥ 7॥
धर सम्यक् श्रद्धान उर, करो सदा अभ्यास।
हो निर्वृत्त पर भाव से, आत्म भाव परकाश॥ 8॥

(358)

जयवंतो नित जैनधर्म, यथायोग्य व्यवहार धर्म।
स्वयं स्वयं का अनुभव होवे, नाशें मिथ्या मोह कर्म ॥ टेक॥
भासें पर पदार्थ सब भिन्न, बाहर में नहीं होऊँ खिन्न।
अंतर में हो सहज अभिन्न, जानूँ जिन तत्त्वों का मर्म॥ 1॥
सर्व कषायें हैं दुःखरूप, साम्यभाव ही है सुखरूप।
अहो! निराकुल सुख पहिचान, मेटूँ चिर का मिथ्या भर्म॥ 2॥
नहीं पर में उपयोग भ्रमाऊँ, हो निर्द्वन्द्व निजातम ध्याऊँ।
अपने में ही तृप्त रहाऊँ, पाऊँ प्रभु सम शाश्वत शर्म॥ 3॥

(359)

जिनवर के गुण गाओ-गाओ रे, प्रभुवर के गुण गाओ-गाओ रे।
गाओ-गाओ, गाओ-गाओ, गाओ-गाओ रे॥
आज खुशी का दिन आया है, गाओ-गाओ रे॥ टेक॥
मिला भाग्य से नर भव, मिल्यो श्रावक कुल जिनधर्म।
जिनवाणी से समझ लो, सहज तत्त्व का मर्म॥ 1॥
नित्य निरंजन ज्ञानमय, निश्चय आतम राम।
सकल पाप तज आप भज, पाओ रे शिवधाम ॥ 2॥
वीतराग सर्वज्ञ जिन, गुण अनंत विलसाय।
प्रभुवर की प्रभुता अमित, मोपे कही न जाय॥ 3॥

ज्ञानमयी प्रभुता अहो! प्रत्यक्ष ज्ञान में देख।
मोह-महातम मिट गयो, आनंद भयो विशेष॥ 4॥
देव-शास्त्र-गुरुवर-धर्म, नित वंदों धरि प्रीति।
करो स्वानुभव आत्मन्! धारो तत्त्व प्रतीति॥ 5॥

(360)

आज का दिवस है मंगलकारी, मंगलकारी-आनंदकारी ॥ टेक॥
वीतराग प्रभु मंगलकारी, जिनवाणी है मंगलकारी।
निर्ग्रन्थ गुरुवर मंगलकारी, जिनशासन है मंगलकारी॥ 1॥
सम्यग्दर्शन मंगलकारी, सम्यग्ज्ञान है मंगलकारी।
सम्यक् चारित्र मंगलकारी, धर्म अहिंसा मंगलकारी॥ 2॥
जिनमूरति मंगलकारी, जिनमंदिर है मंगलकारी।
शुद्धातम है मंगलकारी, आराधन है मंगलकारी॥ 3॥
सिद्धचक्र का पाठ रचाया, सबके मन में आनंद छाया।
हरषि-हरषि प्रभु के गुण गावें, प्रभु भक्ति हो मंगलकारी ॥4॥
सुखी रहें सब जीव जगत में, धर्म प्रेम वृद्धिगंत हो।
नित-नित धर्म महोत्सव होवे, धर्म प्रभावना हो अविकारी॥5॥

(361)

आज का दिवस है मंगलकारी, आज का दिवस है आनंदकारी॥ टेक॥
महाभाग्य से हमने पाया, दुर्लभ ब्रह्मचर्य सुखकारी।
हुए निःशल्य निराकुल निश्चल, दूर हुई हैं दुविधा सारी॥ 1॥
जिनवाणी माँ के प्रसाद से, मिटें सहज ही भाव विकारी।
तत्त्वाभ्यास सदा ही वर्ते, परिणति होवे नित अविकारी॥ 2॥
अनाचार लगने नहिं पावें, होवें निश्चय शिवमगचारी।

साक्षात् जिन मारग पाऊँ, निर्ग्रन्थ दशा परम हितकारी ॥ 3॥
कर्म कलंक समूल नशाऊँ, होऊँ ध्रुव चैतन्य विहारी।
होवे जीवन सफल हमारा, प्रभु चरणों में धोक हमारी ॥ 4॥

(362)

बाह्य जग के दृश्य न देखूँ, जिन दर्शन कर तृप्त रहूँ॥ टेक॥
नहीं प्रशंसा गीत सुनूँ मैं, जिनवाणी सुन तृप्त रहूँ ।
मौन रहूँ कुछ अन्य न बोलूँ, भक्ति करते तृप्त रहूँ॥ 1॥
सत्कार्यों की करूँ प्रशंसा, सत् चर्चा में तृप्त रहूँ।
वैभव भोग न चाहूँ कुछ भी, निज वैभव में तृप्त रहूँ॥ 2॥
स्पर्शन पर का नहीं चाहूँ, गुरु चरणों में तृप्त रहूँ।
निरतिचार हो शील सदा ही, शुद्धातम में तृप्त रहूँ॥ 3॥
रहूँ अकर्त्ता रहूँ अभोक्ता, ज्ञाता रहते तृप्त रहूँ।
अन्य न कोई चाह जिनेश्वर, निज प्रभुता में तृप्त रहूँ॥ 4॥

(363)

मंगल विहार, मंगल विहार, श्री जिनवर का मंगल विहार।
आनंद अपार, आनंद अपार, सबके हृदय में आनंद अपार ॥ टेक॥
जिनवर का दर्शन सब ही करेंगे, जन्म-जन्म के पाप हरेंगे।
घर-घर में मंगलाचार ॥ 1॥.
जिनवर की भक्ति सब ही करेंगे, भाव विशुद्ध सहज ही रहेंगे।
समझें समय का सार ॥ 2॥
जिनवर की वाणी सब ही सुनेंगे,तत्त्वों का सम्यक् निर्णय करेंगे।
रत्नत्रय का हो प्रसार ॥ 3॥

जिनवर का संदेश सब जग में व्यापे, सम्यग्ज्ञान कला परकाशे।
नाशेंगे पापाचार ॥ 4 ॥
सभी आत्मा सिद्ध समान, द्रव्यदृष्टि से हैं भगवान।
गूँजेगी जय-जयकार ॥ 5 ॥
जिनराज मुनिराज जयवंत वर्तो, जिनवाणी जिनधर्म जयवंत वर्तो।
वंदन अगणितबार ॥ 6 ॥

(364)

गावहु आज बधाई, बधाई, बधाई, बधाई।
आनन्दित हो सब जन मिल कै, गावहु आज बधाई ॥ टेक ॥
अविहारी प्रभु का विहार, हो सबको ही सुखदायी।
अपने द्वार प्रभु पधारे, परम ऋद्धि पायी ॥ 1 ॥
प्रभु दर्शन तैं पातक नासें, ज्ञान कला पायी।
अपनी प्रभुता अपने में ही, प्रत्यक्ष दरशायी ॥ 2 ॥
तीन लोक की बाह्य विभूति, मोकों तुच्छ दिखायी।
अक्षय निज चैतन्य विभूति, पाई सुखदायी ॥ 3 ॥
भाव-वंदना द्रव्य-वंदना, प्रभु चरणन माँही।
धन्य दशा प्रगटे कब प्रभु सी, परमानन्ददायी ॥ 4 ॥

(365)

महाभाग्य जिनशासन पाया, ज्ञानाभ्यास करेंगे हम।
अपना मन नहीं भटकायेंगे, जिनवर पंथ चलेंगे हम ॥ टेक ॥
तत्त्वों का सम्यक निर्णय कर, भेद-विज्ञान करेंगे हम।
तत्त्व विचार करें अंतर में, आतम अनुभव करेंगे हम ॥ 1 ॥

भायेंगे हम तत्त्व भावना, समताभाव सजेंगे हम।
विषय-कषाय परिग्रह तजकर, निर्ग्रंथ रूप धरेंगे हम ॥2॥
घोर परीषह उपसर्गों में, ध्यान से नहीं चिगेंगे हम।
निज स्वभाव में लीन रहेंगे, अचल सिद्धपद लहेंगे हम ॥3॥

5. श्री सिद्धचक्र विधान भक्ति

(366)

(तर्ज : म्हारा परम दिगम्बर ...)

सिद्धचक्र का पाठ रचाया, सब मिल पूजन कर लो,
हाँ सब मिल पूजन कर लो।
पुण्योदय से अवसर आया, भक्तिभाव उर धर लो,
हाँ भक्ति भाव उर धर लो।।
ज्ञायक रूप अनुपम सुखमय, प्रत्यक्ष अनुभव कर लो,
अमृत का सागर लहरावे, भवि स्नान सु कर लो।। टेक।।
श्री जिनधर्म मिला अहो! महाभाग्य से भव्य,
निज स्वरूप को समझ कर सफल करें पर्याय।
सहज समागम मिला है उत्तम, तत्त्वों का निर्णय कर लो।। 1।।
नित्य निरंजन ज्ञानमय, निज शुद्धात्म स्वरूप,
द्रव्यदृष्टि कर अनुभवो, चिदानन्द चिद्रूप।
शुद्धातम के आश्रय से ही, मुक्ति नसैनी चढ़ लो।। 2।।
सिद्धदशा निज साध्य है, स्वयं सिद्ध है ध्येय,
स्वयं सिद्ध का ध्यान कर, पाओ सुख अमेय।
तोरि सकल जग द्वन्द्व-फन्द, अब शिवमारग चित धर लो।।3।।
भक्तिभाव के साथ में, वर्ते भेद-विज्ञान,

उपादेय बस एक ही, निज ज्ञायक भगवान।
सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान सहित, सम्यक् चारित्र आचरलो।। 4।।

(367)

भरे हुए हैं सिद्धों के गुण, सिद्धचक्र के पाठ में।
धोलो आतम चीर भव्य, जिनवाणी गंगा धार में।। टेक।।
सिद्धचक्र सा पाठ न दूजा, करो भव्यजन इसकी पूजा।
शुद्धभाव से हृदय भक्ति धर, निर्विकल्प दिन आठ में।। 1।।
जिनने सकल परिग्रह छोड़ा, विषय-वासना से मुख मोड़ा।
जला शुक्ल ध्यानाग्नि लगा दी, अष्टकर्म रिपु काठ में।। 2।।

(368)

(तर्ज : आनन्द अवसर आज ...)

रचा सिद्धचक्र मण्डल विधान, प्रभु की पूजा करें,
मंगल अवसर महान, प्रभु की पूजा करें।
पूजा करें, हाँ भक्ति करें।। टेक।।
प्रभुवर हैं आदर्श हमारे, मुक्तिमार्ग दरशावन हारे।
प्रगटावें भेद-विज्ञान।। 1।।
प्रभुवर अनन्त चतुष्टय रूप, परमातम जग माँहि अनूप।
साँचा स्वरूप पहिचान।। 2।।
नाहिं रागी, नाहिं कर्त्ता, सहज भाव से दृष्टा-ज्ञाता।
ज्ञाता स्वरूप निज जान।। 3।।
तृप्त रहें प्रभु सम निज माँहि, पर भावों की वांछा नाहिं।
ध्यावें शुद्धातम महान।। 4।।
यही भावना हो निर्ग्रन्थ,एकाकी विचरूँ शिवपन्थ।
होवे सहज निर्वाण।। 5।।

(369)

(तर्ज : केशरिया चावल ......)

अहो! परमामृत बरसावे, सहज ज्ञानामृत बरसावे।
श्री सिद्धचक्र पूजन विधान में, अमृत बरसावे।। टेक।।

(दोहा)

काव्य अरे छोटे दिखें, भाव भरे गम्भीर।
जो समझे अभिप्राय को, सो पावे भव तीर।। 1।।
साक्षी में जिनराज के, अपनी ओर निहार।
कर अनुभव 'मैं हूँ प्रभु' उपजे सुख अपार।। 2।।
अनुभूति आराधना, ज्ञायक प्रभु आराध्य।
पूर्ण होय आराधना, प्रगट होय शिव साध्य।। 3।।
अरे! भटकता व्यर्थ ही, निज में ही विश्राम।
जाननहार शुद्धात्मा, है परमानंद धाम।। 4।।

(370)

(तर्ज : पंचकल्याणक आ गया, देखो-देखो...)

सिद्धचक्र मंडल विधान हो रहा।
सब ही के मन में आनंद हो रहा।। टेक।।
ज्ञान शरीरी अशरीरी प्रभु, सर्व कर्म मल विरहित हैं विभु।
सहज स्वरूप देखो, कैसा सोह रहा।। 1।।
केवल देखन जाननहार, वीतराग भी तारणहार।
अनुपम चेतन रूप सोह रहा।। 2।।
सिद्ध प्रभु की ओर निहारा, अपने अन्तर माँहि चितारा।
स्वयंसिद्ध प्रभुरूप सोह रहा।। 3।।

अपना प्रभु अनुभव में आवे, बाह्य जगत में कुछ न सुहावे।
स्वयं स्वयं में तृप्त हो रहा।। 4।।
दुर्विकल्प सब दूर भगाओ, यही भाव निज में रम जाओ।
सहज स्वयं कृतकृत्य हो रहा।। 5।।
द्रव्य नमन हो भाव नमन हो, सहज नमन अद्वैत नमन हो।
पूज्य पूजक भाव विलीन हो रहा।। 6।।

(371)

सिद्ध स्वरूप सु भावे,
और कछु न सुहावे।
स्वयं स्वयं में पूर्ण ज्ञानमय,
तृप्त सदैव रहावें।।टेक।।
कर्मादिक निःशेष हुए हैं,
नहीं रागादि दिखावें।
अहो ! अतीन्द्रिय अरु अविनाशी,
आनन्दरूप विलसावें।। 1।।
आवागमन विमुक्त हुये प्रभु,
लोक शिखर तिष्ठावें।
तीर्थंकर भी जो पद ध्यावें,
हम हू सो पद पावें।। 2।।
दुर्विकल्प सब नाशे स्वामी,
जाननहार रहावें।
धन्य भाग्य श्री सिद्धचक्र-
मंडल विधान सु रचावें।।3।।
सिद्धचक्र की मंगल भक्ति,
परिणति में विलसावें।

द्रव्यदृष्टि धरि भक्ति भाव से,
प्रभुवर शीश नवावें।। 4।।

(372)

(तर्ज : देखो जिनस्वरूप सुखकार.....)

देखो सिद्धचक्र का पाठ, जगत में मंगलकारी है।
मंगलकारी है, जगत में आनंदकारी है।। टेक।।
स्वयंसिद्ध परमात्मा, चित्स्वरूप अविकार।
धन्य भाग्य पूजन रची, आनंद अपरम्पार।। 1।।
नित्य निरंजन ध्येय प्रभु, समयसार अम्लान।
ध्येय रूप के ध्यान से, सहज होय निर्वाण।। 2।।
भेदज्ञान वर्ते प्रभु, सहज रूप वैराग।
निज स्वरूप की प्राप्ति हो, पर भावों का त्याग।। 3।।
धनि धनि ज्ञानानंदमय, शुद्धातम भगवान।
समय समय ध्याऊँ अहो, ध्रुव स्वरूप सुख खान।। 4।।

(373)

सिद्ध प्रभु की भक्ति करते, हृदय हर्षित होता है।
आनंद उल्लसित होता है।। टेक।।
सिद्धों के गुण भरे हैं देखो,
सिद्धचक्र के पाठ में।
अपनी अपनी परिणति धोलो,
जिनवाणी के घाट में।।
जिनवाणी अभ्यास किये से,
भेदविज्ञान सु-होता है।। 1।।

हैं प्रतिबिम्ब समान सिद्धप्रभु,
निज स्वरूप दर्शाने में।
निमित्तभूत हैं पुरुषार्थी को,
निज प्रभुता प्रगटाने में।।
सिद्ध समान स्वरूप का ध्याता,
स्वयं सिद्ध सम होता है।।2।।
तुम रागों में अटक न जाना,
स्वयंसिद्ध प्रभु पहिचानो।
जैसे गुण सिद्धों के गाओ,
वैसे ही अपने जानो।।
जब निज की महिमा आवे,
तब सम्यक्दर्शन होता है।।3।।
सम्यग्दर्शन होने पर ही,
साधक दशा प्रगट होती।
क्षण-क्षण बढ़ती वीतरागता,
सहज ही साधु दशा होती।।
शुक्ल ध्यान में कर्म नशावें,
अविनाशी शिव होता है।।4।।

(374)

(तर्ज : आनंद आयो रे...)

आनंद छाया रे, सिद्धचक्र के पाठ में।।टेक।।
रत्नत्रय के रत्न लुट रहे, अनुभव के प्रसाद।

जन्म-जन्म का दारिद्र नाशे, नाशे सर्व विषाद।।
मन हर्षाया रे ....।। 1।।
सिद्धों की महिमा को देखे, अपनी महिमा आय।
संशय मोह विपर्यय मिटता, आत्मज्ञान प्रगटाय।।
मोह पलाया रे....।। 2।।
झूठी पर की आस तजी, अब निज में ही सुख पाऊँ।
तज मिथ्या संकल्प-विकल्प, सु निज में ही रम जाऊँ।।
अवसर पाया रे.....।। 3।।
सिद्धप्रभु को भाव नमन है, निज प्रभुता दरशाई।
अपनी अक्षय निधि अपने में, प्रत्यक्ष देय दिखाई।।
अनुभव आया रे....।। 4।।
स्वयं स्वयं में तृप्त रहूँ, बस यही भावना स्वामी।
राग-द्वेष से रहित परिणति, होवे अन्तर्यामी।।
भाव जगाया रे....।। 5।।

(375)

सिद्धचक्र को पाठ रचाया, आनंद छाया है।
नहीं कामना भक्तिवश ही पाठ रचाया है।। टेक।।
जब से प्रभुवर तुमको देखा, निज प्रभुता का भान हुआ।
स्वयं पूर्ण ज्ञाता स्वरूप, आनंदरूप श्रद्धान हुआ।।
अहो! परम उपकार, मुक्ति का मार्ग दिखाया है।। 1।।
प्रभु! निज में हूँ तृप्त सदा ही, निज में ही संतुष्ट सदा।
निज में ही रम जावे परिणति, निज से च्युत होवे न कदा।।
सकल जगत में केवल, ज्ञायक रूप सुहाया है।। 2।।

हो विभुवर! आदर्श हमारे, तेरा पथ अनुसरण करूँ।
हो निर्ग्रन्थ आत्मपद साधूँ, निश्चय शिवपद प्राप्त करूँ।।
जग की कुछ परवाह नहीं, पुरुषार्थ जगाया है।। 3।।

(376)

(तर्ज : मैया त्रिशला तेरो लाल.....)

देखो सिद्धचक्र का पाठ, मुक्तिमार्ग दिखाता है।। टेक।।
सिद्धप्रभु ज्यों अशरीरी हैं, त्यों शरीर से भिन्न।
निज शुद्धातम की श्रद्धा से, मोह पलाता है।। 1।।
सिद्धप्रभु ज्ञाता स्वरूप त्यों, मैं भी ज्ञातारूप।
ज्ञाता होकर देखा तो, ज्ञाता ही दिखाता है।। 2।।
स्वयं स्वयं में सुखी सिद्धप्रभु, त्यों ही आतमराम।
स्वाश्रय से ही होऊँ सुखी, यह निश्चय आता है।। 3।।
सिद्धदशा आतम दर्शन, अनुभव थिरता का ही फल।
देख अहो शुद्धातम का, माहात्म्य सु-आता है।। 4।।
तीनलोक में शुद्धातम ही, सर्वोत्कृष्ट प्रभु है।
जो ध्यावे वह स्वयं सिद्धपद निश्चय पाता है।। 5।।
व्यर्थ न भटकूँ यत्र-तत्र-अब निज में ही रम जाऊँ।
रहूँ स्वयं में तृप्त, यही एक भाव सुहाता है।। 6।।

(377)

(तर्ज : धन्य-धन्य आज घड़ी....)

सिद्धचक्र मण्डल विधान सुखकार है।
स्वयं सिद्ध आत्मा नित्य अविकार है।। टेक।।

चिर से ही भूल रहा अपने को आप है।
अपने स्वरूप में न पुण्य है न पाप है।।
ज्ञानमात्र आत्मा तो देखन जाननहार है।। 1।।
भिन्न पर्यायों से, भिन्न गुण भेद से।
निरपेक्ष निर्भेद आत्मा स्वभाव से।।
दृष्टि का विषय यही कारण समयसार है।। 2।।
होकर के जाननहार जाननहार जाने।
ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञाता अभेद ही प्रमाने।।
तत्क्षण हो दुर्मोह नाशे दुखकार है।। 3।।
आत्मश्रद्धान आत्मज्ञान आत्म मग्नता।
एकदेश मुक्तिमार्ग, सर्वदेश मुक्तता।।
ऐसे ही विधान से, होवे भवपार है।। 4।।
मंडल विधान तो है व्यवहार आयोजन।
सिद्ध स्वरूप निज समझना है प्रयोजन।।
प्रतिबिम्ब सम सिद्ध प्रभु का उपकार है।। 5।।

6. श्री नंदीश्वर भक्ति

(378)

नंदीश्वर पूजूँ भक्ति, सहित सुखकार।
जिनमंदिर जिनप्रतिमा देखूँ, अपने ज्ञान मंझार।। टेक।।
जाने की शक्ति नहिं यद्यपि,अंतर शक्ति अपार।
अन्तर दृष्टि से ही पाऊँ, तृप्ति अपरम्पार।। 1।।
आगम चक्षु से मैं जानूँ, चिन्तूं प्रभु गुण सार।
चिन्तत भेद-विज्ञान जगे, अर दीखे जगत असार।। 2।।

प्रभु सम अपना रूप न जाना, भ्रमत फिर्‌यो संसार।
वंदत दुःख पलायो तत्क्षण, भासे निज पद सार।। 3।।
बावन जिनमंदिर अकृत्रिम, अनुपम नित अविकार।
त्यों ही अकृत्रिम शुद्धातम, गुण अनंत भंडार।। 4।।
धन्य घड़ी प्रत्यक्ष निहारूँ, प्रभु तेरा उपकार।
तुम सम ही निज में रम जाऊँ, आवागमन निवार।। 5।।

(379)

नंदीश्वर - नंदीश्वर, वन्दों मैं नन्दीश्वर।
जयवन्तो नन्दीश्वर, जयवन्तो नन्दीश्वर।। टेक।।
अकृत्रिम मंदिर नंदीश्वर, अकृत्रिम जिनबिम्ब मनोहर।
मानो प्रभु साक्षात विराजें, मुक्तिमार्ग संदेश सुनावें।। 1।।
अकृत्रिम निज ज्ञायक भाव, आश्रय करने योग्य स्वभाव।
दर्पणवत् जिनबिम्ब दिखाय, भवि अंतर में लख सुखपाय।। 2।।
श्याम रत्नमय अंजनगिरि है, योजन सहस चौरासी सोहे।
चहुँ दिश चार-चार शुभ वापी, लाख-लाख योजन प्रभु भाखी।। 3।।
फटिक समान सु दधिगिरी जानो, मध्य सहस दश योजन मानो।
योजन सहस तुंग सुखदाई, मुख पर दो दो रतिकर भाई.।। 4।।
बावन चैत्यालय सुखकारी, सुर वंदें तज भाव विकारी।
भाव नमन नित हो अविकारा, अंतर में चिद्‌बिम्ब निहारा।। 5।।

(380)

पर्व अठाई आया है, आनन्द-आनन्द छाया है।
नन्दीश्वर का करें स्मरण, भक्ति भाव उमगाया है॥ टेक॥

श्री जिनवर की पूजन करके, निज परिणाम विशुद्ध करें।
नित अभ्यासें श्री जिनवाणी, स्व-पर भेद-विज्ञान करें॥
मंगल अवसर आया है, आनंद-आनंद छाया है॥ 1॥
निज अकृत्रिम भाव निहारें, सम्यक् दर्शन प्रगट करें।
भायें अविरल ज्ञान भावना, सम्यक् चारित्र प्रगट करें।।
उत्तम अवसर आया है, आनंद-आनंद छाया है॥ 2॥
पर द्रव्यों का दोष न देखें, मिथ्या पर की आस तजें।
ज्ञानानन्द स्वभावी प्रभु है, अपना आतम आप भजें॥
साँचा शरणा पाया है, आनंद-आनंद छाया है॥ 3॥
चिन्ताओं का कर निरोध अब, निज में ही एकाग्र रहें।
अहो! यही निर्ग्रन्थ मार्ग है, हो निशंक हम बढ़े चलें॥
धनि निजरूप सुहाया है, चरणों शीश नवाया है॥ 4॥

(381)

आयो-आयो रे! अठाई पर्व, महा आनंदमयी।
गाओ-गाओ रे! सभी मिल भव्य, भक्तियाँ ज्ञानमयी॥
भाओ-भाओ रे! भावना आज, सहज वैराग्यमयी॥ टेक॥
अहो! ज्ञानियों को तो सहजहिं, भक्तिभाव उमगावे।
पर्व अठाईं में इन्द्रादिक सुर नन्दीश्वर जावें॥ 1॥
यद्यपि शक्ति गमन की नाहिं, तदपि भावना भावें।
महाहर्ष से जिनमंदिर में, प्रभु की भक्ति रचावें॥ 2॥
जिनमंदिर है अशरण जग में, सहज शरण सुखकारी।
दर्शावे जिनबिम्ब मनोहर, चित्स्वरूप अविकारी॥ 3॥

ध्रुव अकृत्रिम है नन्दीश्वर, अकृत्रिम जिनमंदिर।
अकृत्रिम जिनबिम्ब विराजे, रत्नमयी उन-अंदर॥ 4॥
सुने-पढ़े जिन-आगम माँहि, प्रत्यक्षवत् दिखलावे।
अहो! ज्ञान की अद्भुत महिमा, गुण अनंत विलसावे॥ 5॥
जयवन्तो! जिनबिम्ब जगत में, ज्यों अर्हत् परमातम।
हो निहाल नित शीश नवावें, ध्यावें निज शुद्धातम॥ 6॥

(382)

नंदीश्वर का पाठ, करो त्रय-मास, ठाठ से प्राणी।
फल पायो सोमा रानी।। टेक।।
कार्तिक-फाल्गुन-आषाढ़ मास, यह पाठ करो उर हर्ष धार।
करके सरधा नंदीश्वर पूजा ठानी।। फल.।। 1।।
सम्यग्दृष्टि इक सोमा थी, जिसे निश्चय आत्म श्रद्धा थी।
पति ने नंदीश्वर जाने की थी ठानी।। फल.।। 2।।
रानी बरजे फिर बार-बार, पति एक न मानी बात सार।
मानुषोत्तर से मर कर, सुर पदवी पायी।। फल.।। 3।।
सो क्षणभर में नंदीश्वर में जा, पूज करी मन-वच-तन से।
नृप भेष धार पहुँचा जहाँ बैठी रानी।। फल.।। 4।।
रानी बोली तुम सुनो राव, इस भव से ही तुम नहीं जाओ।
मेरे उर निश्चय सत्य कही जिनवाणी।। फल.।। 5।।
ऐसी श्रद्धा लख रानी की, पति देव ने स्तुति की उसकी।
फिर गया सुरग में देव आपने थानी।। फल.।। 6।।
रानी ने सयंम धार लिया, तन प्रति ममत्व भी त्याग दिया।
स्त्रीलिंग छेद के सुर पद पायो ज्ञानी।। 7।।

तहँ तें चय गजपुर जन्म लिया, मुनिपद धर शुक्ल सुध्यान किया।
फिर कर्म श्रृंखला काट गये शिवथानी।। फल.।। 8।।

(383)

नंदीश्वर में बावन मंदिर, देखत होवे हर्ष महा।। टेक।।
रजतगिरी शाल्मलि जम्बू, वक्षार गिरि इष्वाकार।
कुण्डल चैत्य नरोत्तर पर, जो बने जिनालय अकृत्रिम।। 1।।
जम्बू घातकी पुष्कराद्ध, वसुधा के ढाई क्षेत्रों में।
बहु कृत्रिम जिनभवन बने, इन्द्रादि पूजते हैं जिनको।। 2।।
इन सब पूज्य जिनेन्द्र गृहों में, सुन्दर चैत्य विराजत हैं।
श्वेत श्याम रतनार नील, और पीत वर्ण युत छाजत हैं।। 3।।
जिनकी वीतराग मुद्रा लखते ही पाप विनसते हैं।।
भव्य जीव जिन-अवलम्बन से, सत् शिव पथ पर चलते हैं।।4।।

7. श्री दशलक्षण भक्ति

(384)

अहो! दशलक्षण धर्म महान[2]।
महाभाग्य से अवसर आया, पूजो भवि अम्लान।। टेक।।
क्षमा भाव से क्रोध मिटावे, सहज शान्ति तब ही उपजावे।
सब ही आप समान सु भासे, विनयभाव बहु गुण परकाशे।।
नाशें सर्व दोष दुःखखान।। 1।।
सरल भाव से प्रिय हो सबका, नाशे पाप अरे भव-भव का।
तृष्णा लोभ मिटे दुखदायी, संतोषी ध्रुव प्रभुता पायी।।
इन्द्रादिक भी पूजें आन।। 2।।

सत्य धर्म सबका आधार, संयम निज-पर को हितकार।
निर्वांछक तप कर्म नशावे, त्यागी सहज परम सुख पावे।।
जग में होवे यश अम्लान।। 3।।
भेदज्ञान अंतर में जाने, पर को किंचित् निज नहीं माने।
परम ब्रह्म में रमत मुनिवर, अल्पकाल में होते जिनवर।।
होते स्वयं सिद्ध भगवान।। 4।।

(385)

जिनतीर्थ नाथ जग में जयवन्त वर्ते।
जिनमार्ग नाथ जग में जयवन्त वर्ते।।
जिनधर्म नाथ जग में जयवन्त वर्ते।
जयवन्त वर्ते मुझमें प्रवर्ते।। टेक।।
सम्यक्त्व भाव जग में जयवन्त वर्ते।
सद्ज्ञान निर्मल सदा जयवन्त वर्ते।।
चारित्र सम्यक् सदा जयवन्त वर्ते।
जयवन्त वर्ते, मुझमें प्रवर्ते।। 1।।
उत्तम क्षमा सु जग में जयवन्त वर्ते।
मार्दव स्वभाव सु जग में जयवन्त वर्ते।।
आर्जव सहज सु जग में जयवन्त वर्ते।
जयवन्त वर्ते मुझमें प्रवर्ते।। 2।।
उत्तम सु शौच जग में जयवन्त वर्ते।
उत्तम सु संयम सदा जयवन्त वर्ते।।
उत्तम तपश्चरण प्रभु जयवन्त वर्ते।
जयवन्त वर्ते, मुझमें प्रवर्ते।। 3।।

उत्तम सु त्याग जग में जयवन्त वर्ते।
निर्ग्रन्थ भाव जग में जयवन्त वर्ते।।
निर्ग्रन्थ रूप जग में जयवन्त वर्ते।
जयवन्त वर्ते मुझमें प्रवर्ते।। 4।।
उत्तम सु ब्रह्मचर्य जयवन्त वर्ते।
निर्दोष सु ब्रह्मचर्य जयवन्त वर्ते।।
परिपूर्ण सु ब्रह्मचर्य जयवन्त वर्ते।
जयवन्त वर्ते मुझमें प्रवर्ते।। 5।।
आत्म स्वभाव जग में जयवन्त वर्ते।
पुरुषार्थ सम्यक् सदा जयवन्त वर्ते।।
आराधना सततमेव जयवन्त वर्ते।
जयवन्त वर्ते मुझमें प्रवर्ते।। 6।।
निष्काम वंदन प्रभो जयवन्त वर्ते।
पाऊँ सु साध्य अपना जयवन्त वर्ते।।
ज्ञायक स्वरूप अक्षय जयवन्त वर्ते।
जयवन्त वर्ते, मुझमें प्रवर्ते।। 7।।

(386)

क्रोध है दुःखमय, निज क्षमा शान्तिमय।
क्रोध निज को जलाए, क्षमा मुक्ति है।। 1।।
मान से हो अधोगति, जगत में सदा।
मान है भव-भ्रमण, मार्दव मुक्ति है।। 2।।
मायाचारी से तिर्यञ्च-नारीपना।
माया अति क्लेशमय आर्जव मुक्ति है।। 3।।

झूठवादी का विश्वास सब ही तजें।
झूठ तो दुखमय, सत्य ही मुक्ति है।। 4।।
लोभ तो पापमय, नरक का हेतु है।
लोभ संताप है, शौच ही मुक्ति है।। 5।।
होती तृष्णा असंयम से अति तीव्र है।
है असंयम करम संयम ही मुक्ति है।। 6।।
शान्ति तप से मिले इच्छा दुखमूल है।
तप बिना जग रुले, उत्तम तप मुक्ति है।। 7।।
ग्रहण भावक लघु, दान दाता गुरु।
ग्रहण से बंध है, त्याग ही मुक्ति है।। 8।।
पर को निज में मिलाना ही संसार है।
व्यर्थ चिन्ता बुरी, आकिंचन मुक्ति है।। 9।।
भोग हैं नाग सम, दुःखदाई सदा।
ब्रह्म है सुखमय, ब्रह्मचर्य मुक्ति है।। 10।।
धर्म दशधा कहे, मात्र व्यवहार से।
लक्ष्य इनका तजो, निज में हो लीन अब।।11।।
राग ही मूल है सब दुःखों का सही।
शुद्ध आत्मा लखो जो सहज मुक्त है।। 12।।

(387)

उत्तम क्षमा

जगत में क्षमा भाव उर धार।। टेक।।

उत्तम क्षमा वीर मुनि भूषण, गावत सब संसार।
अन्तर बाहर शत्रु न कोई, रहे सदा अविकार।। 1।।

सुन कटु वचन खेद नहिं आने, पर शत्रुता टार।
जीव मात्र से क्षमा भाव रख, पाकर के अधिकार।। 2।।
जिनमुद्रा में प्रथम सुलक्षण, क्षमा देखियत सार।
नहीं क्रोध कायरता किंचित्, रहित विभाव विकार।। 3।।
जीवन की संग्राम भूमि में, हों विभाव कई बार।
किन्तु आत्म गुण क्षमा समझ, सब करो क्षमा स्वीकार।। 4।।
पंच परम पद पावे, इससे परमानन्द अपार।
भव-सागर से पार उतरते, क्षमा तरणि ले हाथ।। 5।।
क्षमा गरल को सुधा बनाती, लख लौकिक व्यवहार।
दुष्ट सुजन होते पाते हम, क्षमा मंत्र इक सार।। 6।।

(388)

संयम भावना

उत्तम संयम प्रभु मेरे प्रगट हो जी,
धन्य दिवस हो, धन्य घड़ी हो, होय मुनि विचरूँ सहज जी।। टेक।।
जब से अन्तर्दृष्टि भयी जी,
और न भावे, कुछ न सुहावे, आतम में ही रुचि लागे जी।। 1।।
विषय हलाहल सम लगे जी,
चर्चा भी नहीं, वार्ता भी नहीं, तनिक सुहावे नाथ जी।। 2।।
परिग्रह बोझा सम लगे जी,
आरम्भ रूप हिंसा रूप पाप बंध को मूल ही जी।। 3।।
मेल-मिलाप नहीं रुचे जी,
हो एकाकी, हो निजवासी, तृप्त स्वयं में ही रहूँ जी।। 4।।

ज्ञान-ध्यान-तप लीन मुनि जी,
लेश विषय नहीं, लेश कषाय न, रंच मात्र आरम्भ नहीं जी।। 5।।
ध्येय रूप निज ध्यावते जी,
शुद्ध चिद्रूपं, शान्त स्वरूपं, मंगलमय हितकार जी।। 6।।
कब वे साँचे गुरु मिलें जी,
उनके ही संग रहूँ, असंग सुखमय जिनदीक्षा धरूँ जी।। 7।।
अन्य न कोई कामना जी,
निज पद ध्याऊँ, निज पद पाऊँ, आनन्दमय अविकार जी।। 8।।

(389)

ब्रह्मचर्य स्तुति

ब्रह्मचर्य सुख रूप भासे मोहि सुखकारा रे।
सब धर्मों में सार, महिमा अपरम्पारा रे।। टेक।।
अक्षय परम ब्रह्म परमातम, ज्ञानानन्द स्वभावी आतम।
वचनातीत विकल्प शून्य, बस जाननहारा रे।। 1।।
जब आतम अनुभव प्रगटाया, परमानंद निज में ही पाया।
रही न पंचेन्द्रिय भोगों की चाह लगारा रे।। 2।।
किससे झूठा नाता जोड़ूँ, किसको भोगूँ किसको छोड़ूँ।
ज्ञेयपने भी दिखे विश्व सब मुझको न्यारा रे।। 3।।
अमृत पीकर विष को चाहे, यही भाव फिर भी आ जावे।
होवे थिर विश्राम स्वयं में,मंगलकारा रे।। 4।।
हूँ स्वभाव से ही आनन्दमय, सहज तृप्त निज में ही निर्भय।
स्वस्थ रहूँ वेदूँ अमृतमय, निज रस सारा रे।। 5।।

(390)

(तर्ज : जैसो समकित...)

दशलक्षण महा सुखकार,
पूजो भक्ति सौं, धारो शक्ति सौं।। टेक।।

वस्तु स्वरूप समझकर भाई, अन्तर्दृष्टि करना।
तत्त्व भावना भाते-भाते,क्रोधादिक परिहरना।। दशलक्षण.।। 1।।
अन्य न कोई सुख-दुःख दाता, परम सत्य है भाई।
मिथ्यात्वादि क्लेश के कारण,संयमादि सुखदाई।। दशलक्षण.।। 2।।
आग समझकर रागादिक को, दूरहि से तुम त्यागो।
परभावों से वृत्ति समेटो,ब्रह्म भाव में पागो।। दशलक्षण.।। 3।।
मुक्ति का सोपान यही है, तत्त्वज्ञान से जानो।
मुक्त स्वरूप सदा शुद्धातम, आज सहज पहिचानो।। दशलक्षण.।।4।।

(391)

पर्व दशलक्षण मंगलकार,
पर्व दशलक्षण आनन्दकार।
अहो खुशी का अवसर आया,
बोलो जय जयकार।। टेक।।
है यह शाश्वत पर्व धार्मिक,
शिवस्वरूप शिवकार।
नहीं व्यक्ति, नहिं सम्प्रदाय का,
सब ही को सुखकार।। पर्व.।।1।।
श्री जिनवर की पूजा करिये,
विषय-कषाय विडार।

सम्यक् भक्ति करो प्रभुवर की,
होओ भव से पार।।पर्व.।। 2।।
जिनवाणी की चर्चा सुनिये,
भाव विशुद्धि धार।
तत्त्वों का सम्यक् निर्णयकर,
भेदज्ञान अवधार।।पर्व.।। 3।।
बैठ एकान्त विचार सु करिये,
निज स्वरूप अविकार।
निर्विकल्प आतम अनुभव कर,
सफल करो अवतार।।पर्व.।।4।।
सम्यक्दर्शन ज्ञान सहित,
उत्तम चारित्र विचार।
क्रोधादिक दुर्भाव निवारो,
धरो क्षमादिक सार।।पर्व.।।5।।
सत्य पंथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर,
संयम तप हितकार।
त्याग-आकिंचन्य-ब्रह्मचर्य धर,
सर्व द्वन्द निरवार।।पर्व.।। 6।।
धर्म और धर्मी को समझो,
तजो पक्ष दुःखकार।
धर्मी के आश्रय से जीवन,
होय धर्ममय सार।।पर्व.।। 7।।

(392)

(तर्ज : तीरथ कर लो ...)

श्री दशलक्षण धर्म अमोलक, हृदय में धारो।
सम्यक्दर्शन ज्ञान सहित, क्रोधादिक निरवारो।। टेक।।
परम इष्ट ज्ञायक स्वभाव है, सहज सदा सुखमय।
जिसके आश्रय से होता है, सर्व दुःखों का क्षय।।
पर में इष्ट-अनिष्ट कल्पना, झूठी तुम टारो।।श्री दश.।। 1।।
पर का दोष न देखो भाई, क्षमा भाव धरना।
पर से भिन्न आत्म-वैभव लख, मान सहज तजना।।
सिद्ध स्वरूप स्वयं को लखकर, माया परिहारो।।श्री दश.।।2।।
तृष्णा लोभ छोड़कर अब तो, निज में तुष्ट रहो।
सत्स्वरूप को समझो, उत्तम संयम सहज धरो।।
उत्तम तप दुष्कर्म नशावे, यथाशक्ति धारो।।श्री दश.।। 3।।
त्यागो अध्यवसान कष्टमय, अन्य न हो अपना।
भोगों से सुख होगा ऐसा, मत देखो सपना।।
हो निर्ग्रन्थ अकिंचन, उत्तम ब्रह्मचर्य धारो।।श्री दश.।। 4।।
अन्तर्दृष्टि तत्त्व भावनामय, पुरुषार्थ करो।
शिवपद भी स्वाश्रय से प्रगटे, निज में तृप्त रहो।।
शुद्धातम की अक्षय प्रभुता, प्रभु सम अवधारो।।श्री दश.।।5।।

(393)

क्षमावाणी दशक

क्षमा भाव है मंगलमय, क्षमा भाव है आनन्दमय ॥ टेक॥
क्षमा अशक्तों का बल जानो, क्षमा है भूषण वीरों का।

क्षमा स्वयं को शान्ति प्रदाता, चित्त हरे सब जीवों का ॥ 1 ॥
क्षमा धर्म का पहला लक्षण, धर्मी की पहिचान अहो।
क्षमा भाव से जीवन सोहे, बैर-विरोध कहीं न हो॥ 2 ॥
दोष किसी का नहीं दीखता, क्रोध सहज उत्पन्न न हो।
दोष स्वयं का स्वयं ही दीखे, उसे मेटने उद्यम हो॥ 3 ॥
ज्ञानाभ्यास करें मन मांहि, भेदज्ञान अन्तर में हो।
निजानन्द निज में ही पावें, पर से सहज विरक्ति हो॥ 4 ॥
द्वेषरूप वैराग्य न होवे, ज्ञानमयी वैराग्य अहो।
क्षण-क्षण बढ़ती भाव विशुद्धि, निज में सहज लीनता हो॥ 5 ॥
होने पर भी दोष अरे, जो नहीं माँगता क्षमा कभी।
पर का ही वह दोष देखता, नहीं धर्म का पात्र अभी॥ 6 ॥
क्षमा माँगने पर भी जो नर, सहजपने नहीं क्षमा करे।
वह भी तीव्र कषायी समझो, दुर्गति दुख में मूढ़ परे॥ 7 ॥
तजकर तुम अभिमान व्यर्थ का, क्षमा करो अरू क्षमा धरो।
दशलक्षण को धारण करके, अपना जीवन सफल करो॥ 8 ॥
जिनवाणी का करो आचरण, शुद्धातम का ध्यान धरो।
व्यर्थ नहीं भटको अब भव में, निज में ही तुम मग्न रहो॥ 9 ॥
उपादेय आतम को आतम, समझो सब ही हेय अहो।
भाव वंदना-भाव स्तवन, तभी आत्मन् सम्यक् हो ॥ 10 ॥

(394)

स्वाभाविक कोमलता मार्दव, धर्मी का शुभ लक्षण मार्दव।
पूज्य जगत में उत्तम मार्दव, प्रगटाओ तुम भी अब मार्दव ॥ टेक॥
विनयवान सब दोष नशावे, विनयवान सब गुण प्रगटावे।
विनयवान ही ज्ञानवान हो, ज्ञानवान तो विनयवान हो॥ 1॥

दया नहीं हो अभिमानी के, व्रत-तप निष्फल अभिमानी के।
पत्थर में जल ज्यों न समावे, त्यों मानी न विशुद्धि पावे॥ 2॥
सिद्ध समान स्वयं को जानो, आप समान सभी को मानो।
नहीं दीनता, नहीं अभिमान, जाग्रत रहे सदा ही ज्ञान॥ 3॥
तुच्छ सभी को देखे मानी, तुच्छ सभी को दिखता मानी।
विनयवान प्रीति यश पाये, निज-पर का सम्मान बढ़ावे॥ 4॥
पर्यायों के दोष अध्रुव हैं, पंचम भाव सहज ही ध्रुव है।
द्रव्यदृष्टि हो मंगलकारी, तत्त्वज्ञान हो मंगलकारी ॥ 5॥
निंदा-गर्हा निज दोषों में, माध्यस्थ हो पर दोषों में।
तब ही धर्म भावना बढ़ती, निज परिणति निज में ही लगती॥ 6॥

8. श्री तीर्थक्षेत्र भक्ति

(395)

तीर्थ वंदना करें भव्यजन, चलो परम आनन्दमय।
शाश्वत तीर्थ अहो! अंतर में, सहज परम आनंदमय॥ टेक॥
तीर्थ रूप शुद्धातम का, श्रद्धान-ज्ञान-आचरण अहो।
भाव तीर्थ व्यवहार तिरावे, दुखमयी भव सिन्धु अहो॥
भाव तीर्थ प्रगटा संतों को, ले जीवन्त तीर्थ सुखमय॥ 1॥
उनके चरण स्पर्शन से, जो क्षेत्र तीर्थ कहलाते हैं।
अहो! आज भी उन गुरुओं की, पावन याद दिलाते हैं॥
हम भी आत्माराधन करते, रहें निःशल्य सहज निर्भय॥ 2॥

तज कर गृह जंजाल पापमय, चलें परम उल्लास से।
उन संतों का निर्मल जीवन, देखें हम भी पास से॥
धन्य-धन्य निर्मोही पावन, जीवन ज्ञान-विरागमय॥ 3॥
महाभाग्य से तीर्थ वंदना, का सुयोग यह पाया है।
दीखे जगत स्वांग सब दुखमय, आतम तत्त्व सुहाया है॥
विषय-कषायारम्भ रहित हो, पावें मुनि जीवन चिन्मय॥4॥
रहकर नित स्वाधीन शांत चित्त, निज शुद्धातम ध्यावें हम।
मोहादिक दुर्भाव नशावें, परमातम पद पावें हम॥
साध्य हमारा यही एक है, पावें शिवपद ज्ञानमय ॥ 5॥

(396)

तीर्थराज पहिचान हमारी, तीर्थराज है शान हमारी।
भाव वंदना मंगलकारी॥ टेक॥
सम्यक् श्रद्धा से हम आवें, भक्ति भाव से प्रभु को ध्यावें।
हो विशुद्ध परिणति हमारी॥ 1॥
सहज शांत है तीर्थ हमारा, परम शांत है रूप हमारा।
शांत दशा होवे अविकारी॥ 2॥
आत्महित का लक्ष्य धरें हम, प्रभुवर का अनुसरण करें हम।
हो निर्ग्रन्थ दशा सुखकारी॥ 3॥
नहीं इन्द्रियों के वश होवें, अपना संयम नियम न खोवें।
अन्तर बाह्य शुद्धि हितकारी॥ 4॥
नहीं प्रदर्शन मात्र करें हम, अन्तर शोधन सदा करें हम।
सहज पवित्र दशा अविकारी ॥5॥

लोक-विरुद्ध आचरण टालें, पद के योग्य क्रिया सब पालें।
हो प्रभावना आनंदकारी ॥ 6॥
अंग सहित सम्यग्दर्शन हो, ज्ञान सहित मंगलाचरण हो।
परम्परा निर्दोष हमारी॥ 7॥
भावों का हो सहज समर्पण, तन-मन-धन जीवन हो अर्पण।
ऊँची रहे सु-ध्वजा हमारी ॥ 8॥

(397)

तीर्थराज है हृदय हमारा, तीर्थराज प्राणों से प्यारा।
द्रव्य वंदना-भाव वंदना, सहज करे भव सागर पार॥ टेक॥
आकर आतम ध्यान लगाया, सहज परम पद यहाँ से पाया।
भगवंतों की याद दिलाता, मुक्तिमार्ग दर्शावन हारा॥ 1॥
उनका ही हम करें अनुकरण, निज आतम का करें अनुभवन।
पर भावों से भिन्न सहज ही, आतम देखन जाननहारा॥ 2॥
शुद्धातम परमार्थ तीर्थ है, रत्नत्रय व्यवहार तीर्थ है।
एक देश है अन्तर साधन, पूर्ण भाव ही साध्य हमारा॥ 3॥
श्रद्धा भक्ति विनय करेंगे, ये सेवा रक्षा सहज करेंगे।
आत्म साधना यहाँ करेंगे, ये पावन संकल्प हमारा॥ 4॥
आओ भविजन मिलकर आओ, अंतर में उत्साह बढ़ाओ।
आराधनमय हो प्रभावना, गूँजे जग में जय-जयकारा ॥ 5॥

(398)

तीर्थ आना सफल तेरा तब होयेगा, तीर्थ परिणति में तेरे प्रगट होयेगा॥ टेक॥
तीर्थ जिससे तिरा जाये उसको कहें, तेरा आत्म स्वभाव ही ध्रुव तीर्थ है।
पार भव से गये सब ही निज आश्रय ले, तू भी निज आश्रय ले पार खुद होयेगा॥1॥

आत्म साधक जहाँ भी विराजे अहो, तीर्थ जग में वही क्षेत्र कहलाता है।
पर विचारो अरे वो तो अपने में है, तू स्वयं में विराजे प्रभु होयेगा॥ 2॥
आत्मा हूँ प्रतीति जगे जिस समय, ज्ञानमय अनुभवन ज्ञान का बल बने।
होवे उपयोग की थिरता निज भाव में, तीर्थमय तू अरे तब स्वयं होयेगा॥ 3॥
कर रहा जिनके दर्शन अरे भव्य तू, वे स्वयं ही स्वयं को निहारें अरे।
कह रहे देख ले तू स्वयं की तरफ, तू भी मेरे ही सम खुद प्रभु होयेगा॥ 4॥
तीर्थ तू आया है किन्तु प्रभु के लिये, और आये सहज प्रभु तो अपने लिये।
चेत! अब भी अरे निज में थिरता करो, लौटकर व्यर्थ जग में दुःखी होयेगा॥5॥
स्मरण मूढ़ किनका करे व्यर्थ तू, विस्मरण योग्य जग में सब पर भाव हैं।
अब करो स्मरण अपना ज्ञायक प्रभु, प्रभुतामय सिद्ध पद तब प्रकट होयेगा॥6॥
आत्मन् बहुत भटके सुखी ना हुए, अब न जाओ कहीं अपने घर में रहो।
भोग वैभव परम निज का शाश्वत अरे, एक क्षण में सहज तृप्त तू होयगा॥7॥

(399)

प्राणों से भी प्यारा है, तीरथ हमारा।
ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाला है, तीरथ हमारा॥ टेक॥
चन्द्र प्रभु की टोंक देख लो, पार्श्व प्रभु के चरण पूज लो।
मंगलमय अविकारा है, तीरथ हमारा ॥ 1॥
भावों से हम करें वंदना, मन में कोई नहीं कामना।
वैराग्य बढ़ावन हारा है, तीरथ हमारा॥ 2॥
हिल-मिल कर हम भक्ति रचावें, ज्ञान जगावें मोह नशावें।
वात्सल्य बढ़ावन हारा है, तीरथ हमारा ॥3॥
सर्व प्रपंचों को हम छोड़ें, निज उपयोग सु निज में जोड़ें।
बंध मिटावन हारा है, तीरथ हमारा ॥ 4॥

अपने में सिद्धत्व निहारें, सबको आप समान विचारें।
आनंद बढ़ावन हारा है, तीरथ हमारा॥ 5॥

(400)

श्री सम्मेदशिखर जी भक्ति

सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर जयवंत रहे[3]।
तीर्थराज सम्मेदशिखर जयवंत रहे॥ टेक॥
बीस तीर्थंकर सिद्ध हुए हैं, अगणित मुनिवर मुक्त हुए हैं।
वंदन अगणित बार, शिखर जयवन्त रहे॥ 1॥
चरण उन्हीं की याद दिलाते, अक्षय सुख का मार्ग दिखाते।
धर्म तीर्थ अविकार, सदा जयवन्त रहे॥ 2॥
रत्नत्रय का राज्य यहाँ है, शान्ति का साम्राज्य यहाँ है।
शुद्धातम सुखकार, सदा जयवन्त रहे॥ 3॥
यहाँ सहज ही भाव बदलते, ज्ञान और वैराग्य उछलते ।
आनंद अपरम्पार, सदा जयवंत रहे॥ 4॥
हम भी निज आतम पहिचानें, हेय-ज्ञेय-आदेय सु जानें।
साधें शुद्ध स्वभाव सदा जयवंत रहे॥ 5॥
शाश्वत सिद्धक्षेत्र पर आये, यही मार्ग हमको भी भाये।
खोलें मुक्ति द्वार, सदा जयवन्त रहे॥ 6॥

(401)

सम्मेदशिखर-सम्मेदशिखर, हम करें वंदना आनंदकर।
जय तीर्थराज सम्मेदशिखर, हम करें वंदना आनंदकर ॥ टेक॥
यहाँ अगणित मुनि आतम ध्याया, अक्षय परमातम पद पाया।
करें स्मरण मंगलकर, सम्मेदशिखर-सम्मेदशिखर॥ 1॥

पावन सिद्धभूमि अविकारी, तत्त्वज्ञान पावें सुखकारी।
सदाकाल सबको हितकर, सम्मेदशिखर-सम्मेदशिखर ॥ 2 ॥
जग प्रपंच सब दूर भगावें, मोक्षमार्ग में लगें लगावें।
भावें शुद्धातम सुखकर, सम्मेदशिखर-सम्मेदशिखर ॥ 3 ॥
यहाँ आकर वैराग्य बढ़ावें, प्रभु सम ही पुरुषार्थ जगावें।
ध्यावें आतम मंगलकर, सम्मेदशिखर-सम्मेदशिखर ॥ 4 ॥

(402)

सम्मेदशिखर-सम्मेदशिखर, शाश्वत तीर्थक्षेत्र सुखकर।
हो निशल्य हम आवें मिलकर, करें वंदना मंगलकर ॥ टेक ॥
वर्तमान के बीस तीर्थंकर, मुनिवर आतम आराधन कर।
मुक्त हुए हैं, सिद्ध हुए हैं, नमें भक्ति से मस्तक धर ॥ 1 ॥
उनके चरण बने सुखकारी, शांत प्रकृति की छटा निराली।
भक्ति भाव से यात्रा करते, टोंक-टोंक पर वन्दन कर ॥ 2 ॥
सिद्ध प्रभु को अहो! निहारें, अपना सिद्ध स्वरूप सम्हारें।
भाव-विशुद्धि स्वयं बढ़ावें, सहज सिद्ध का सुमरन कर ॥ 3 ॥
महाभाग्य से यात्रा होवे, मन की थिरता सब दुःख खोवे।
अपना जीवन सफल बनावें, रत्नत्रय आराधन कर ॥ 4 ॥

(403)

सम्मेदशिखर हमको प्राणों से प्यारा, तीर्थराज हमको है प्राणों से प्यारा ॥ टेक ॥
बीस तीर्थंकर मुक्त हुए हैं, अगणित मुनिवर सिद्ध हुए हैं।
चरणों में वंदन है सविनय हमारा ॥ 1 ॥
आत्मज्ञान है जग में अद्भुत, संयममय तब जग में अद्भुत।
अद्भुत से अद्भुत शुद्धातम हमारा ॥ 2 ॥

तीर्थ हमारा सहज शान्तिमय, रूप हमारा परम शान्तिमय।
सहज शांत हो भाव हमारा ॥ 3 ॥
परम अहिंसामयी मार्ग ये, परम ब्रह्मचर्यमयी मार्ग ये।
निर्ग्रन्थ मारग है तिहुँ जग में न्यारा॥ 4 ॥
भाव सहित हम करें वंदना, रत्नत्रय की करें साधना।
सम्यक् हो पुरुषार्थ आप सम हमारा॥ 5 ॥

(404)

चलो चलें सम्मेदशिखर, करें वंदना आनंदकर॥ टेक॥
शाश्वत तीर्थधाम है जहाँ से, मुनिवर अगणित मोक्ष गये।
निज स्वभाव का आराधन कर, परम सिद्ध परमेश भये॥ 1 ॥
ज्ञान शरीरी अशरीरी प्रभु, लोक शिखर पर राज रहे।
उनके चरण चिन्ह हम सबको, भेद-विज्ञान जगाय रहे॥ 2 ॥
देह भिन्न है कर्म भिन्न, राग भिन्न है।
ज्ञानानंदमयी शुद्धातम, गुण अनंत अविच्छिन्न है॥ 3 ॥
अरे! उलझना व्यर्थ जगत में, सत्वर निज स्वरूप साधें।
तजकर संयोगी भावों को, अक्षय शिवपद आराधें॥ 4 ॥
परम पुरुष आदर्श हमारे, उन सम निज में थिर होवें।
रत्नत्रय से ही कर्म नशावें, गुण अनंत विलसित होवें॥ 5 ॥
निवृत्ति का सुन्दर अवसर, तीर्थक्षेत्र पर सहज मिले।
भायें हम भी आत्म भावना, अंतर परिणति सहज खिले॥ 6 ॥

(405)

ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाला है, ये तीरथ हमारा।
प्राणों से भी प्यारा है, ये तीरथ हमारा ॥ टेक॥

भावों से हम करें वंदना, मन में कोई नहीं कामना।
वैराग्य बढ़ावनहारा है, ये तीरथ हमारा ॥ 1॥
हिल-मिल कर हम भक्ति रचावें, ज्ञान बढ़ावें मोह मिटावें।
प्रेम बढ़ावनहारा है, ये तीरथ हमारा ॥ 2॥
सर्व प्रपंचों को हम छोड़ें, निज उपयोग सु निज में जोड़ें।
बंध नशावन हारा है, ये तीरथ हमारा ॥ 3॥
अपने में सिद्धत्व निहारें, सब को आप समान विचारें।
महानंद बढ़ावनहारा है, ये तीरथ हमारा ॥ 4॥
ज्ञान बढ़ावनहारा है ये तीरथ हमारा,
धर्म बढ़ावनहारा है ये तीरथ हमारा।
ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाला है ये तीरथ हमारा॥ 5॥

(406)

आज मेरे प्रगट्यो है आनन्द अनंत।। टेक।।
मंगल तीर्थक्षेत्र पर आकर, शाश्वत तीर्थ लखंत।
शुद्धातम ही सहज तीर्थ है, जिससे तीर्थ प्रकटन्त।। 1।।
'आत्मा हूँ' श्रद्धा सम्यग्दर्शन, ज्ञान है प्रत्यक्ष करन्त।
आत्म में थिरता सम्यक्चारित्र, रत्नत्रय तीर्थ जयवन्त।। 2।।
ऐसो भाव तीर्थ जिन प्रगट्यो, ते जहँ चरण धरन्त।
क्षेत्र वही शुभ तीर्थ कहावे, भविजन वन्दन करन्त।। 3।।
शाश्वत तीर्थ निजात्म पिछानो, जीवन सफल भवन्त।
मुक्ति पाऊँ ये विकल्प भी, जामें नहीं उपजन्त।। 4।।
स्थिरता रूप मैं मुक्त सदा हूँ, महिमा को आवे न अन्त।
निर्विकल्प हो निज में ही, अब निश्चय वन्दन करन्त।। 5।।

(407)

मैं तो जाऊँ शिखरजी वन्दन को[2]।
वन्दन को स्वामी, वन्दन को।। टेक।।
बीस जिनेश्वर मुक्ति गये हैं, दरश करत सब पाप छये हैं।
झट-पट पाप निकन्दन को।। 1।।
पारस प्रभु जी की टोंक सु सोहै, भक्ति करत मम मन मोहे।
मैं तो जाऊँ पूजन वन्दन को।। 2।।
भक्ति से जो दर्शन करते, नरक पशुगति दुःख नहीं भरते।
चलो दुष्ट करम के खण्डन को।। 3।।
मंगलमय यह पर्वत सारा, जय-जय करत जहाँ नर नारा।
है आनन्द छायो जिनवर को।। 4।।

(408)

सम्मेद शिखर, सम्मेद शिखर।
सम्मेद शिखर, सम्मेद शिखर।। टेक।।
होता कर्मों का अन्त यहाँ,
पाए मुनि मुक्ति अनन्त यहाँ।
तप करते आए सन्त यहाँ,
यह सिद्धक्षेत्र गिरिराज अमर।।
चिर शान्ति यहाँ पर रही बिखर।
सम्मेद शिखर, सम्मेद शिखर।। 1।।
मिलती आध्यात्मिक ऋद्धि यहाँ,
मिलती सद्धर्म समृद्धि यहाँ।

होती श्रद्धा की वृद्धि यहाँ,
होती सद्ज्ञान विवृद्धि यहाँ।।
होता सम्यग्चारित्र प्रवर।
सम्मेद शिखर, सम्मेद शिखर।। 2।।
तीर्थंकर भी दो-एक नहीं,
पाए हैं मोक्ष अनेक यहीं।
पाए विद्वान विवेक यहीं,
छूटा उनका अविवेक यहीं।।
औ गया आत्मा का रूप निखर।
सम्मेदशिखर, सम्मेदशिखर।। 3।।
निर्भयता चारों और यहाँ,
रहते न लुटेरे चोर यहाँ।
जन होते हर्ष विभोर यहाँ,
नचने लगता मन मोर यहाँ।।
यात्रा करते सब बन्धु मित्र।
सम्मेद शिखर, सम्मेद शिखर।। 4।।
दर्शन पाते न अभव्य कभी,
यह नहीं उन्हें दृष्टव्य कभी।
पर जिन्हें मोक्ष गन्तव्य कभी,
मिलना आकर वे भव्य सभी।।
करते कर्मों को तितर-वितर।
सम्मेद शिखर, सम्मेद शिखर।। 5।।

(409)

आज गिरराज निहारा, धन्य है भाग्य हमारा।
श्री सम्मेद नाम है जाको, भूपर तीरथ भारा।। टेक।।
जहाँ बीस जिन मुक्ति पधारे, अवर मुनीश अपारा।
आरज भूमि शिखा मनि सोहे, सुर-नर मुनि मन प्यारा।।1।।
तहाँ थिर योग धार योगीश्वर, निज-पर तत्त्व विचारा।
निज स्वभाव में लीन होय कर, सकल विभाव निवारा।।2।।

(410)

मैं पूजूँ-पूजूँ शिखर सम्मेद महान।। टेक।।
तीर्थंकर मुनिराज बीस ने लह्यो मुक्ति पद आन।। 1।।
और मुनीश्वर बिन गिनती के, भये सिद्ध भगवान।।2।।
जनम-जनम के पातक विनशें, मिले सुख निर्वान।।3।।
यह वरदान प्रभुजी चाहूँ, कीजो आप समान।। 4।।

9. प्रासंगिक भक्ति

(411)

श्री श्रुतपंचमी भक्ति

आज का दिवस है मंगलकारी, मंगलकारी आनन्दकारी।
हुई शास्त्र रचना सुखकारी।। टेक।।
पुष्पदंत और भूतबली मुनि, षट्खण्डागम शास्त्र बनाया।
श्री धरसेनाचार्य गुरु का, स्वप्न अहो साकार कराया।। 1।।
स्वयं सिद्ध यह विश्व बताया, वस्तु स्वभाव धर्म दर्शाया।
तत्त्वार्थों का बोध कराया, मोक्षमार्ग में हमें लगाया।। 2।।

जलें दीप से दीप सुहाई, परम्परा त्यों चलती आई।
हमने भी जिनशासन पाया, परमानंद अंतर उमगाया।। 3।।
श्रुत पंचमी पर्व मनावें, जिनवाणी की भक्ति रचावें।
स्वाध्याय का नियम बनावें, सम्यक् सदाचार अपनावें।। 4।।
भेदभाव हम सभी भुलावें, सहज धर्म वात्सल्य बढ़ावें।
निज स्वभाव का कर आराधन, उत्तम रत्नत्रय प्रगटावें।। 5।।

(412)

श्री अक्षय तृतीया भक्ति

अक्षय तृतीया पर्व महान, सीखें हम सब देना दान।
दान परम सुखदायक जान, हर्ष सहित हम देवें दान॥ टेक॥
आतम अनुभव निश्चय दान, इससे जीव बने भगवान।
पात्र-दान व्यवहार सुजान, आत्म-विशुद्धि होय महान॥
नित प्रभावना हो अम्लान॥ 1॥
श्रद्धा, भक्ति, तुष्टि, विज्ञान, क्षमा, अमात्सर्य, शक्ति पिछान।
दाता के सम्यक् गुण जान, इनसे सहित पात्र पहिचान॥
देवें सदा चतुर्विध दान ॥ 2॥
अरे! कमाना और जोड़ना, खाना-सोना चाहे तोड़ना।
हर्ष-विषाद इन्हीं में करना, लोभ-मान अंतर में धरना॥
ये तो हैं पशुवत् सब काम ॥ 3॥
हो मनुष्य तुम करो विवेक, ध्याओ निज शुद्धातम एक।
मुक्तिमार्ग में आगे बढ़ना, रत्नत्रय की सीढ़ी चढ़ना॥
इससे ही होवे कल्याण ॥ 4॥

श्रमणोपासक श्रावक होते, स्वयं साधु होवे सब दुख खोवे।
निज स्वभाव में रमता जावे, अविरल कर्म नशाता जावे॥
पावे सिद्ध दशा अम्लान ॥ 5॥

वज्रजंघ के भव में सार, भक्ति से मुनि को आहार।
दिया हुए गहरे संस्कार, ऋषभ मुनि को दिया आहार॥
पंचाश्चर्य हुए सुखदान॥ 6॥

हुआ सभी को हर्ष अपार, दान तीर्थ वर्ता अविकार।
धर्म-तीर्थ का जो आधार, गूँजा जग में जय-जय कार॥
हम भी गावें प्रभु गुणगान ॥ 7॥

(413)

राजुल वैराग्य

राजुल – भोगों में संग का वचन हुआ, तो क्यों न साथ संयम में हो।
मत खेद करो अरु रो-रोकर, मेरे पथ में अपशकुन करो॥ 1॥
अब काललब्धि आई मेरी, अपने निश्चय पर अडिग रहूँ।
नेमीश्वर के चरणों में ही, दीक्षा लेकर कल्याण करूँ॥ 2॥
मुक्तिमार्ग में लग जाना ही, अहो! आत्म-उपकार है।
और लगाना भव्यजनों को, ज्ञानी का व्यवहार है॥ 3॥
विषय-कषाओं का तो आत्मन्, अनुमोदन भी नहीं करना।
मोह छोड़ना राग जीतना, द्वेष किसी से नहीं धरना॥ 4॥
द्रव्यदृष्टि से देखो जब ही, सभी दिखें भगवान हैं।
देखो यदि पर्यायों से भी तो, भूले भगवान हैं॥ 5॥
तिरस्कार मत करो किसी का, होकर क्षुब्ध अहो आत्मन्।

दया करो अरु समता लाओ, सुख का मार्ग यही आत्मन् ॥ 6 ।।
सिद्ध समान स्वयं को अरु, सबको देखो अपने ही सम।
चलो वीतरागी के पथ पर, मत लाओ परिणाम विषम ॥ 7 ।।
अंतरंग में आप रूप अपने को, नित अनुभवन करो।
तृप्त रहो संतुष्ट रहो भवि, मुक्त रूप को वरण करो ॥ 8 ।।
महाभाग्य जिनवाणी पायी, अब तत्त्वों का ज्ञान करो।
समझो हेयादेय सहज तुम, स्व-पर भेद-विज्ञान करो ॥ 9 ।।
अक्षय परमानंदमय आतम, व्यर्थ न बाहर भटकाओ ॥
करो अनुसरण परमातम का, निज आतम में रम जाओ ॥ 10 ।।

(414)

श्री रक्षाबंधन पर्व भक्ति

हम सब ही मिलकर मंगलमय,
श्री रक्षाबंधन पर्व पर संकल्प करेंगे।
जिनशासन की रक्षा का हम संकल्प करेंगे ॥ टेक ॥
जो आत्म घातक मोह रागादिक अरे परिणाम।
हैं भव भ्रमण के कारण, क्लेश देते आठों याम ॥
इन दुर्भावों के नाश का संकल्प करेंगे ॥ 1 ॥
परमार्थ देव-शास्त्र-गुरुवर का करें श्रद्धान।
मंगलमयी परमार्थ धर्म की करें पहिचान ॥
अविछिन्न भेदज्ञान का संकल्प करेंगे ॥ 2 ॥
अज्ञान वश देहादि में नहीं मग्न रहेंगे।
विषयों के लक्ष्य से नहीं कषाय करेंगे ॥
अब स्वानुभव प्रगटाने का संकल्प करेंगे ॥ 3 ॥

पर को ही दुःख का कर्त्ता मान, क्रोध नहीं करें।
अपने को पर का कर्त्ता मान, मान नहीं करें।।
ज्ञाता अकर्त्ता लखने का संकल्प करेंगे॥ 4॥
निज ज्ञान वैभव से सतत् आराधना करें।
जड़ बाह्य वैभव से अहो प्रभावना करें।।
सर्वस्व समर्पण का सत् संकल्प करेंगे॥ 5॥
कुरीतियों का उन्मूलन, हम ज्ञान से करें।
निज आचरण से धर्म का प्रसार हम करें॥
सम्यक् रत्नत्रय मार्ग का संकल्प करेंगे॥। 6॥
हो अपने कष्टों की हमें परवाह ही नहीं।
साधर्मी के कष्टों प्रति बे-परवाह हों नहीं॥
निज-पर कल्याण का अहो संकल्प करेंगे॥ 7॥
अब आत्मा को जाना हमने सबसे ही न्यारा।
समतामयी यह धर्म हमको प्राणों सा प्यारा॥
निर्ग्रन्थ पथ में बढ़ने का संकल्प करेंगे॥ 8॥
अब भायें तत्त्व भावना, निरपेक्ष नित रहें।
आया अवसर नहीं क्षण भर भी प्रमाद हम करें॥
अब सम्यक् आत्म-ध्यान का संकल्प करेंगे॥ 9॥
संकल्प के बिना अनेक होते हैं विकल्प।
आकुलता रहती जीव तब तक हो न निर्विकल्प॥
ज्ञायक हैं ज्ञायक रहने का संकल्प करेंगे॥ 10॥
सम्यक् पुरुषार्थ से परम साध्य को पायें।
जिनमार्ग पाया अब नहीं भव-भव में भ्रमायें॥
ध्रुव सिद्ध पद पायें यही संकल्प करेंगे॥ 11॥

(415)

रक्षाबंधन पर्व पर तुम, रक्षा का संकल्प करो।
जिनवाणी का मर्म समझकर, मोह अंधेरा दूर करो॥ टेक॥
तत्त्वों का सम्यक् निश्चय कर, प्रगटाओ अब भेद-विज्ञान।
अन्तर्मुख हो करो स्वानुभव, होय सहज सम्यक् श्रद्धान॥ 1॥
भाओ नित वैराग्य भावना, उत्तम संयम ग्रहण करो।
नेत्र समान सावधानी से, रक्षा करना संयम की॥ 2॥
दोष न लगने पावे कोई, नहीं परवाह करो जग की।
तन से भी निर्मम होकर तुम, निर्मल आतम ध्यान करो॥ 3॥
धन्य अकम्पन आदि मुनीश्वर, अद्भुत समता भाव रखा।
लक्ष्य किया नहीं उपसर्गों का, अपना ज्ञायक रूप लखा॥ 4॥
वे गुरु हैं आदर्श हमारे, सम्यक् समता भाव धरा।
निज तन सम ही रक्षा करना, अपने प्रिय साधर्मी की ॥ 5॥
कभी उपेक्षा हो नहीं पावे, छोटे भी साधर्मी की।
विष्णु कुमार मुनीश्वर जैसा, वात्सल्य उर मांहि धरा॥ 6॥
हर्ष भाव से सेवा भक्ति, करना अपने गुरुजन की।
संस्कार दे छोटों को भी, राह दिखाना शिव सुख की॥ 7॥
वात्सल्य से ही प्रभावना, जिनशासन की सदा करो।
भाओ अविरल तत्त्व भावना, किंचित् हो न विराधना॥ 8॥
हो निशंक स्वाश्रय से ही अब, करो सहज आराधना।
उत्तम अवसर चूक न जाना, कर्म कालिमा दूर करो॥ 9॥

(416)

रक्षाबंधन संवाद (भाई से)

ओ भैया मेरे स्वानुभूति प्रकटाना, पाया है अवसर सुहाना-सुहाना ॥ टेक॥

चिंतामणि सम जिनवृष पाया, फिर भी सेवे विषय-कषाया।
अब कुछ तो विवेक कराना-कराना ॥ 1 ॥

चेतो ! अवसर व्यर्थ न खोना, तत्त्वों का सत् निर्णय करना।
भेद-विज्ञान जगाना-जगाना ॥ 2 ॥

कर्म-राग-पर्याय से न्यारा, ज्ञायक प्रभु अनुपम सुखकारा।
निज में ही दृष्टि जमाना-जमाना ॥ 3 ॥

आत्म-भाव ही मुनि संघ है, मोहादिक बलि माना।
देवे दुःख मनमाना-मनमाना ॥ 4 ॥

मोहादिक को दूर भगाओ, सम्यग्दर्शन प्रकटाओ।
श्री गुरु विष्णु समाना-समाना ॥ 5 ॥

सम्यक् दर्शन-ज्ञान सहित हो, सम्यक् चारित्र पूर्ण करन को।
मुनि पद सहज धराना-धराना ॥ 6 ॥

बाह्य उपसर्ग नहीं दुःख दाता, व्यर्थ विकल्पों से दुःख पाता।
निर्विकल्प हो जाना, हो जाना ॥ 7 ॥

जब तुम निज में ही ठहरोगे, कर्मादिक खुद ही भग जावें।
स्वयं सिद्ध पद पाना, हो पाना ॥ 8 ॥

(417)

रक्षाबंधन संवाद (बहिन से)

कैसा बन्धन ? कैसी रक्षा ? व्यर्थ विकल्प करे रे।
है त्रिकाल निर्बन्ध स्व-रक्षित, अन्तर्दृष्टि लखे रे ॥ टेक॥

दो द्रव्यों की सत्ता न्यारी, कैसे बन्धन होवे,
निज स्वाधीन स्वरूप भूलकर, मूरख बन्धन जोवे।
एक क्षेत्र अवगाही होने पर भी, एक नहीं है,
निमित्त-नैमित्तिक दिखने पर भी, कर्त्ता-कर्म नहीं है॥
भेदज्ञान दृष्टि से चेतन, सबसे भिन्न दिखे रे॥ 1॥
अहंकार-ममकार धार पर में रागादिक ठाने,
ये ही व्यवहारिक बंधन, पर्याय मात्र में जाने।
पर पर्याय से भी है न्यारा, ज्ञान मात्र शुद्धातम,
समयसार अविकारी अनुपम है, शाश्वत परमातम॥
शुद्ध नय द्वारा श्री गुरु, जिसका किंचित् भाव कहें रे॥ 2॥
जिसका जीवन मरण नहीं है, नहीं वेदना कोई,
है अभेद्य स्वगुप्त सदा ही, असुरक्षा नहीं होई।
आत्मन्! तेरा अक्षुण्य वैभव, घटे न बढ़े कदा ही,
एक रूप चैतन्य रत्नाकर, रहता अचल सदा ही॥
अन्तर सुख सागर लहरावे, फिर क्यों दुःख सहे रे॥ 3॥
तेरे में कुछ भी नहीं होता, पर्यायें क्रमवर्ती,
सदा निरन्तर होती रहतीं, रहट घड़ी ज्यों चलती।
अनहोनी होवे नहिं कबहूँ, होनी ही होती है,
मिले पंच समवाय स्वयं ही, कभी नहीं टलती है॥
छोड़ सभी चिंता आकुलता, पर्यय दृष्टि तज रे॥ 4॥
है पर्यायों पर दृष्टि जब, तब सुख कैसे पावें,
होते रहते भाव विकारी, भव में ही भरमावें।

होनहार पर उनको छोड़ें, द्रव्यदृष्टि प्रकटावें,
पर्यायें भी निर्मल होवें, आनंद उर न समावे॥
ध्यान रहे स्वच्छंद न होना, श्री गुरु यही कहें रे॥ 5॥
रक्षाबन्धन पर्व यही, मंगल संदेश सुनावे,
बाह्य प्रसंगों से निरपेक्षित, ज्ञानी ध्यान लगावे।
मैं अविनाशी परमानंदमय, दृढ़ प्रतीत उर धारे,
उसे नहीं किंचित् भय होवे, मोहादिक रिपु जारे॥
ऐसा मंगल पर्व मनावे, शिवपद सहज लहे रे॥ 6॥
बहिन! न मेरी ओर लखो, अब अपनी ओर निहारो,
स्त्री रूप नहीं है तेरा, चेतन रूप संभारो।
मंगलमय प्रभुता मत विसरो, नहीं दीनता धारो,
ये विशुद्ध बंधन भी तोड़ो, मुक्तिमार्ग पग धारो॥
कोई भय न विकल्प सतावे, निज आश्रय जु गहे रे॥ 7॥

(418)

जय-जय मुनिवर विष्णुकुमार, गुरुवर धर्म के जाननहार।। टेक।।
दुष्ट बली जब कुमति उपाई, संघ घेर नरमेघ रचाई।
मच गया गजपुर हाहाकार।। 1।।
संघ उपसर्ग की खबर सु-पाकर, पुष्पदंत मुनि अति घबराकर।
आकर तुमसे करी पुकार।। 2।।
गुरु तुम वीतरागता धारी, विक्रिया ऋद्धि प्रकट भई भारी।
उमड़ा वात्सल्य सुखकार।।3।।
बौने द्विज का वेष बनाया, चमत्कार तप का दिखलाया।
पड़ गया बलि नृप चरण मँझार।। 4।।

मुनियों का उपसर्ग मिटाया, सबको दया धर्म सिखलाया।
हुआ जिनधर्म का जय जयकार।। 5।।
क्षमा भाव धरि बलि को छोड़ा, उसने हिंसा से मुख मोड़ा।
धारा जैनधर्म सुखकार।। 6।।
सर्वजनों में आनन्द छाया, रक्षाबन्धन पर्व मनाया।
हर्षित होय दिया आहार।। 7।।

(419)

श्री भक्तामर पाठ भक्ति

श्री भक्तामर का पाठ करो, नित प्रातः भक्ति मन लाई।
सब सकंट जाय नशाई ।। टेक।।
कुज्ञान से जो मतवारे थे, मानतुंग शिष्य से हारे थे।
उन चतुराई से नृपति लिया बहकाई।। सब.।। 1।।
मुनि जी को नृपति बुलाया था, सैनिक जा हुकम सुनाया था।
मुनि वीतराग को आज्ञा नहीं सुहाई।। सब.।। 2।।
उपसर्ग घोर तब आया था, बल पूर्वक पकड़ मँगाया था।
हथकड़ी बेड़ियों से तन दिया बंधाई।। सब.।। 3।।
मुनि कारागृह भिजवाये थे, अड़तालिस ताले लगाये थे।
क्रोधित नृप बाहर पहरा दिया बिठाई।। सब.।। 4।।
मुनि शान्ति भाव अपनाया था, श्री आदिनाथ को ध्याया था।
भक्तामर की गुरु रचना तुरत रचाई।। सब.।। 5।।
सब बंधन टूट गये मुनि के, ताले सब स्वयं खुले उनके।
कारागृह से आ बाहर दिये दिखाई।। सब.।। 6।।

राजा नत होकर आया था, अपराध क्षमा करवाया था।
मुनि के चरणों में अनुपम भक्ति दिखाई।। सब.।। 7।।
जो पाठ भक्ति से करता है, नित ऋषभ चरण चित धरता है।
जो सिद्धि मंत्र का विधिवत् जाप कराई।। सब.।। 8।।
भव विघ्न उपद्रव टलते हैं, विपदा के दिवस बदलते हैं।
सब मन वांछित हो पूर्ण शान्ति छा जाई।। सब.।। 9।।
जो वीतराग जिन आराधन है, आतम उन्नति का साधन है।
उससे प्राणी का भव बंधन कट जाई।। सब.।। 10।।
भक्त सु निज को पहिचानो, संसार दृष्टि बंधन मानो।
फिर भक्तामर से आत्म ज्योति प्रकटाई।। सब.।। 11।।

(420)

ध्वजारोहण गीत

सत्य-अहिंसा उर में लाओ, अनेकांत जग में फैलाओ।
महावीर संदेश सुनाओ, मंगल धर्म ध्वजा फहराओ॥ टेक॥
जिनमंदिर में मंगल उत्सव, जिनमंदिर में धर्म महोत्सव।
रोम-रोम प्रभु हरष रहा है, आनंद-आनंद बरस रहा॥ 1॥
दुर्विकल्प उपजें नहिं चित्त, जीवन होवे सहज पवित्र।
द्रव्यदृष्टि धर हो निष्काम, आराधें निज आतम राम॥ 2॥
सुखी रहें सब जीव जिनेश, जयवन्तो जिनधर्म हमेश।
सहज नमन हो नित सुखकार, जय-जय समयसार अविकार॥ 3॥

(421)

दिवस आज का मंगलकारी, धर्म ध्वजा फहराएँ।
धन्य दिवस है, धन्य-घड़ी है, धर्म ध्वजा फहराएँ॥ टेक॥
सच्चे देव-शास्त्र-गुरुवर की, सच्ची श्रद्धा लाएँ।
तत्त्व प्रयोजनभूत पिछानें, भेद-विज्ञान जगाएँ॥ 1॥
शुद्धातम का अनुभव करके, सम्यग्दर्शन पाएँ।
भायें नित वैराग्य भावना, निज पुरुषार्थ बढ़ाएँ॥ 2॥
नहीं विसंगति कर्मोदय की, देख कभी घबराएँ।
पुण्योदय के भोगों को भी, नहीं स्वप्न में चाहें॥ 3॥
लौकिक जीवों की बातों में, कभी नहीं हम आएँ।
उपगूहन स्थितिकरण कर, नित वात्सल्य बढ़ाएँ॥ 4॥
कर प्रभावना आत्मधर्म की, मन में भी हर्षाएँ।
तन-धन-वचन समर्पित करके, जीवन सफल बनाएँ॥5॥
जयवंतो नित धर्म अहिंसा, शिव पथ चढ़ते जाएँ।
निजानंद निज में ही पावें, प्रभु को शीश नवाएँ॥ 6॥

(422)

जिनधर्म का झंडा केशरिया, हम सबका झंडा केशरिया।
मोह भगाता-ज्ञान जगाता, प्यारा झंडा केशरिया ॥ टेक॥
इस झंडे के नीचे आओ, शुभ संकल्प सभी दोहराओ।
सत्य-अहिंसा को अपनाओ, न्याय-नीति जीवन में लाओ ॥ 1॥
मैत्री-भाव सभी जीवों में, करुणा भाव सदा दुखियों में।
माध्यस्थ हो विपरीतों में, सहज हर्ष हो गुणीजनों में ॥ 2॥

सदा विचारें मर्यादा में, बोलें भी हम मर्यादा में।
परिग्रह की मर्यादा पालें, दूषण शील भाव के टालें ॥ 3 ॥
हो सम्यक् श्रद्धान हमारा, प्रमाणीक हो ज्ञान हमारा।
योग्य पवित्र चारित्र हमारा, रत्नत्रयमय मार्ग हमारा॥ 4 ॥
जाननहार स्वरूप हमारा, परम मोक्ष है साध्य हमारा।
शुद्धातम ध्रुव ध्येय हमारा, अहो हृदय में हमने धारा ॥ 5 ॥
वीतराग हैं देव हमारे, गुरु निर्ग्रन्थ हमें हैं प्यारे।
स्याद्वादमय श्री जिनवाणी, महाभाग्य हमने पहिचानी॥ 6 ॥
अरे मूढ़ता दूर भगाओ, स्व-सन्मुख पुरुषार्थ जगाओ।
जिनशासन की शरण में आओ, झंडे को नित शीश नवाओ ॥ 7 ॥
मोह विजय हो इन्द्रिय जय हो, दुर्भावों पर सहज विजय हो।
तत्त्व भावना मंगलकारी, हो प्रभावना आनंदकारी ॥ 8 ॥

(423)

(तर्ज : चित्स्वरूप महावीर ...)

झण्डा जैन धरम का सब मिल लहराओ।
झण्डा जैन धरम का ऊँचा फहराओ।। टेक।।
मंगल अवसर आया है,आनन्द-आनन्द छाया है।
आनन्द अपरम्पार, प्रभु को सिर नाओ।। 1।।
ऋषभादिक चौबीस तीर्थंकर,धर्म बताया जगत हिंतकर।
यही धर्म सुखकार, समझा-समझाओ।। 2।।
मोह भाव ही है दुःखकारी,रत्नत्रय ही मंगलकारी।
स्व-पर भेद-विज्ञान, भव्यजन प्रगटाओ।। 3।।

हिंसादिक दुर्भाव नशाओ,सम्यक् तत्त्वभावना भाओ।
परम अहिंसा धर्म, हर्ष से अपनाओ।। 4।।
धर्म भावना बढ़ती जावे,वैभाविक परिणति मिट जावे।
धर्म महोत्सव सफल होय, प्रभु गुण गाओ।। 5।।

(424)

ध्वजा मंगलमय फहरावे,ध्वजा मंदिर में लहरावे।
भावना निज हित की भाऊँ,धर्म महोत्सव मंगलकारी।।
जिनवर गुण गावें।। टेक।।
श्री जिनधर्म प्रसाद से, नाशें सब संताप।
रहें सर्व प्राणी सदा, आनन्दमय निष्पाप।। 1।।
सबसे मैत्रीभाव हो, गुणीजनों में मोद।
दुखियों प्रति करूणा रहे, दुर्जन में नहीं क्षोभ।। 2।।
भेदज्ञान वर्ते सहज, हो विरक्ति सुखकार।
ध्यावें अन्तर्लीन हो, समयसार अविकार।। 3।।
पावें ध्रुव अनुपम गति, आवागमन नशाय।
नमन करें निष्काम हो, ज्ञाता सहज रहाय।। 4।।

(425)

श्री जिनवेदी शिलान्यास भक्ति

जिन वेदी का शिलान्यास यह मंगलकारी हो।
धन्य-धन्य जिनराज विराजे, आनन्दकारी हो॥ टेक॥
जिनदर्शन कर बहुत जीव, दुख पाप निवारेंगे।
जिन भक्ति कर बहुत काल, निज भाव सुधारेंगे॥
मोक्षमार्ग का निमित्तभूत यह... ॥ 1 ॥

दान पुण्य का उत्तम अवसर, हमने पाया है।
भक्ति भावमय हर्ष हृदय में, नहीं समाया है॥
अहो! समर्पण द्रव्य-भाव का... ॥2॥
हो सम्यक् श्रद्धान हमारा, ज्ञान सु अविकारी।
सहज अहिंसामयी आचरण, सबको सुखकारी॥
स्याद्वादमय तत्त्व निरूपण... ॥ 3॥
पंच परम परमेष्ठी के गुण, हर्ष सहित गावें।
चैत्य-चैत्यालय जिनवाणी को, सविनय सिर नावें॥
जैनधर्म की नित प्रभावना... ॥ 4॥
सुखी रहें सब जीव सहज ही तत्त्वज्ञान पावें।
विषय-कषाओं को तजकर, जिन सयंम अपनावें ॥
धर्माराधन आत्माराधन...॥ 5॥

(426)

श्री पंचकल्याणक भक्ति

जय-जयकार जय-जयकार, जय-जयकार॥ टेक॥
गर्भ में आये श्री जिनराज, जय-जयकार करें हम आज,
पन्द्रह मास रतन बरसे थे, नगरी की रचना सुखकार।
इन्द्रादिक देवों ने आकर, उत्सव कीना मंगलकार॥ 1॥
अन्तिम जन्म हुआ जिनराज, जय-जयकार करें हम आज,
नरकों में भी क्षण भर को, तब साता का संचार हुआ।
जन्म महोत्सव इन्द्रों द्वारा, प्रभुवर का सुखकार हुआ॥ 2॥
दीक्षा लीनी श्री जिनराज, जय-जयकार करें हम आज,
बारह भावना प्रभु ने भायीं, सहज प्रबल वैराग्य हुआ।
अनुमोदन लौकान्तिक कीना, आनंद अपरम्पार हुआ॥ 3॥

केवलज्ञान हुआ जिनराज, जय-जयकार करें हम आज,
अद्भुत रचना समवशरण की, दिव्यध्वनि प्रभु मंगलकार।
धर्मतीर्थ का हुआ प्रवर्तन, अहो! अहो! अद्भुत उपकार ॥ 4 ॥
मोक्ष पधारे श्री जिनराज, जय-जयकार करें हम आज,
निर्मल आतम ध्यान लगाया, कर्म कलंक नशाया था।
ध्रुव अनुपम शिव पदवी पायी, आवागमन मिटाया था॥ 5 ॥

(427)

श्री जन्म कल्याणक भक्ति

माता पुत्र तुम्हारा, नाथ हमारा, भव से तारणहार।
रत्नकुक्षिणी माता धन्य है, जायो जग-आधार।। 1।।
सम्यग्दर्शन से शोभित है, तीन ज्ञान संयुक्त।
अन्तिम देह यही है अब तो, होगा भव से मुक्त।। 2।।
जग में अतिशय पूजित होकर भी होगा निर्ग्रन्थ।
अनन्त चतुष्टय से मण्डित हो, दर्शावे शिवपंथ।। 3।।
दिव्यध्वनि में ध्वनित दिव्य निज शुद्धातम को जान।
भव्य अनेकों प्रतिबोधित हो, बने स्वयं भगवान।। 4।।
माता हम भी प्रभु सम अपना, साधें आत्म-स्वरूप।
अवसर पा निर्ग्रन्थ दशा धरि, ध्यायें शुद्ध चिद्रूप।। 5।।
धन्य-धन्य प्रभु दर्शन पायो, आनंद उर न समाय।
आज ही मानो मोक्ष मिल्यो है, जाननहार जनाय।। 6।।

(428)

श्री महावीर जयन्ती भक्ति

(तर्ज : सब मिलकर आज जय कहो ...)

श्री वीर जयन्ती को सब मिल के मनाएँ।
महावीर का संदेश हम जग भर को सुनाएँ।। टेक।।
छह द्रव्य श्री वीर ने इस जग में बताए।
सुख प्राप्ति हेतु हमको सात तत्त्व सिखाए।।
तत्त्वों का ज्ञान करके कर्म-फन्द छुड़ाए।। 1।।
आत्मा सभी समान जैसा कर्म जो करता।
वैसा ही शुभाशुभ फल वह स्वयं भरता।।
अतएव दुश्मन से भी हम द्वेष मिटाएँ।। 2।।
हिंसा सदैव अहिंसा से हारती आई।
सदा ही लोहा गर्म कटता ठंडे से भाई।।
हम शान्तिमय भावों से विकारों पर जय पाएँ।। 3।।
संसार के भोगों में आकुलता ही भरी है।
इनमें न किसी को भी अब तक शान्ति मिली है।।
दुःखों के कारण भोगों का हम त्याग कराएँ।। 4।।
दुःख में न छोड़ें धैर्य, सुख में भी नहीं फूलें।
सदैव समता भाव हिंडोले में हम झूलें।।
खुद जियो और जीने दो का भाव जगाएँ।। 5।।
कोई किसी को सुख-दुख का नहीं दाता।
पर को यह देकर दोष व्यर्थ दुःख ही पाता।।
अतएव सम्यक् निज-पर भेदज्ञान कराएँ।। 6।।

दु:खों के कारण अज्ञान मिथ्यात्व राग मोह।
हास्यादिक नो कषाय माया लोभ मान क्रोध।।
हम इनका नाश करके वीर से ही बन जाएँ।। 7।।

(429)

(तर्ज : मेरे मन मंदिर में आन...)

जन्मे महावीर भगवान, छाया जग में हर्ष महान।। टेक।।
भव्यजनों के तारणहार, प्रभुवर का अन्तिम अवतार।
मनायें वीर जन्म-कल्याण।। 1।।
इन्द्रादिक ने किया महोत्सव, ज्ञानानंदमय महा महोत्सव।
जय-जय वीतराग विज्ञान।। 2।।
धर संयम संसार नशाया, मुक्तिमार्ग हमने भी पाया।
करते स्व-पर भेद विज्ञान।। 3।।
परम अहिंसा धर्म हमारा, तीर्थ हमें प्राणों से प्यारा।
साधें रत्नत्रय अम्लान।। 4।।
आनन्दित हो प्रभु गुण गावें निशदिन आत्म भावना भावें।
होवें हम भी आप समान।। 5।।

(430)

(तर्ज : अशरण जग में चन्द्रनाथ ...)

जन्म जयंती महावीर की, मंगल जय जयकार करें।
वीर प्रभु के हम अनुयायी, घर-घर मंगलाचार करें।। टेक।।
वीतरागता धर्म हमारा, राग-द्वेष को हम छोड़ें।
तत्त्वों की सम्यक् श्रद्धा कर, ज्ञान-ज्ञान में ही जोड़ें।।
परम अहिंसा धर्म हमारा, धारें और प्रसार करें।। 1।।

अन्य न कोई दुःख का कारण, भूल स्वयं को है हैरान।
द्रव्यदृष्टि से निज में देखे, आप स्वयं ही है भगवान।।
स्वाश्रय से ही अब तो प्रभुवर, पापों का परिहार करें।। 2।।
रत्नत्रयमय निश्चय भक्ति मुक्ति का कारण बनती।
गुण चिंतन और तत्त्व भावना, भाव विशुद्धि को करती।।
हो निशंक निश्चिंत निराकुल, हम सब प्रभु की भक्ति करें।।3।।
प्रभु जैसी अन्तर्दृष्टि हो प्रभु जैसा पुरुषार्थ हो।
उदासीनता ज्ञानमयी हो, साध्य परम परमार्थ हो।।
रत्नत्रय की नौका बैठें, भवसागर को पार करें।। 4।।

(431)

श्री केवलज्ञान भक्ति

(तर्ज : आज तो बधाई राजा नाभि के दरबार में ...)

गाओ रे बधाई केवलज्ञान की सुखकार रे।। टेक।।
वीर प्रभु मुक्ति गये गौतम गणधर केवली भये।
धन्य-धन्य-धन्य दिवस आज मंगलकार रे।। 1।।
प्रभु का विरह भुलाया, मुक्तिमार्ग दरशाया।
रागादि से भिन्न ज्ञानमय सुखकार रे।। 2।।
स्वाश्रय से कल्याण होय, भव्य सुनो मद खोय।
नित्य कल्याण रूप शुद्धातम अविकार रे।। 3।।
स्वानुभव प्रमाण करो, सत्य श्रद्धान धरो।
रत्नत्रय पथ पर बढ़ो, हर्ष उर धार रे।। 4।।
संसार असार है, शुद्धातम ही सार है।
आत्मा की साधना ही सर्व दुःखहार रे।। 5।।

अवसर गँवाओ ना, भव को बढ़ाओ ना।
ध्याओ-ध्याओ समयसार, होओ भव से पार रे।।6।।

(432)

श्री वीर शासन जयन्ती

जयवंतो महावीर का शासन जयवंतो।
जयवंतो श्री वीर का शासन जयवंतो।। टेक।।
अनेकांतमय वस्तु स्वरूप, स्याद्वादमय जिनवाणी।
अहो! अहिंसामयी धर्म नित जयवन्तो।। 1।।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, समवशरण मंगलकारी।
श्री निर्ग्रन्थ मुनीश्वर, नित ही जयवन्तो।। 2।।
सहज संयमी साधु आर्यिका, श्रावक और श्राविकाएँ।
संघ चतुर्विध, धर्म आयतन जयवन्तो।। 3।।
अष्ट अंगमय सम्यग्दर्शन, आत्म ज्ञानमय सम्यग्ज्ञान।
सम्यक् चारित्रमय, रत्नत्रय जयवन्तो।। 4।।
क्षमा मार्दव और आर्जव, शौच सत्य संयम तप त्याग।
आकिंचन्य ब्रह्मचर्य सहज ही जयवन्तो।। 5।।
जिनशासन सब ही प्रगटावें, निजानंद में तृप्त रहें।
पावें शिव साम्राज्य सदा ही जयवन्तो।। 6।।

(433)

श्री वीर का शासन मंगलमय, महावीर का शासन मंगलमय।
जिनशासन सबको सदाकाल, सर्वत्र सर्वथा मंगलमय।। टेक।।
आत्मानुभूति है मंगलमय, ज्ञानानुभूति है मंगलमय।
मोह-क्षोभ से रहित, सहज स्वाभाविक समता मंगलमय।।1।।

श्रद्धान-ज्ञान है मंगलमय, आचरण-ध्यान है मंगलमय।
जिन तपश्चरण है मंगलमय, जिन आराधन है मंगलमय।। 2।।
जिनमुद्रा जग में मंगलमय, जिनवाणी जग में मंगलमय।
जिन भेदज्ञान है मंगलमय, परमार्थ सहज है मंगलमय।। 3।।
व्यवहार योग्य है मंगलमय, है रूप हमारा मंगलमय।
हे नाथ नमनमय सहज भावना, परिणति होवे मंगलमय।। 4।।
निर्ग्रन्थ शासन मंगलमय, अप्रमत्त शासन मंगलमय।
अनेकान्त शासन मंगलमय, जिननाथ का शासन मंगलमय।। 5।।
शासन नमोस्तु है मंगलमय, सर्वज्ञ का शासन मंगलमय।
दशलक्षण धर्म है मंगलमय, होवे प्रभावना मंगलमय।। 6।।

(434)

श्री जिनवर का मंगल शासन, सहजपने स्वीकार हमें।
श्री गुरुवर का शुभ अनुशासन, सहजपने स्वीकार हमें।। टेक।।
वस्तु स्वरूप समझना है, भेदज्ञान उर धरना है।
देहादिक से भिन्न शुद्ध, आतम का अनुभव करना है।।
रत्नत्रय ही सुख का साधन, सहजपने स्वीकार हमें।। 1।।
पर द्रव्यों का दोष नहीं है, दुख का कारण मोह सही है।
व्यर्थ भटकना है बाहर में, अपना सुख अपने में ही है।।
ज्ञानानंदमयी निज आतम, सहजपने स्वीकार हमें।। 2।।
सर्व विकल्प अकिंचित्कर हैं, मूढ़ व्यर्थ बोझा ढोता है।
आर्त्तध्यान कितना ही कर लो, जो होना है वह होता है।।
वस्तु का स्वधीन परिणमन, सहजपने स्वीकार हमें।। 3।।

हो सम्यक् पुरुषार्थ जीव का, कारण सर्व सहज मिलते।
भायें सम्यक् तत्त्व भावना, सुगुण प्रसून सभी खिलते।।
उदासीनता ही आनंदमय, सहजपने स्वीकार हमें।। 4।।
वीतरागता श्री जिनवर की, अब आदर्श हमारा है।
अहो! अहो! समभावी गुरुवर, का ही हमें सहारा है।।
मोही जग तो अशरण ही हैं, सहजपने स्वीकार हमें।। 5।।
सदा विराजो हृदय हमारे, अहो! अहो! निर्ग्रन्थ गुरु।
राग छुड़ाओ, मुक्ति मार्ग में हमें बढ़ाओ अहो गुरु।।
सम्यक् आराधनमय जीवन, सहजपने स्वीकार हमें।। 6।।

(435)

श्री वीर निर्वाणोत्सव भक्ति

(तर्ज : धन्य मुनिराज ...)

प्रभुवर मोक्ष पधारे हैं, गूँजे जय-जय कारे हैं।। टेक।।
सकल विभाव अभाव भये हैं, वीतरागता धारे हैं।
निजानंद में मग्न सहज ही, लोकालोक निहारे हैं।। 1।।
परम दशा को प्राप्त हुए हैं, प्रभु आदर्श हमारे हैं।
परम ध्येय निज शुद्धातम को, सहज दिखावन हारे हैं।। 2।।
गुण चिन्तत ही अन्तरंग में, भेदज्ञान विस्तारे हैं।
मुक्तिमार्ग में निमित्तभूत हैं, विघ्न सर्व निरवारे हैं।। 3।।
भक्तिभाव से शीश नवावें, यही भावना धारे हैं।
हो पुरुषार्थ अलौकिक प्रभु सम, प्रगटें सुगुण हमारे हैं।। 4।।

(436)

उपकार जिनवर आपका है अहो! परमानंदमय।
निर्वाण प्रभुवर आपका है अहो! परमानंदमय।। टेक।।
चिद्रूप शुद्धातम दिखाया, अहो! परमानंदमय।
परिणमन स्वाश्रित हुआ प्रभु, अहो! परमानंदमय।। 1।।
उपयोग में उपयोग भासा, अहो! परमानंदमय।
चिरकाल का दुर्मोह नाशा, अहो! परमानंदमय।। 2।।
ज्ञानमय अनुभवन वर्ते, अहो! परमानंदमय।
ज्ञानमय जीवन हुआ प्रभु,अहो! परमानंदमय।। 3।।
निर्ग्रन्थ हो निर्द्वन्द्व विचरूँ, अहो! परमानंदमय।
निज ध्यान धारा सहज वर्ते, अहो! परमानंदमय।। 4।।
दुष्कर्म विनशें सुगुण विलसें अहो! परमानंदमय।
तिष्ठूँ प्रभु के पास प्रभु हो, अहो! परमानंदमय।। 5।।
जयवन्त वर्ते जैनशासन, अहो! परमानंदमय।
प्रभु हो सहज अद्वैत वंदन, अहो! परमानंदमय।। 6।।

(437)

प्रभुवर ऐसी दीवाली मनाऊँ।। टेक।।
तत्त्वज्ञान कर भेदज्ञान कर, स्वानुभूति प्रगटाऊँ।
सम्यक् ज्ञान प्रकाश जगमगे, मोह अंधेरा भगाऊँ।। 1।।
दैन्य भाव तज स्वाभिमान धरि, इन्द्रिय विजय कराऊँ।
ब्रह्म स्वरूप सु अपनो ध्याऊँ, अब्रह्म सकल नशाऊँ।। 2।।
आत्मीक ध्रुव विभव संभालूँ, दारिद्र सहज मिटाऊँ।
हो निर्ग्रन्थ स्वरूप मग्न हो, केवल लक्ष्मी पाऊँ।। 3।।

वीतराग रह सहज भाव से, धर्म तीर्थ वर्ताऊँ।
कर्म उपाधि दूर भगाकर, सिद्ध स्वपद प्रगटाऊँ।। 4।।

(438)

मंगलमय अवसर अहो, प्रभुवर मुक्त भये।
आनंदमय मुक्त स्वरूप, प्रभुवर दिखा गये।। टेक।।
जयवन्ते प्रभुवर का शासन, जयवन्ते जग में जिनशासन।
सब सुख शान्ति लहे।। 1।।
सर्व कर्म मल वर्जित आतम, ज्ञानानंदमय ध्रुव परमातम।
सहज ही मुक्त रहे।। 2।।
भूल स्वयं बंधन में पड़ता, समझ स्वयं को शिवपद लहता।
अन्य न कुछ भी करे।। 3।।
हरष-हरष प्रभु के गुण गावें, आत्म ज्ञान के दीप जलावें।
मोह तिमिर सु भगे।। 4।
धर्म महोत्सव मंगलकारी, मंगलकारी, सब दुखहारी।
परमानन्द करे।। 5।।

(439)

(तर्ज : श्री जिनवर का मंगल शासन...)

मंगलमय निर्वाण की बेला, छाया हर्ष महान रे।
जयवन्तो भगवान आत्मा, जयवन्तो भगवान रे।। टेक।।
अशरीरी प्रभु ज्ञान शरीरी, जय-जय ज्ञानानंदमय,
सकल कर्ममल शून्य महेश्वर हुए सु परमानंदमय।
जगत विभव से रहित विभवमय पाया अविचल थान रे।। 1।।

लोक शिखर पर जाय विराजे, जगत पूज्य होकर स्वामी,
शुद्धातम सर्वोत्कृष्ट है सिद्ध हुआ त्रिभुवन नामी।
ध्रुव मंगल भगवान आत्मा, हुआ सहज श्रद्धान रे।। 2।।
अहो! आपके हो अनुगामी, निज आतम आराधें हम,
बाह्य विभव को धूल समझकर अपरिग्रह व्रत धारें हम।
निजानंद में तृप्त रहें प्रभु प्रगटे निश्चल ध्यान रे।। 3।।
असत् विभाव सहज नाशेंगे, सकल कर्म विनशायेंगे,
आप सरीखे गुण अनंत प्रभु, परिणति में विलसायेंगे।
आवागमन मिटेगा निश्चय, पावें पद निर्वाण रे।। 4।।

10. आध्यात्मिक भक्ति

(440)

आत्म अनुभव का अवसर मिला,चूक मत जाना दुर्लभ अहो।
व्यर्थ बाहर भटकते अरे,बोधि निज में सुलभ ही अहो।। टेक।
ज्ञान-आनंदमय आत्मा, तूने अब तक पिछाना नहीं।
झाँको अपने ही अंतर में तुम, प्रभु सी प्रभुता दिखेगी।। 1।।
अन्य कोई सहारा नहीं, सोच कर व्यर्थ न हो दुःखी।
पूर्ण सामर्थ्यमय आत्मा, स्वयं ही स्वयं को शरण है।। 2।।
जग में राई सा सुख ही नहीं, सोचकर आकुलित तू न हो।
आत्मा स्वयं सुख सिन्धु है, शक्तियाँ अनंत उछलें अहो।। 3।।
मूढ़ पामर हूँ भ्रान्ति तजो, मैं हूँ ज्ञायक प्रतीति करो।
अपनी प्रभुता का कर अनुभवन, भव्य शिवपथ में आगे बढ़ो।। 4।।
सम्यक् दर्शन सहित ज्ञान हो, सम्यक् चारित्र वैराग्यमय हो।
होवे संवर सहित निर्जरा, शीघ्र शिवधाम पाओ अहो।। 5।।

(441)

सहज पवित्र, सहज सुखधाम, ज्ञाता रूप परम अभिराम।
ध्याऊँ पाप विनाशन हार, मंगलमय मंगल दातार।।
जासों होय कर्म की हानि।। 1।।

अपराजित शुद्धात्म स्वरूप, सर्व विभाव रहित ध्रुव रूप।
अकृत्रिम मंगल पहिचान, जाके आश्रय होय कल्याण।।
अद्‌भुत महिमामयी गुणखान।। 2।।

अनेकांतमय वस्तु स्वरूप, धर्म अनंतमयी चिद्रूप।
दर्श-ज्ञान-सुख-वीर्य अनंत, अनुभव माँहि प्रत्यक्ष लखंत।।
जासों होय आनंद महान।। 3।।

परम ब्रह्म परमात्म स्वरूप, परम ज्योति परमेष्ठी रूप।
स्वयं सिद्ध रत्नत्रय खान, नित्य निरंजन प्रभुतावान।।
शाश्वत परमात्म पहिचान।। 4।।

सहज मुक्त प्रभु परमादेय, अन्य भाव सब जाने हेय।
शुद्ध जीवास्तिकाय अम्लान, जन्मभूमि मुक्ति की जान।।
तहँ पाऊँ अनंत विश्राम।। 5।।

निरन्तराय निर्विघ्न स्वरूप, नित जयवंत सहज चिद्रूप।
परम पारिणामिक अविकार, समयसार हो जग में सार।।
जासों मिले परम शिवथान।। 6।।

कथन माँहि आवे न लगार, चिंतन भी नहीं पावे पार।
फिर भी स्तुति करूँ ललाम, हुआ भक्तिवश सहज प्रमाण।।
जासों भाव विशुद्धि जान।। 7।।

परम पुराण पुरुष परमेश, ज्ञाता रूप सहज सर्वेश।
जय-जय चिदानंद चिद्रूप, प्रंशसनीय जग मंगल रूप।।
स्वस्ति दायक जग में जान।। 8।।
ज्ञायक सहज चतुष्टयवान, चित्प्रकाशमय ध्रुव भगवान।
पाप-पुण्य भावों से दूर, जामें उछले समता पूर।।
पायो आज भेद-विज्ञान।। 9।।
पर भावों की रही न चाह, पाई साँची मुक्ति राह।
सहज मुक्त हूँ है श्रद्धान, वर्ते निशदिन ये ही ध्यान।।
प्रगटे प्रभु सम ही मोक्ष महान।।10।।
सर्व जगत को स्वस्ति रूप, श्री जिन पूजा होय अनूप।
साक्षीभूत अहो जिननाथ, ध्याऊँ प्रभुतामय निजनाथ।।
निजनाथ है जिनवर समान।। 11।।

(442)

(तर्ज : ऐसो समकित महा सुखखान ...)

जैसो अपनो ज्ञायक भगवान, दूजो कोई नहीं।। टेक।।
जय-जय पंच परम गुरु सार, दर्शायो निजपद अविकार।
ध्रुव परमेष्ठी मंगल रूप, भाऊँ नित चैतन्य स्वरूप।।
पाऊँ परमानंद अम्लान।। दूजो.।। 1।।
पाकर भेदज्ञान का मंत्र, मोह नाश साधूँ शिवपंथ।
हे प्रभु निज प्रभुता प्रगटाय, तिष्ठूँ तुम ढ़िंग आनंद पाय।।
होऊँ साक्षात् ज्ञाता महान।। दूजो.।। 2।।
प्रभु साक्षी में जग्यो विवेक, मंगलमय शुद्धातम एक।
तीन लोक में परम महान, अनन्य शरण ज्ञायक भगवान।।

ज्ञायक तो ज्ञायक ही जान।। दूजो.।। 3।।
शुद्धातम ही इक आराध्य, शुद्धातम ही साधन साध्य।
होय प्रत्यक्ष स्वानुभव माँहि, सहजहिं परमानंद विलसाय।।
फिर परिणति भी हो नहिं म्लान।। दूजो.।। 4।।
हो निर्द्वन्द स्वरूप हि ध्याय, शिव सुख को बस एक उपाय।
तज झूठे संकल्प-विकल्प, स्वयं सदैव रहूँ अविकल्प।।
जामें धोखा नहीं सत्य मान।। दूजो.।। 5।।
निज को भूल होय अपवित्र, जाने तब हो सहज पवित्र।
यह पर्याय स्वभाव सुजान, रहे भिन्न ज्ञायक भगवान।।
जाको आश्रय महा सुखदान।। दूजो.।। 6।।

(443)

ज्ञानी की निर्भयता

परिग्रह सों सदा काल रूप मम न्यारो रहे,
ऐसो जान ज्ञानी इह लोक भय नशायो है।। 1।।
ज्ञान-लोक आत्मीक, शेष सब पौद्गलिक,
यातें परलोक चिंता ने नहीं सतायो है।। 2।।
जड़ द्रव्य प्राणों को बिछुड़ते हू देख निज,
भाव प्राण साथ जान मौत भय भगायो है।। 3।।
जेते रोग तेते तन माँहि, नहिं मुझ माँहि,
रोग भय ऐसे चिंतवे ते नहिं आयो है।। 4।।
मैं हूँ जीव द्रव्य अतः सत्ता है त्रिकाल मेरी,
ऐसे जान अनरक्षा भय नहीं मान्यो है।। 5।।

ज्ञान सम्पदा को नहिं लूटि सके अन्य कोई,
अतः अनगुप्ति डर किंचित् न आन्यो है।। 6।।
आत्म स्वभाव रहे एक रूप सदाकाल,
परिणाम भी तो क्रमबद्ध रूप जान्यो है।। 7।।
अतएव अकस्मात् भय से रहित होय,
ज्ञानी तो सदैव निज रूप माँहि राँचो है।। 8।।

(444)

आत्म-पुरुषार्थ

पुरुषार्थ किए ना हमने कभी, अवसर यूँ ही विलगाए हैं।
मुक्ति की अभिलाषा तो की, उपलब्ध नहीं कर पाये हैं।।टेक।।
सच्चे देव-शास्त्र-गुरु दर्शन, मंजिल के प्रारम्भ हैं ये।
निज स्वभाव के सन्मुख दृष्टि, मुक्ति का आरम्भ है ये।।
गति रहते गतिहीन हुए हम,आगे ना बढ़ पाये हैं।। 1।।
परम्परा का धर्म दे रहा, लौकिक सुख का दान हमें।
समरूप उन्हीं का इस अन्तर में, पूज रहे हम लोग जिन्हें।।
साध्य सराहा कभी न अपना, साधन गले लगाये हैं।। 2।।
चारों मंगल माने महान पर, ये शाश्वत सुख जनक नहीं।
आराधक के मार्ग प्रकाशक निश्चय ये ही आराध्य नहीं।।
चैतन्य ध्रुव में सच्चा सुख, श्रद्धान नहीं कर पाये हैं।। 3।।
पर्यायों में उलझ गये हम, आत्म रसिक न बन पाये।
विषयों में ही मंडराये हम, आत्म रसिक न बन पाये।।
स्व-शक्ति हम भूल गये, कमलों से निकस न पाये हैं।। 4।।

पूजा पुण्य दिलाती है, अनुकरण मुक्ति दिलवाता है।
पैठ गया जो खुद के अन्दर, सहज मुक्ति पा जाता है।।
खुद ही खुद को विसराये, खुद में खुद को भरमाये हैं।। 5।।
मुक्ति की युक्ति अन्दर है, मोक्षमार्ग अन्यत्र नहीं।
निज की शक्ति निज में सोई, हो पाई अभिव्यक्त नहीं।।
उलझ गई पर में दृष्टि, निज प्रभुता ना लख पाये हैं।। 6।।
संयोग और पर्याय बदलती, ये अनादि का परिवर्तन।
बहुत छके इसमें रच-पच, अब दूर रहे यह दुर्वेदन।।
ध्यान करें सम्मान करें, जिस आतम को विसराये हैं।। 7।।

(445)

ज्ञानमय चर्चा

पुण्य पर भी भरोसा हमें है नहीं,
व्यर्थ संक्लेशता प्रति समय धारते।
इष्ट के तो बिछुड़ने की चिंता करें,
चिंता करते हुए धर्म को त्यागते।। 1।।
जग के दुःख की तो परवाह नहीं हम कहें,
बाह्य वैभव भी प्रभु से अरे! माँगते।
छाया माँगे बिना पेड़ से यहाँ मिले,
फिर भी चाहें न किंचित् भी शरमावते।। 2।।
धर्म त्यागे से तो दुःख बढ़ता रहे,
ज्ञानी दुःख में भी धर्म अतः धारते।
धैर्य पूर्वक सदा तत्त्व चिंतन करें,
बाह्य कार्यों की चिंता नहीं लावते।। 3।।

भिन्न अनुभव करें आत्मा को सदा,
निज के वैभव में दृष्टि को धरते रहे।
होवे चंचलता मन में कदाचित् कभी,
तत्त्व चिंतन में उपयोग धरते रहे।। 4।।
कभी गाथा पढ़ें तीर्थंकर आदि की,
कभी वस्तु स्वभाव सुमरते रहें।
कभी कर्म विपाक का निर्णय करें,
कभी चरणानुयोग को पढ़ते रहें।। 5।।
कभी चर्चा करें, कभी भक्ति करें,
कभी चितंन मनन और ध्यान धरें।
कभी मुद्रा लखें प्रभु की नासाग्रमय,
यों ही भावों की संभाल करते रहें।। 6।।
होता पर लक्ष्य से दुःख श्रद्धा परम,
पर से भिन्न 'मैं ज्ञायक हूँ' लखते रहें।
ये ही साधन प्रभु ने कहा सुख का,
व्यर्थ कर्त्तृत्व तज सुख शाश्वत लहें।। 7।।

(446)

भोजन करते समय ज्ञानी का चिंतवन

भोजन स्वरूप नहिं मेरा, ये पुद्गल पिण्ड निवेरा।
इससे मम भिन्न चतुष्टय, हूँ निज में पूर्ण सुखी मैं।। 1।।
अब मैं निज भाव चितारा, इसका मैं जाननहारा।
लेने की जरूरत नाहीं, इसके बिन पूर्ण सुखी मैं।। 2।।

ज्यों श्वान अस्थि को चावे, अति ही आनन्द मनावे।
पर है विपाक दुखदायी, अन्तः कपोल फाटत है।। 3।।
त्यों भोजन में सुख भासे, इसके साधन में राँचे।
पर इसमें बंध अशुभ है, भारी हो दुःख उदय तैं।। 4।।
इसमें नहीं सुख कदाचित् सुख तो निज की ही परिणति।
इसकी रुचि में तो तृष्णा, तृष्णा बिन पूर्ण सुखी मैं।। 5।।
भोजन से तृप्ति न होवे, सद्ज्ञान क्षुधा अब खोवे।
मैं ज्ञान स्वरूप सम्भारूँ, जिससे हूँ पूर्ण सुखी मैं।। 6।।
हैं धन्य महामुनि ज्ञानी, जो ध्यान धरैं जिनवाणी।
वाणी-माँ-अंक में सोवे, सुख पायो उन निज में।। 7।।
भोजन को नहिं अभिलाखे, निज ज्ञान सुधा रस चाखे।
आश्रय निज भाव का लेते, वे रहित होंय इच्छा तैं।। 8।।
किंचित् विकल्प यदि आवे, अरु नीरस भी नहिं पावे।
तो भी समभाव विचारें, वे सदा सुखी समता तैं।। 9।।
उनका अनुकरण करूँ मैं, उन सम निज ध्यान धरूँ मैं।
भोजन का राग न आवे, बिन राग हूँ पूर्ण सुखी मैं।। 10।।

(447)

सम्यक्त्व के आठ अंग

सम्यक्त्व की रक्षा करो, बातों में मत आओ।
श्री देव-शास्त्र-गुरु का अहो! श्रद्धान दृढ़ लाओ॥ टेक॥
भयभीत मत रहो, कोई भी कर सके बुरा।
आशा भी मत रखो, अरे! कोई करे भला॥

बाहर में सुख-दुख है नहीं, अन्तर में सुख पाओ॥ 1॥
कुछ देख चमत्कार, मत चलायमान हो।
निज तत्त्वज्ञान से ही, सहज समाधान हो।।
संयोग तो कर्मोदय से ही, समय पर पाओ॥ 2॥
मुक्ति के मार्ग में तो, देव-शास्त्र-गुरु निमित्त।
सम्यक् पुरुषार्थ हो सदा ही, भाव हों पवित्र॥
कर्तृत्व का अभिमान नहीं, चित्त में लाओ॥ 3॥
देखो तुम आगम चक्षु से, मिथ्या विकल्प तज।
जिनराज सम शुद्धात्मा निज, निज माँहि भव्य भज॥
नित भेदज्ञान ही शरण, सम सुख सहज पाओ॥ 4॥
शंकादि दोषों से सदा ही, दूर ही रहो।
नि:शंक हो, आराधना में उद्यमी रहो॥
निर्दोष हो प्रभावना, निश्चितंता लाओ॥ 5॥
हो मंद सब कषायें, होने योग्य सहज हो।
अरु त्याज्य कामों का, सहज ही त्याग निर्मल हो॥
नहीं क्रूरता कठोरता, या कुटिलता लाओ॥ 6॥
हो सत्य अहिंसा अचौर्य, शील का पालन।
ईर्ष्या-तृष्णादिक शून्य हो, संतोषमय जीवन॥
दुर्भाव स्वप्न में भी न हों, भावना भाओ॥ 7॥
आदर्श हों जिनदेव, नहीं हीनता आवे।
अब पूर्णता के लक्ष्य से, प्रारम्भ हो जावे॥
अनुशासन में गुरुओं के रहकर, चरण बढ़ाओ॥ 8॥
छोड़ो मिथ्या सब अटकलें, यह वृत्ति है बाधक।

निर्णय करो स्वानुभव करो, यह वृत्ति है साधक॥
साधना सम्यक् करो, ध्रुव साध्य को पाओ॥ 9॥

(448)

जिनके हृदय जिनराज बसे, उनको भय कैसे हो।
जिन स्वयं सिद्ध चिद्रूप लखा, उनको भय कैसे हो।। टेक।।
अग्नि जलावे मात्र देह को, पानी देह गलावे,
योद्धा मारे मात्र देह को, मुझे न छूने पावे।
यों चिंतन करते हैं ज्ञानी, निज में निर्भय हो।। उनको.।। 1।।
चोर चुरावे बाह्य सम्पदा, मम वैभव अविनाशी,
लक्षपती अपनी लक्ष्मी से, रहूँ सदैव अयाची।
भेदज्ञान वर्ते अंतर में, तृप्त स्वयं में हो।। उनको.।। 2।।
कर्म रोग ही जिसे न होवे, बाह्य रोग क्यों होवे,
अशरीरी प्रभु ज्ञान शरीरी, नित्य निरंजन शोभे।
सहज ज्ञान का ही वेदन, दुर्वेदन अन्य न हो।। 3।।
गुप्त सहज ही निज स्वभाव में, पर का नहीं प्रवेश,
पूर्ण ज्ञानघन,नहीं स्वयं में पर भावों का लेश।
स्वाभाविक प्रभुता से ही, प्रभु पामरता रंच न हो।। 4।।
ज्ञायकमय ही लोक है शाश्वत, शाश्वत वास करें,
ज्ञानमयी साम्राज्य सदा, निष्कंटक राज्य करें।
पूर्ण सहज ही तृप्त सहज ही, नित जयवन्त अहो।। 5।।

(449)

हे परमात्मन्! तुझको पाकर अब मुझको चिन्ता ही क्या।
अपना प्रभु निज माँहि दिखावे, बाह्य जगत में देखूँ क्या।। टेक।।

सहज ज्ञानमय, सहजानन्दमय परम प्रभु शुद्धात्मा,
पर भावों से न्यारा, निरूपम शुद्ध-बुद्ध परमात्मा।
चिद्विलासमय अपने घर से, अब मैं बाहर जाऊँ क्या।। 1 ।।
ज्ञानमात्र भी अनेकान्तमय, अद्‌भुत प्रभुतावान है,
परम ज्योतिमय, सहज मुक्त है, ध्येय रूप भगवान है।
निज परमातम को तजकर, मैं अन्यभाव को ध्याऊँ क्या।। 2।।
जग की सुनते मोह पुष्ट कर, भव-भव में दुःख पाया है,
महाभाग्य जिनवाणी पाई, भेद-विज्ञान जगाया है।
परमानन्द निज में ही पाया, पर भावों में पाऊँ क्या।। 3।।
नित्य शुद्ध सम्पदा स्वयं में, आदि न अन्त दिखाता है,
धन्य हुआ कृतकृत्य हुआ, अब बाहर कुछ न सुहाता है।
तृप्त स्वयं में, तुष्ट स्वयं में, क्षणभंगुर को चाहूँ क्या।। 4।।
कोलाहल निस्सार जान, परिणाम स्वयं ही शान्त हुआ,
होने योग्य सहज ही होवे, अब विकल्प कुछ नहीं रहा।
सहज चैतन्य विलासमयी, निज शुद्धातम ही भाऊँ सदा।। 5।।

(450)

(तर्ज : अरे जिया जग धोखे की टाटी...)

भविजन काहे को मोह करे॥ टेक॥
पर तो पर अपना नहीं होवे, भिन्न सदैव रहे।
है स्वाधीन परिणमन सबका, तू कुछ नाहिं करे॥ 1॥
इष्ट-अनिष्ट कल्पना करके, राग अरु द्वेष करे।
तिन निमित्त से कर्म बन्ध कर, जन्मे और मरे॥ 2॥
साँचे देव-धर्म-गुरु जाने, तत्त्व प्रतीति धरे।
भेदज्ञान कर करे स्वानुभव, परमानन्द भरे॥ 3॥

भावे नित वैराग्य-भावना, पद निर्ग्रन्थ धरे।
आप-आप में लीन होय कर, भव से सहज तरे॥ 4॥

(451)

(तर्जः आत्मा हूँ, आत्मा हूँ, आत्मा...)

मोह दुःखमय दुख का कारण कहा।
आत्मा ही सदा सुखमय है अहा॥ टेक॥
भूल आतम को अरे भ्रमता रहा,
बीज दुःख के ही सदा बोता रहा।
अब निहारो आत्मा अपना अहा॥ 1॥
मलिन हैं सेवाल सम आश्रव सभी,
हो सकें नहीं सुख के कारण कभी।
शुद्ध चिन्मय आत्मा ही है सदा॥ 2॥
छोड़ आश्रय अब अरे पर भाव का,
अनुभवन कर सहज पंचम भाव का।
सिद्ध सम पंचम गति पावे अहा॥ 3॥
जग प्रपंचों से रहित मुनिवर अहो,
पंचाचारों से सुशोभित साधु जो।
सतत् आराधें ध्रुवातम ही अहा॥ 4॥
छोड़कर कर्त्तृत्त्व मिथ्या सब अरे,
मति व्यवस्थित कर सहज ज्ञाता रहो।
निर्विकल्प आनंदमय रहता अहा॥ 5॥
जिनागम का सार, मुक्तिमार्ग यह,
है परम सत्यार्थ अरु परमार्थ यह।
यह समय का सार मंगलमय अहा॥ 6॥

(452)

मिथ्या मोह निवारो चेतन, मिथ्या मोह निवारो॥ टेक॥
पर से कुछ सम्बन्ध नहीं है, सहज पूर्ण है सारो।
मिथ्या है कर्त्तृत्व तुम्हारो, दुर्विकल्प निरवारो॥ 1॥

ज्ञाता-दृष्टा रूप त्रिकाली, अपनो भाव सम्हारो।
अपना है सर्वस्व स्वयं में, सहज सिद्ध अविकारो॥ 2॥
मिथ्या इष्ट-अनिष्ट कल्पना, राग-द्वेष दुःखकारो।
ये ही नये बन्ध का कारण, परम गुरु उच्चारो॥ 3॥
कर संवर निर्जरा ज्ञानमय, आवागमन विडारो।
ध्रुव और अचल सिद्ध पद पावो, जो है सबसे न्यारो॥ 4॥

(453)

रत्नत्रय ही सच्चा धन है, भव्य कमाओ अंतर में।
महाभाग्य जिनशासन पाया, भव्य कमाओ अंतर में॥ टेक॥
देखो रत्नत्रय के धारक, श्री मुनिवर हैं महासुखी।
रत्नत्रय की हुई पूर्णता, श्री जिनवर हैं परम सुखी॥
रत्नत्रय धारक श्रावक भी हैं, संतोषी सहज सुखी।
रत्नत्रय के बिना जगत के, जीव अज्ञानी सदा दुःखी॥
रत्नत्रय ही अक्षय वैभव, भविजन पाओ अंतर में॥ 1॥
बाह्य विभूति तो नश्वर है, तृष्णा अरु मद उपजाती।
अति संक्लेश रहे भावों में, भव-भव में नित भरमाती॥
अतः ज्ञानियों ने जड़ वैभव, तृण सम क्षण भर में छोड़ा।
सारभूत निज शुद्धातम में, निज उपयोग सहज जोड़ा॥
गुण अनंतमय वैभव पाया, अविनाशी निज अंतर में॥ 2॥
सम्यग्दर्शन मूल धर्म का, सम्यग्ज्ञान प्रकाशक है।
चारित्र ही साक्षात् धर्म है, सर्व दुःखों का नाशक है॥

वीतराग सर्वज्ञ देव, अरु गुरु निर्ग्रन्थ अहिंसा धर्म।
स्याद्वादमय श्री जिनवाणी, समझो सहज तत्त्व का मर्म॥
भेदज्ञान कर करो स्वानुभव, मुक्तिमार्ग है अंतर में॥ 3॥
आत्मन्! बाहर सुख न मिलेगा, व्यर्थ न भटकाओ मन को।
ज्ञानाभ्यास करो मनमाँहि, मिथ्या मोह तजो पर को॥
निज पद भाओ निज पद ध्याओ, शिवपद सहज ही पाओगे।
तुम स्वभाव से हो परमातम, परमातम कहलाओगे॥
निश्चय ही भगवान कह रहे, पाने योग्य है अंतर में ॥ 4॥

(454)

निरपेक्ष रहो, निरपेक्ष रहो, निज से ही निज में तृप्त रहो॥ टेक॥
निरपेक्ष शक्तियाँ वस्तु की, निरपेक्ष परिणमन वस्तु का।
नहीं रखो अपेक्षा कुछ पर से, आराधन में ही मग्न रहो॥ 1॥
पर से कुछ भी नहिं होता है, पर के बिन कुछ नहीं रुकता है।
स्वाधीन परिणमन वस्तु का, श्रद्धान अटल ऐसा ही हो॥ 2॥
जैसा मुख वैसा ही दर्पण में, सहजपने प्रतिभासित हो॥
हमको भी वैसा ही मिलता, जैसा व्यवहार स्वयं का हो॥ 3॥
रे कूप में जैसी ध्वनि करता, प्रतिध्वनि भी वैसी आती है।
भूमि में जैसा बोता है, वैसा ही सहज अंकुरित हो॥ 4॥
अच्छा सोचो, अच्छा बोलो, तब तुम भी अच्छा पाओगे।
रे! बुरे विचारों का दुष्फल तो, जग में सदा बुरा ही हो॥ 5॥
आसक्त रहे जो जड़ तन में, वह पुनः पुनः तन धरता है।
जो तन-मन से न्यारा ध्यावे, वह मुक्त सर्व कर्मों से हो॥ 6॥

पर-आश्रय से जो दुखी रहे, वह भव-भव में दुःख पाता है।
जो भेदज्ञान को भाता है, उसको स्वाश्रय से ही सुख हो॥ 7॥
आत्मन्! उत्तम अवसर आया, निज को समझो दुर्मोह तजो।
अपना सर्वस्व है अपने में, अपने में ही संतुष्ट रहो॥ 8॥

(455)

जानो-जानो-जानो, जाननहार को जानो॥ टेक॥
होवेगा तब ही कल्याण, यह ही जिन-उपदेश महान।
शुद्धातम है ज्ञानमय, सहज सदा कल्याणमय॥
अपना रूप पिछानो॥ 1॥
रागादि निःशेष हुए हैं, वीतराग सर्वज्ञ हुए हैं।
अनन्त चतुष्टयवन्त, प्रगट सुगुण अनन्त हुए हैं॥
देव उन्हीं को मानो॥ 2॥
विषयाशा-आरम्भ नहीं, ज्ञान-ध्यान-तप लीन सही।
शुद्धातम को ध्याते, मुक्तिमार्ग दर्शाते॥
गुरु निर्ग्रन्थ पिछानो ॥ 3॥
स्याद्वादमय हितकारी, तत्त्व बतावें अविकारी।
पाप क्रिया से शून्य शुद्ध है, समझे से हो प्रतिबुद्ध है॥
जिनवाणी श्रद्धानो ॥ 4॥
इनको सदा हृदय में धरना, भक्ति और भावना करना।
तत्त्व प्रयोजनभूत पिछानो,स्वयं-स्वयं को स्वयं में जानो॥
सुख अतीन्द्रिय मानो॥ 5॥

(456)

सम्बोधन!

पर की चिन्ता त्याग आत्मन्! आतम हित में लाग।
तोड़ सकल जग द्वन्द-फन्द तू निज स्वभाव में पाग॥ टेक॥
पर से कुछ सम्बन्ध नहीं है, स्व-स्वामित्व अभाव।
नहीं कर्त्तृत्व सु दो द्रव्यों में, है अत्यन्ताभाव॥ 1॥
कार्य विकल्पों से नहीं होवे, है स्वाधीन स्वभाव।
होने योग्य सु होय परिणमन, आराधो निज भाव॥ 2॥
निज-निज कर्मों के फल से ही, बने अनादि बनाव।
कर्म न कोई देवे लेवे, तू क्यों करे विभाव॥ 3॥
सभी जीव दुःख-सुख को वेदें, जैसे होवें भाव।
अज्ञानी नित रहे आकुलित, भले करे सुख चाह॥ 4॥
ज्ञानी भेदज्ञान के बल से, धारें समता भाव।
पूर्व कर्म तब झड़ते जावें, ये ही सत्य उपाय॥ 5॥
अखिल विश्व में कुछ भी करने का, न दिखे अवकाश।
दृष्टा-ज्ञाता रहो सहज ही, सुख है अपने पास॥ 6॥
भूल स्वयं को जो दुःख पावे, सुखी करे फिर कौन।
निजानंद रस निज में वेदे, दुःखी करे फिर कौन॥ 7॥
रहो सहज निर्भार आत्मन्, झूठे अध्यवसान।
ये संसार चलेगा यों ही, साधो साध्य महान॥ 8॥

(457)

प्रभु जैसा ही ध्यान लगावें,
भक्त नहीं हमको प्रभु बनना॥ टेक॥
वस्तु न कोई सुख-दुःख दाता,
व्यर्थ जगत में मैं भरमाता।
आतम को आतम में साता,
सुख अतीन्द्रिय मुझको भरना॥ 1॥
जो होना है सो ही होता,
मैं तो मूर्खपने से रोता।
धर्मध्यान का अवसर खोता,
अब न मुझे कुछ विकल्प करना॥ 2॥
यह भव पाया भव हरने को,
पावन रत्नत्रय धरने को।
समता रस आस्वादी बनकर,
निज शाश्वत शिव पद को वरना॥ 3॥

(458)

(तर्ज : दिन-रात मेरे स्वामी)

प्रभु सहज भावना है, जीवन सहज-सहज हो।
होवे नहीं आडम्बर, निर्ग्रन्थता सहज हो॥ 1॥
निरपेक्ष तत्त्व अपना, होवे न कुछ अपेक्षा।
वर्ते सु ज्ञानधारा, आराधना सहज हो॥ 2॥
परिपूर्ण प्रभु सदा ही, स्वयमेव स्वयं में ही।
निज में ही पूर्णता का, प्रभु अनुभवन सहज हो॥ 3॥

होवे न कोई वाँछा, जागें नहीं कषायें।
प्रभु साम्य भाव वर्ते, आनन्द भी सहज हो॥ 4॥
एकाकी तृप्त निज में, नहीं संग की जरूरत।
शाश्वत स्व-ध्येय अनुपम, प्रभु ध्यान भी सहज हो॥ 5॥
नाशें कर्म सहज ही, अविनाशी प्रभुता प्रगटे।
निर्मुक्त नित-निरंजन, प्रभु सिद्ध पद सहज हो॥ 6॥

(459)

सहज रहो, कुछ नहीं कहो।
अन्तर व्यर्थ विकल्प न हों॥
शान्त रहो तृप्त रहो, निज में ही सन्तुष्ट रहो॥ टेक॥
कहने से कुछ लाभ नहीं।
पर से अपना कार्य नहीं॥
पर की मिथ्या आस तजो॥ निज में.॥ 1॥
अपने-अपने भावों से।
जीव सुख-दुःख सर्व लहे॥
राग-द्वेष कुछ नहीं करो॥ निज में.॥ 2॥
दुर्लभ अवसर पाया है।
जिनशासन मन भाया है॥
अब सम्यक् पुरुषार्थ करो॥ निज में.॥ 3॥
निज अन्तर में ही देखो।
द्रव्यदृष्टि से तुम देखो॥
अक्षय प्रभुता सहज लहो॥ निज में.॥ 4॥

(460)

आत्मा सदाकाल निरोग।

क्यों उलझे तू पर उलझन में, निज का आनन्द छोड़॥ टेक॥
राग रूप पुद्गल की परिणति, जोड़ न निज उपयोग।
है अन्यत्व सदा ही पर से, नहीं संयोग-वियोग॥ 1॥
जो संयोगी भाव रागादिक, वही महा भव-रोग।
द्रव्यदृष्टि से तुरंत नष्ट हो, फिर क्या करण योग॥ 2॥
ठंडे-गरम कठोर-मुलायम, मीठे सरस मनोग।
गंध रूप स्वर अक्ष विषय हैं, तू नहीं इनको भोग॥ 3॥
कर्मों को जो संचित करता, विकृत योग-उपयोग।
वे भी नहीं स्वभाव आत्म का, होता है पर योग॥ 4॥
तेरा ध्रुव ज्ञायक स्वभाव ही तेरा सुन्दर भोग।
प्रतिक्षण उसका अनुभव करना, आज मिला शुभ योग॥ 5॥

(461)

ऐसो ज्ञानी क्यों न महासुख पावे।

बाहिर जाको कछु न सुहावै, निज की महिमा आवे॥ टेक॥
सच्चे देव-शास्त्र-गुरुवर की, सम्यक् श्रद्धा लावे।
सात तत्त्वों को ज्यों के त्यों माने, स्व-पर विवेक करावे॥ 1॥
स्वानुभूतिमय आत्म प्रतीति, जाके उर प्रगटावे।
क्षण-क्षण चिन्तन करे तत्त्व का, चरित मोह घटावे॥ 2॥
उदासीन हो मुनिपद धारे, शुद्धोपयोग बढ़ावे।
मुख्य रूप से निज में निज से, निज को निजमय ध्यावे॥ 3॥

शुक्लध्यान बल क्षपक श्रेणी चढ़ि, परमातम पद पावे।
आत्म तत्त्व की अद्भुत महिमा, भविजन को दरसावे॥ 4॥
होय अयोगी नाशी अघाति, सिद्धालय तिष्ठावे।
काल अनन्तानन्त विराजे, फेरि न भव में आवे॥ 5॥

(462)

जितना देखेगा बाहर में, उतना होगा हैरान ही तू।
तुझ में दुःख का अस्तित्व नहीं, क्यों व्यर्थ अरे परेशान है तू॥ टेक॥
ज्यों सींग नहीं खरगोशों के, जग भर में कहीं देखे जाते।
पर में तेरा सुख लेश न त्यों, खुद ही अनंत सुख खान है तू॥ 1॥
ज्यों-ज्यों दौड़े आगे दिखता, कोरा भ्रम पानी नहीं मिले।
त्यों विषय सुख मृग-तृष्णा सम, क्यों मूढ़ गँवावे जान ही तू॥ 2॥
ज्यों शराबी सोचे मद्य बिना, नहीं चैन मुझे मिल सकता है।
त्यों भूल सहज सुख मान विषय सुख, आज बना हैवान है तू॥ 3॥
अब दूर ही रहना भव्य जरा, वैतरिणी सम दाहोत्पादक।
ऊपर-ऊपर रमणीक लगे, पर मान इन्हें विष खान ही तू॥ 4॥
भो 'आत्मन्'! अब भी भ्रम छोड़ो, निज ज्ञानानन्द स्वभाव लखो।
पर्याय दृष्टि अब गौण करो, अनुभव कर खुद भगवान है तू॥ 5॥

(463)

(तर्जः शुद्धात्मा ही शरणा...)

प्रभु! स्वाश्रित जीवन हो, स्वानुभवमय जीवन हो।
निस्पृह निरपेक्ष सहज, मंगलमय जीवन हो॥ टेक॥
दुर्भोगों में फँसकर, जीवन अनन्त खोये,
तृप्ति न मिली क्षणभर, दुःख के ही बीज सदा बोये।
धिक् विषय-कषायों को, निवृत्तिमय जीवन हो॥ 1॥

झूठी मृगतृष्णा दुःखमय पर की आशा,
आशा तृष्णा से ही हो चहुँगति में वासा।
अनुबन्ध नहीं कोई सन्तोषी जीवन हो॥ 2॥
विभु! भव-भव की पीड़ा, अब नहीं सही जाती,
प्रभुतामय थिरतामय तब शान्त दशा भाती।
ध्रुवदृष्टि शुद्धोपयोग, पुरुषार्थी जीवन हो॥ 3॥
पर-आश्रित मोह अरु क्षोभ, स्वाश्रय से सहज मिटे,
दुःखमयी भव-बन्धन, स्वाश्रय से सहज कटे।
निर्ग्रन्थ निराकुल प्रभु समतामय जीवन हो॥ 4॥
स्वाधीन स्वयं में ही अनुभव-रस पान सदा,
झलके सब विश्व भले, निज में ही मग्न सदा।
बस सर्व विकल्पों से, प्रभु तुम सम जीवन हो॥ 5॥

(464)

अहो! स्वाश्रय से हो पुरुषार्थ।
द्रव्यदृष्टि से ही आत्मन् प्रगटेगा सुख परमार्थ॥ टेक॥
पुरुष आत्मा अर्थ प्रयोजन, सुख के हेतु सभी आयोजन।
जब तक नहीं पहचान स्वयं की, झूठा सब पुरुषार्थ॥ 1॥
वस्तु स्वभाव सहज ही रहता, काललब्धि भवितव्य भी होता।
निमित्त भी होता है पर निश्चय ही प्रधान पुरुषार्थ॥ 2॥
जब आतम का अनुभव जागे, आनंद रस में परिणति पागे।
तब निज में ही स्थिरता का, स्वयं जगे पुरुषार्थ॥ 3॥
बिन पुरुषार्थ मुक्ति नहीं होना, व्यर्थ पराई आशा करना।
तज प्रमाद अरु आस पराई, कर सम्यक् पुरुषार्थ॥ 4॥

देव-धर्म-गुरु श्रद्धा करके, भेद-विज्ञान चित्त में धरके।
तत्त्व विचार करो स्वानुभव से, सफल करो पुरुषार्थ॥ 5॥
निमित्तादि सब स्वयं मिलेंगे, गुणस्थान भी सहज चढ़ेंगे।
सब संकल्प-विकल्प छोड़कर, साधो इक परमार्थ॥ 6॥

(465)

भैया मेरे सम्यक् रतन सम्भालो।
परमानन्दमय निज महिमा लख, उत्तम संयम पालो॥ टेक॥
हीरा-पन्ना-माणिक-मोती, ये पुद्गल की पर्यायें।
इनको रत्न न कहते ज्ञानी, व्यर्थ मूढ़ ही भरमाये॥ 1॥
सच्चे देव-शास्त्र-गुरुवर, व्यवहार रत्न सुखदाई।
उपकारी भव-भ्रान्तजनों को, मुक्ति राह दिखाई॥ 2॥
सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरित्र ही, रत्न अमोलक मानो।
इनको जो पहिचाने सो ही, सच्चा जौहरी जानो॥ 3॥
दुर्लभ नरभव रत्न पायकर, धर्म रतन ले लेना।
नादानी से विषय सिन्धु में, नहीं फैंक तुम देना॥ 4॥
गुण रत्नों की खान निजातम, अन्तर दृष्टि लावो।
गहराई में ही निमग्न आनन्द अपूर्व सुपावो॥ 5॥

(466)

ओम् जय-जय अविकारी, स्वामी जय-जय अविकारी।
हितकारी भयहारी शाश्वत स्व-विहारी॥ 1॥
काम-क्रोध-मद-लोभ न माया समरस सुखधारी।
ध्यान तुम्हारा पावन सकल क्लेश हारी॥ 2॥
हे स्वभावमय जिन तुम चीना भव संतति टारी।
तुम भूलत भव भटकत, सहत विपत भारी॥ 3॥

पर सम्बन्ध-बंध दुःख कारण करत अहित भारी।
परम ब्रह्म का दर्शन चहुँगति दुःखहारी॥ 4॥
ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन मुनिमन संचारी।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचि गुण भंडारी॥ 5॥
बसो-बसो हे सहज ज्ञान घन सहज शान्तिधारी।
टले-टले सब पातक पर बल-बलधारी॥ 6॥

(467)

सुख का है यही उपाय मात्र।
नहिं पर का करो, ना निज का करो॥ टेक॥
हैं तेरे विकल्प निरर्थक ही,
चलते पटिये में हाथ न दो।
निज ज्ञाता रूप लखो चेतन,
कर्त्तृत्व रहित आनन्दित हो॥ 1॥
आत्मा नहीं होय पराया कभी,
पर द्रव्य कभी अपना नहीं हो।
कर भेद-विज्ञान अहो 'आत्मन्'
तुम स्वयं-स्वयं में तृप्त रहो॥ 2॥
जब ज्ञायक हूँ अनुभव होवे,
तब दुर्विकल्प उत्पन्न न हो।
नहीं इष्ट-अनिष्ट दिखे कोई,
हो सकल विश्व ही ज्ञेय अहो॥ 3॥
निर्भेद अखेद अखण्ड प्रतापी,

वैभवमय शुद्धात्म प्रभो!
बस ध्यान का ध्येय रहे अविरल,
परमातम दशा तब सहजहिं हो ॥ 4 ॥
अब नहीं कामना किंचित् भी,
उपयोग स्वयं में ही थिर हो।
निर्द्वन्द्व स्वयं में तृप्ति मयी,
प्रभु! कालावली अनन्त सु हो ॥ 5 ॥

(468)

(तर्ज : प्रभो! आप सा कोई दाता)

दया कर-दया कर दया धर्म, हम आए हुए हैं शरण में तिहारी ॥ टेक ॥
नहीं हमने अपना समयसार जाना, सदा पर पदार्थों में अपनत्व माना।
उन्हें याद करते रहे रात-दिन हम, जिन्हें सर्वदा के लिए था भुलाना ॥
अहो! मूल में ही रही भूल भारी ॥ हम. ॥ 1 ॥
प्रभो! कर्म मेरे घिरे आश्रवों से, रही प्रीति मेरी सदा अध्रुवों से।
मिलेगा उन्हें देव विस्तार कैसे, बहे लोक सागर में टूटे प्लावों से ॥
संभालो खिवैया यह नैया हमारी ॥ हम. ॥ 2 ॥
सुलभ हो मुझे भेद-विज्ञान अपना, पृथक् पुद्गलों से समय का परखना।
करूँ आत्म चिन्तन तरूँ जन्म सागर, वरूँ मोक्ष लक्ष्मी को निर्वाण पाकर ॥
कृपा नाथ तुमसा बनूँ सिद्धिधारी ॥ हम. ॥ 3 ॥
सुना देव तारण-तरण नाम तेरा, इसी से लिया है चरण में बसेरा।
तुम्हीं सुप्रभातं, तुम्हीं हो सबेरा, तुम्हीं ने प्रभो कर्म पथ को निवेरा ॥
कहाँ तक कहें नाथ महिमा तुम्हारी ॥ हम. ॥ 4 ॥

(469)

प्रभु यही भावना होती है[2],
ऐसा आने वाला पल हो, प्रभु यही भावना होती है।
हो परिणति परिणति ज्ञानमयी, जीवन अनंत आनंदमय हो॥ टेक॥
भ्रमते-भ्रमते चिरकाल हुआ, सुख की न मिली किंचित् छाया।
झूठे संकल्प-विकल्पों में, अकुलाया व्यर्थ ही भरमाया॥
सौभाग्य महा जिनधर्म मिला, प्रभु यही भावना होती है॥ 1॥
दृष्टि स्वभाव पर टिकी रहे, आचरण ज्ञान समतामय हो।
प्रभु स्वयं स्वयं में तृप्त रहूँ पर की किंचित् अभिलाष न हो॥
निर्ग्रन्थ रहूँ निर्द्वन्द्व रहूँ प्रभु, यही भावना होती है॥ 2॥
निज वैभव मैं सन्तुष्ट रहूँ, बस निजानंद में लीन रहूँ।
हो कर्त्ता-कर्म अनन्य सहज ही ज्ञाता-दृष्टा मात्र रहूँ॥
भोगों की वांछा लेश नहीं, प्रभु यही भावना होती है॥ 3॥
वैराग्य भाव अन्तर वर्ते, निर्ग्रन्थ मार्ग अनुसरण करूँ।
भाते-भाते चैतन्य भावना, अक्षय शिव सुख वरण करूँ॥
हो चुका थकित भव-भव भ्रमते, प्रभु यही भावना होती है॥ 4॥

(470)

आया है अवसर समझो स्वयं को।
आया है अवसर धारो धरम को॥ टेक॥
दुर्लभ है संज्ञित्व, दुर्लभ जिनागम,
दुर्लभ है अनुकूलता और समागम।
जिनदेशना सुन जानो मरम को॥ 1॥
आलस्य छोड़ो, पुरुषार्थ ठानो,

प्रयोजन भूत सु तत्त्व पिछानो।
कर भेद-विज्ञान त्यागो भरम को॥ 2॥
प्रभुतामयी शुद्ध आतम विचारो,
प्रभुतामयी परमातम निहारो।
स्वानुभूति पाओ नाशो करम को॥ 3॥
जिन दर्श कर जिन भावना भाओ,
विज्ञानघन से निवृत्ति बढ़ाओ।
निर्ग्रन्थ विचारो तजो जग शरम को॥ 4॥
समयसार ध्याओ, समयसार पाओ,
निजानंद में लीन, अविचल रहाओ।
स्वाश्रय से पाओ, सहज पद परम को॥ 5॥

(471)

मत सुनो जगत की चेतन, दे प्रभु वचनों पर ध्यान।
पर से उपयोग हटाओ, निज में ही निज का ज्ञान॥
निज में ही निज का दर्शन, निज में ही निज का ज्ञान।
निज में स्थिरता चारित निज में ही पद निर्वान॥ 1॥
सब अपनी-अपनी कहते, खुद मोह वेग में बहते।
नहीं वस्तु स्वभाव पिछाने, आकुलित व्यर्थ ही होते॥
तू भी ममता में फंसकर, निज लक्ष्य चूक नहिं जाना।
दुर्लभ अवसर पाया है, अब करो भेद विज्ञान॥ 2॥
ज्यों वीर न पीछे देखे, आगे ही बढ़ते जाते।
विघ्नों से नहीं डरावें, लालच में भी न फँसते॥

त्यों पर की ओर न देखो, पापोदय से न डरना।
पुण्योदय के वैभव में, किंचित् भी अटक न जाना॥ 3॥
अत्यन्ताभाव सदा ही पर से नहीं लेना-देना।
नहीं इष्ट-अनिष्ट कभी भी झूठी भ्रान्ति तज देना॥
निज विकल्प भी दुखदायी समता से ही सुख पाना।
संकल्प-विकल्प नहीं हों, निज में ही दृष्टि लगाना॥ 4॥
कोई नहीं साथी जग में, दुःख में नहीं हाथ बँटावे।
जिनका आश्रय करके तू निशदिन बहु पाप कमावे॥
वे सब ही होंगे न्यारे, फल इकले को ही पाना।
अब भी चेतो रे चेतन, नहीं आवे काम बहाना॥ 5॥
अब व्यर्थ दीनता छोड़ो, अपनी शक्ति पहिचानो।
पर की आशा है झूठी, पुरुषार्थ स्वयं ही ठानो॥
जिनदेव-शास्त्र-गुरुवर का, श्रद्धान हृदय में लाना।
तत्त्वों का करके निर्णय, फिर करो भेद-विज्ञाना॥ 6॥
आत्मानुभूति को पाकर, सम्यक्त्व ज्योति प्रगटाओ।
चिरकाल का मोह अंधेरा, क्षण भर में दूर भगाओ॥
फिर जग से उदासीन हो, निर्ग्रन्थ दशा प्रगटाना।
सब अन्तर्जल्प मिटाकर, ज्ञायक में ही रम जाना॥ 7॥
उपसर्ग परीषह होवें किंचित् भी नहीं चिगाओ।
हो क्षपक श्रेणी आरोहण, अरहंत दशा तब पायो॥
जग भर के भावि जीवों को मुक्तिमार्ग दिखाना।
फिर 'आत्मन्' होय अयोगी, निर्वाण परम पद पाना॥ 8॥

(472)

(तर्ज : बार बार श्री गुरु समझावें...)

आया अवसर भव्य समझ लो, जिन-आगम का सार।
स्वानुभूति ही मंगलमय है, तिहुँ जग मंगल कार॥ टेक॥
वीतराग सर्वज्ञ देव ही, धर्म तीर्थ दातार।
गुरु निर्ग्रन्थ परम हितकारी, धर्म अहिंसा सार॥ 1॥
स्याद्वादमय श्री जिनवाणी, कहे तत्त्व अविकार।
मोहादिक हैं हेय बताये, वीतरागता सार॥ 2॥
ज्ञान मात्र भी अनेकान्तमय, आतम तत्त्व विचार।
श्रद्धो भाओ ध्याओ भविजन, यही समय का सार॥ 3॥
चमत्कार चैतन्य प्रभु का, अद्‌भुत आनन्दकार।
स्वयं जानते सबको जाने, निर्विकल्प अविकार॥ 4॥

(473)

चेतन स्वयं बनो भगवान, नैक जल्दी निर्णय कीजो।
बीतो बीतो रे जमानो, नैक जल्दी निर्णय कीजो॥ टेक॥
कौन को चेतन भूल गयो है, कौन को अपना माना।
शुद्धातम को भूल गया है, पर को अपना माना॥ 1॥
काहे में तूने सुख माना, काहे में दुःख जाना।
भोगों में तूने सुख माना, कष्ट धर्म में जाना॥ 2॥
इह विधि दुःख को अन्त न आवे, व्यर्थ नहीं भरमाना।
पर में सुख नहीं है तेरा, फिर कैसे हो पाना॥ 3॥
यदि सुख की अभिलाषा चेतन, कर तू भेद-विज्ञाना।
आतम श्रद्धा अनुभव थिरता, करो बनो भगवाना॥ 4॥

(474)

(तर्ज : लखी लखी...)

आओ भविजन आओ-आओ मुक्तिमार्ग में आओ।
लोकोत्तम जिनशासन पाया, भेदज्ञान प्रगटाओ॥ टेक॥
देह भिन्न है, जीव भिन्न है, ऐसी श्रद्धा लाओ।
रागादिक से भिन्न ज्ञानमय, शुद्ध निजातम ध्याओ॥ 1॥
शिवकारण अरु शिव स्वरूप, आतम-अनुभव प्रगटाओ।
उदासीन हो भव-भोगों से, तत्त्व भावना भाओ॥ 2॥
तजो कुसंग सु सत्संगति से, ज्ञानाभ्यास बढ़ाओ।
निज स्वभाव का आश्रय लेकर, दृढ़ वैराग्य सुहायो॥ 3॥
हो निःशंक निर्भय निर्वांछक, मुनिपद को अपनाओ।
हो निशल्य निर्द्वन्द्व निराकुल, निर्मल ध्यान लगाओ॥ 4॥
जीतो सब उपसर्ग परीषह, कर्म कलंक नशाओ।
आतम गुण प्रगटाओ प्रभु सम, स्वयं प्रभु बन जाओ॥ 5॥

(475)

चेतन! अब तो मोह को छोड़ो ॥ टेक॥
साँचे देव-धर्म-गुरु ध्याओ, तत्त्वों का निर्णय उर लाओ।
भेदज्ञान कर स्व-पर भाव का, बाहर से मुख मोड़ो॥ 1॥
बाह्य जगत में सार नहीं, पर में तेरा व्यापार नहीं है।
उदासीन हो अंतर में ही, सहज परिणति जोड़ो॥ 2॥
रसिक जनों को अति ही रुचिकर, भव्यों को है अति ही हितकार।
चिदानंद रस को आस्वादो, दुर्विकल्प सब तोड़ो॥ 3॥
ये देहादि पड़ोसी सम हैं, कर्म भिन्न रागादि विषम हैं।
ध्रुव ज्ञायक अपना पहिचानो, झूठी ममता तोड़ो॥ 4॥

कौतूहली तत्त्व का होकर, निज शुद्धातम का अनुभव कर।
जीवन सफल करो शिव पाओ, भव-भ्रमण को छोड़ो॥ 5॥

(476)

ऐसो मोही क्यों ना महादुख पावे।
निज स्वभाव पहिचान न जाके, पर की महिमा आवे।। टेक।।
प्रभु सी प्रभुता का स्वामी हो, दीन भयो भरमावे,
प्राप्त परिणति में तन्मय हो, पर में ममत्व धरावे।
निजानन्द रस स्वाद ना मोचा, अक्ष विषय मन भावे,
तिनही में नित उद्यम करता, नरभव व्यर्थ गँवावे।। 1।।
पुण्योदय में फिरे भटकता, पाप उदय अटकावे,
पुण्य-पाप तें रहित ज्ञानमय, निज स्वभाव विसरावे।
लीन भयो व्यवहार माँहि, नहिं निश्चय दृष्टि सुहावे,
राग भाव में धर्म मानकर, निज पद नाहीं ध्यावे।। 2।।

(477)

आतम अनुभव करना रे भाई ! निज का अनुभव करना रे।
आतम अनुभव नहीं किया तो, भव-भव में दुःख भरना रे।। टेक।।
बहुत बार जिन-पूजन कीनी, शास्त्र अनेक सु-पढ़ डाले।
मुनिव्रत भी धारण करके, फिर घोर परीषह भी झेले।।
लेकिन आतम ज्ञान बिना नहीं, ये भव सागर तिरना रे।। 1।।
सुख विशेष गुण है आतम का,आतम में ही रहता है।
तन-मन-धन के किसी भाग में, कभी न पाया जाता है।।
इसीलिए ज्ञानी जन कहते, आतम सन्मुख होना रे।। 2।।

तूने अपनी शक्ति खोई, झूठे व्यर्थ विकल्पों में।
शान्ति न किंचित् मिली अभी तक इन मिथ्या संकल्पों में।।
आकुल-व्याकुल हुआ आत्मन्! अब इनको परिहरना रे।।3।।
अहो! स्वानुभव सार जगत में, सच्चा सुख प्रदाता है।
जो निज में ही स्थिर होता, स्वयं मुक्ति पद पाता है।।
अहो! सुखार्थी महामहिम शुद्धातम शरणा लेना रे।। 4।।

(478)

आत्मा स्वतंत्र है, सत्ता स्वतंत्र है, स्वरूप स्वतंत्र है, परिणमन स्वतंत्र है॥ टेक॥
कण-कण स्वतंत्र है, यही जिन तंत्र है।
वस्तु का स्वभाव यही, सुख का उपाय यही ॥ 1॥
आगम से जानो, गुरुओं से जानो।
युक्ति से पिछानो, कर स्वानुभव श्रद्धानो ॥ 2॥
कहा भगवान यही, साँचा कल्याण यही।
मुक्ति का विधान यही, धर्म का आधार यही॥ 3॥
विश्व है अनादि-निधन, छह द्रव्य अनादि-निधन।
सात तत्त्व अनादि-निधन, धर्म है अनादि-निधन॥ 4॥
जब होवे भेदज्ञान, तब ही हो धर्मध्यान।
मोह का हो अवसान, जीव होवे भगवान॥ 5॥
ये ही परम साध्य है, शुद्धात्मा आराध्य है।
ज्ञेय श्रद्धेय ध्येय निज आत्मा ही श्रेय है॥ 6॥
विकल्पों से बस हो, कषायों से वश हो।
पर से अवश हो, आत्मन्! स्व वश हो॥ 7॥

(479)

(तर्ज : प्रभु बाहुबली...)

क्या-क्या कहूँ निज वैभव की, निज वैभव है अनुपम जग में।
जिनने विश्वास किया ध्याया,शाश्वत सुख पाया क्षण भर में।। 1।।
निज को भूले भव-भव भटके, निज पहिचाने शिवमग प्रकटे।
सिद्धत्व स्वभाव के आश्रय से, सिद्धत्व दशा पावे क्षण में।। 2।।
जब सम्यग्ज्ञान प्रकाश होय, मिथ्यात्व तिमिर नहीं दिखता है।
तब अक्ष विषय तो दूर रहें, नहीं किंचित् प्रीत रहे तन में।। 3।।
सुख बुद्धि पर में छूट गयी, भोगे नहीं मात्र भुगतता है।
किंचित् न सुहाता है बाहर, पुरुषार्थ धरे वह अन्तर में।। 4।।
कुकथा करने को मूक हुआ, विकथा सुनने को वधिर अरे।
विषयों के हेतु नपुंसक वह, मन हीन अहित के चिन्तन में।। 5।।
इष्ट-अनिष्ट कल्पना दूर हुयी, नहीं राग-द्वेष की भ्रान्ति रही।
निज तत्त्व स्वरूप संभाल रहा, बल प्रकटा धारण में।। 6।।
थिरता निज में बढ़ती जाती, कर्मादि सुख ही भग जावे।
आनन्दमयी निष्कर्म दशा, ज्ञानी को तब प्रकटे क्षण में।। 7।।
फिर सादि अनन्त सुखी रहता, लोकाग्र शिखर पर वास रहे।
ध्रुव अचल सिद्ध गति पाई है,नहीं भ्रमण करे फिर भव वन में।।8।।

(480)

(तर्ज : गाड़ी खड़ी रे, खड़ी रे तैयार...)

जानो-जानो रे रतन को मोल, फैंको ना हीरा कंकरन में।। टेक।।
जाति-जाति में जो उत्तम है, सो ही रतन कहाय।
नरभव दुर्लभ रतन पायके, विषयों में न गँवाय।। 1।।

देव-शास्त्र-गुरु तीन रत्न पाये, दीन बना मत डोल।
निज शुद्धात्म रत्न परख के, पाओ विभव अतोल।। 2।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र, रत्नों की तू है खान।
भरे अनन्तों अक्षय गुण हैं, तू खुद ही भगवान।। 3।।
कायरता छोड़ो अब चेतन, तुम अनन्त बलधारी।
थर-थर काँपे कर्म भागते, आतम शक्ति संभारी।। 4।।
हीरा-पन्ना पर मोहित है, निज पहिचान न होई।
शुद्धात्म ध्रुव रत्न पिछाने, सच्चा जौहरी सोई।। 5।।
यह भव, भव के नाश हेतु, सब साधन तुमने पाया।
चेतो आत्मन्! समय न चूको, पाओ निज की माया।। 6।।

(481)

(तर्ज : हे पार्श्वनाथ भगवन...)

अन्तर्मुखी हो प्रभुवर जिन भावना मैं भाऊँ।
आनन्दमग्न होकर, जिन भावना मैं भाऊँ।। टेक।।
दुर्मोह नाशने का अनुभूत मार्ग पाया।
निर्मोह ज्ञानमय प्रभु, अपना स्वरूप ध्याऊँ।। 1।।
भोगूँ अतीन्द्रिय आनन्द, निज में ही तृप्त वर्तूं।
निष्काम निर्विकारी, ब्रह्मचर्य पूर्ण पाऊँ।। 2।।
कर्तृत्व बुद्धि नाशी, भवितव्य सहज भासा।
निर्भार तुष्ट निज में, ज्ञाता सहज रहाऊँ।। 3।।
चाहे जो उदय आये, चाहे जो परिणमन हो।
नहीं राग-द्वेष होवे, समता सहज धराऊँ।। 4।।

सर्वस्व निज का निज में, मैने प्रत्यक्ष देखा।
निज में ही लीन होऊँ, पर में नहीं भ्रमाऊँ।। 5।।
कर्मों का हो न आश्रव, हो निर्जरा सहज ही।
निर्मुक्त ध्रुव अनुपम, पंचम गति सु-पाऊँ।। 6।।

(482)

(तर्ज : अब हम अमर भये...)

ये दिन मत विवेक बिन खोओ ।। टेक।।
महाभाग्य जिनवाणी पायी, नहीं मोह में सोओ।
भेदज्ञान कर परम प्रीति से, स्वयं सिद्ध प्रभु जोओ।। 1।।
क्षणिक विकारी भावों को ही लखकर व्यर्थ न रोओ।
प्रत्यक्ष देखो अद्‌भुत प्रभुता, परम आनन्दित होओ।। 2।।
सहज स्वतंत्र परिणमन सबका,क्यों तुम बोझा ढोओ।
मिथ्या कर्त्ताबुद्धि तजकर, सहज शान्त-चित्त होओ।। 3।।
राग-द्वेष करि कर्मोदय में, दुःख के बीज न बोओ।
हो पुरुषार्थी निज को ध्याओ, सहज कर्म मल धोओ।। 4।।

(483)

उत्तम ब्रह्मचर्यमय जीवन।
साँचा सहज मुक्तिमय जीवन।। टेक।।
है सादा संतोषी जीवन,
सहज शान्त आनंदमय जीवन।
निर्विकार तृप्तिमय जीवन,
सहज सरल निर्द्वन्द्व है जीवन।। 1।।
निर्मोही निर्ग्रन्थ है जीवन,
ज्ञान प्रकाशमयी है जीवन।
आत्माराधनमय है जीवन,
निरपराध निष्पाप है जीवन।। 2।।

सहज समाधिमय है जीवन,
स्वाभाविक आदर्श है जीवन।
सहज परम निरपेक्ष है जीवन,
अभय रूप समतामय जीवन।। 3।।
सहज पवित्र अलौकिक जीवन,
सम्यक् रत्नत्रयमय जीवन।
निर्भय निर्मल निष्कल जीवन,
शाश्वत परम ब्रह्ममय जीवन।। 4।।

(484)

(तर्ज : भव्य मानो कही...)

व्यर्थ भटको नहीं, भव्य मानो कही।
मुक्ति निज में मिले, भव्य मानो कही।। टेक।।
द्रव्य तो यूँ अनन्त भी लोक में,
परिणमन किन्तु करते स्वयं-स्वयं में।
साथी कोई किसी का न देखो सही।। 1।।
जिनको अपना कहें, छोड़ चल देते वे,
जिनकी आशा करें, काम आवें न वे।
मोह दुःखकार झूठा तजो, गुरु कही।। 2।।
भिन्न क्यों तू स्वयं सहज भगवान है,
प्रभु सी प्रभुता धरे अनंत गुण खान है।
द्रव्यदृष्टि करो, भव्य सार यही।। 3।।
पर में तृष्णा बढ़े, तृप्ति तो निज में ही,
पर में बंधन मिले, मुक्ति तो निज में ही।
ध्याओ शुद्धात्मा, पाओ अष्टम् मही।। 4।।

आत्मध्यान ही तिहुँ लोक में सार है,
शेष सब दुःखमय जानो संसार है।
आत्मा को उपादेय आत्मा सही।। 5।।

(485)

ज्ञान सुधारस पीजे रे भाई, सुधारस पीजे रे।
जन्म-जरा-मृत रोग मेटिके, काल अनन्त सु-जीजे।। टेक।।
ज्ञान बिना भव-भव भटकाए, अब तो कछु सुधि लीजे।
महाभाग्य जिनशासन पाया, निज आतम हित कीजे।। 1।।
करो-करो तत्त्वों का निर्णय, भेद-विज्ञान करीजे।
रागादिक से भिन्न ज्ञानमय, आतम अनुभव कीजे।। 2।।
दुखमय विषय-कषाय परिग्रह, स्वाश्रय से तज दीजे।
हो निर्ग्रन्थ आत्म पद साधो, अवसर का फल लीजे।। 3।।

(486)

(तर्ज : जगाया तुमने कितनी बार...)

आत्मन्! सोच तज झूठा, शरण कोई नहीं मुझको।
जरूरत ही नहीं तुझको, स्वयं परिपूर्ण लख खुद को।। टेक।।
निजी अस्तित्व से जीता, नहीं कोई नाश कर सकता,
अहो! वस्तुत्व शक्ति से, परिणमन भी स्वयं होता।
तुझे चिन्ता पड़ी है क्या, परिणति ही करे खुद को।। 1।।
नहीं इहलोक-परलोक, नहीं है वेदना कोई,
अरक्षा और अगुप्ति नहीं, होवे कभी चोरी।
नहीं कुछ भी कदा होवे, सप्तभय हैं नहीं तुझको ।। 2।।

अहो! अक्षय तेरा वैभव, सहज सुख सिन्धु लहरावे,
नहीं कर्मादि रागादिक, ज्ञान में ज्ञान ही आवे।
ज्ञानमय रूप ही तेरा, ज्ञान में भासता मुझको।। 3।।
स्वयं ही तू प्रभु तेरा, तेरी महिमा है सर्वोत्तम,
नहीं बनना, नहीं होना, सहज ही तू है लोकोत्तम।
नहीं शंका की गुंजाइश, सहज सुखमय लखो खुद को।। 4।।
तेरी मुक्ति नहीं पर में, चले युक्ति नहीं पर में,
तेरा सर्वस्व स्व में ही, नहीं कुछ भी अरे पर में।
दैन्य वृत्ति तेरी झूठी, सदा ही प्रभु लखो खुद को।। 5।।
तेरा गुरु है नहीं बाहर, अहो! तू ही परम गुरु है,
अनादर क्यों करे निज का, निरालम्बी परम प्रभु है।
सहज निरपेक्ष ध्रुव ज्ञायक, मात्र ज्ञायक समझ खुद को।। 6।।

(487)

(तर्ज : मैं सदा से रहा...)

अब निहारें अरे! आत्म अन्तर को हम,
ज्ञान-दर्शन-चरित्र-सुख स्वयं जगमगे।। टेक।।
निज को जाने बिन हम भटकते रहे,
लेश भी सुख पाया नहीं आज तक।
दाह विषयों की अन्तर में जलती रही,
हम विकल्पों की आँधी में उड़ते रहे।। 1।।
जब सहन न हुयी वेदना तड़फते,
पी लिया विष-विषय का सुधा जानकर।
मूर्च्छा गहरी हुयी होश कुछ ना रहा,
नीम मीठा लगा हम चबाते रहे।। 2।।

सन्त बूटी का शुभ योग हमको मिला,
मोह का यह नशा कुछ उतरता चला।
नीम कड़ुवा लगे, अब रुचि न रही,
ये विषय तो हलाहल से अब लग रहे।।3।।
मात जिनवाणी की गोद सुखकर मिली,
मूसलाधार वर्षा जहाँ ज्ञान की।
चाह की दाह खुद ही शमित हो गयी,
समता रस का प्रवाह निरन्तर बहे।। 4।।
आत्म उद्यान में रत्नत्रय अंकुर उगे,
भाव संयम की हरियाली छाई अहो।
वृक्ष चारित्र के पल्लवित हो चले,
फल लगे भाव क्षायिक के रस भरे।। 5।।
स्वाद जिनका लिये तृप्त भविजन बने,
जिनकी छाया में नहिं ताप है राग का।
शान्ति सुखमय मिले, आत्म विश्राम है,
फिर ना आवागमन का ये फेरा रहे।। 6।।
आत्मन्! चेत अब भी समय है अरे,
क्यों अटकता-भटकता है पर्याय में।
शरण ज्ञायक प्रभु की तू ले-ले सही,
सुख अक्षय अतीन्द्रिय का निर्झर बहे।।7।।

(488)

(तर्ज : भला किसी का कर न सको...)

चिन्ता चाहे जितनी कर लो, नहीं सार निकलने वाला है।
आकुलता का फल आकुलता, सुख लेश न मिलने वाला है।।टेक।।

चिन्ता तज चिन्तन करो अरे! परिपूर्ण स्वरूप हमारा है।
है कमी नहीं निज में, पर से कुछ कभी न आने वाला है।। 1।।
पर-आश्रित भाव विकारी ही, भव-भव में दुःख के कारण हैं।
अपना सुख तो अपने में ही, अपने से आने वाला है।। 2।।
अपना ज्ञानानन्दमय घर तज, बाहर में व्यर्थ भटकना है।
आत्मा ही निश्चय परमात्मा, अविनाशी प्रभुता वाला है।। 3।।
अपनी महिमा का आदर कर, संकल्प-विकल्प तजो झूठे।
वह कर्त्ता कैसे हो सकता, जो केवल जाननहारा है।। 4।।
देखनहारा हूँ देख अहो, जाननहारा हूँ जान अहो।
भव-क्लेश सहज मिट जावेंगे, प्रगटे मुक्ति अविकारा है।। 5।।

(489)

(तर्ज : चित्स्वरूप महावीर...)

कोई न रोकनहार मुक्ति मारग में,स्वानुभूति है द्वार, मुक्ति मारग में।
है शक्ति अपरम्पार, निज शुद्धातम में।। टेक।।
चेतन निज शक्ति को भूला, प्राप्त परिणति में ही फूला,
निज हित समझ न पाया मूढ़ा, झूल रहा भव-भव में झूला।
अवसर अब भी सुखकार लग शिव-मारग में।। 1।।
श्री गुरु बार-बार समझावें, सप्त-तत्त्व का मर्म बतावें,
स्व-पर भेद-विज्ञान करावें, सीधी शिव की राह दिखावें।
कर प्रतीति हितकार, मुक्ति मारग में।। 2।।
आतम है शाश्वत परमातम, भूल स्वयं बनता बहिरातम,
कर प्रतीति हो अन्तर आतम, होय लीन प्रगटे परमातम।
पर आश तजो दुःखकार, मुक्ति मारग में।। 3।।

ज्ञान भाव का स्वाद जु पावे, फिर रागादि नहीं सुहावे,
निज पुरुषार्थ प्रकट हो जावे, कर्मादिक खुद निर्जर जावें।
पावे शक्ति अपार मुक्ति मारग में।। 4।।
धन्य मुनिदशा है अविकारी, प्रचुर स्व-संवेदन सुखकारी,
शुक्लध्यान की अग्नि प्रजारी, भस्म होय सब कर्म विकारी।
सिद्धालय तिष्ठाय शिवसुख मारग में।। 5।।

(490)

विजय करो-विजय करो, कर्मोंदय पर विजय करो।
सहन करो-सहन करो, शान्त भाव से सहन करो।। टेक।।
पुण्योदय लख फूल न जाओ, निज स्वभाव को भूल न जाओ।
अभिमानी उद्धत होकर तुम, नाहिं पापाचार करो।। 1।।
है अनित्य-अशरण पुण्योदय, ज्ञानोदय अक्षय सुखमय।
तनिक विवेक हृदय में लाओ, उसका सदुपयोग करो।। 2।।
पापोदय में नहीं घबराओ, दैन्य भाव नहीं उर में लाओ।
प्रभु भक्ति में चित्त लगाओ, सम्यक् तत्त्व विचार करो।। 3।।
दुख से दुख तो नहीं मिटेगा, नहीं दूसरा बाँट सकेगा।
धारण करके धैर्य आत्मन्, निर्मल भेद-विज्ञान करो।। 4।।
पर से भिन्न सदा है ज्ञायक, सिद्ध स्वरूप सहज है ज्ञायक।
ज्ञायक तो बस ज्ञायक ही है, सहज रूप अनुभवन करो।। 5।।
अहो! निहारो उन पुरुषों को, सहजहिं जीता उपसर्गों को।
उन सम निश्चल आराधन कर, परम साध्य को प्राप्त करो।। 6।।

(491)

(तर्ज : धन्य मुनिराज की समता...)

स्वावलम्बी निरवलम्बी, निरवलम्बी रहूँगा मैं।
स्वयं में ही सहज संतुष्ट, आनन्दमय रहूँगा मैं।। टेक।।
भेद-विज्ञान वर्ते प्रभु, सहज ही ज्ञानधारा में।
अहो! निःसंग ज्ञायक मैं, सहज निःसंग रहूँगा मैं।। 1।।
परिणमन सर्व द्रव्यों का, सहज स्वाधीन भासित हो।
मिटी कर्त्तृत्व बुद्धि अब, सहज निर्भार रहूँगा मैं।। 2।।
शून्य परभावों से ज्ञायक, पूर्ण निज में ही भासित हो।
अहो! निर्द्वन्द्व निर्ग्रन्थ हूँ, सहज ज्ञायक रहूँगा मैं।। 3।।
प्रयोजन है नहीं पर से, नहीं कुछ चाह, नहीं चिन्ता।
परम प्रभुतामयी ज्ञायक, सहज प्रभु ही रहूँगा मैं।। 4।।
धर्म जिनवर का पाया है, यथा-अनुभूत मंगलमय।
ब्रह्मचारी परम निरपेक्ष, मंगलमय रहूँगा मैं।। 5।।
अहो! परमात्मा शाश्वत, सदा निर्मुक्त निज से ही।
सिद्ध निर्भय सहज स्वाधीन, अविकारी रहूँगा मैं।। 6।।

(492)

देखो! अन्तर माँहि विराजे आतम देव महान।
विलसे परमानन्द अम्लान।।
जिनवृष पाया, अवसर आया, प्रगटे सम्यक्ज्ञान।। टेक।।
जिनवर दर्शन मंगलकारी, ज्ञानाभ्यास सर्व दुःखहारी।
भेद-विज्ञान कला सुखकारी, दर्शावे निज निधि अविकारी।।
प्रगटे अन्तर्मुख होते ही रत्नत्रय सुखखान।। 1।।

रागादिक घटते ही जावें, इन्द्रिय विषय न मन को भावें।
स्वाश्रय से वैराग्य बढ़ावें, धनि निर्ग्रन्थ दशा प्रगटावें।।
ऐसा निर्मल आत्मध्यान हो, हो कर्मों की हानि।। 2।।
देखो! प्रभु निज आतम ध्याया, त्रिजग पूज्य अरहंत पद पाया।
इन्द्रादिक ने शीश नवाया, समवशरण का ठाठ रचाया।।
दिव्यध्वनि में ध्वनित हुआ है, आतम सिद्ध समान।। 3।।
आत्मतत्त्व सा तत्त्व नहीं है, आश्रय करने योग्य यही है।
धर्मी से हो धर्म सही है, धोखा इसमें कभी नहीं है।।
ध्याओ-ध्याओ परम भाव को, बनो स्वयं भगवान।। 4।।

(493)

ज्ञान का ज्ञेय बनाते चलो, समता भाव बढ़ाते चलो।
मार्ग में आवें संकल्प-विकल्प,सबको ही पर में खपाते चलो।।टेक ।।
सच्चे देव-गुरु-जिन आगम,प्रयोजनभूत तत्त्व परखो।
शुद्ध निरंजन आत्म स्वरूप, सच्चिदानंद प्रभो निरखो।।
स्वातम में दृष्टि लगाते चलो।। 1।।
वस्तु न कोई इष्ट-अनिष्ट, राग अरु द्वेष मिटाओ।
अत्यंताभाव सदा ही पर में, व्यर्थ न दोष लगाओ।।
स्व-पर विवेक जगाते चलो।। 2।।
मैं ज्ञायक पर ज्ञेय हैं मेरे, पर में ज्ञान बहाया।
नहीं अभी तक शुद्ध निजातम, ज्ञान का ज्ञेय बनाया।।
निज में ही निज को लखाते चलो।। 3।।
जब उपयोग न ठहर सके तब, आत्म भावना करना।
शक्ति अनंत निज में विचारी, अति उछाट उर धरना।।
निज में ही पुनि-पुनि रमाते चलो।। 4।।

बाधाओं को नहीं निरखना, ये खुद ही हट जायें।
पुण्य प्रलोभन में नहिं फँसना, ये गति-गति भटकाएं।।
पुरुषार्थ सम्यक् बढ़ाते चलो।। 5।।
मोहीजन बहु भरमायेंगे, इनकी बात न सुनना।
कौन कर सका जग को राजी, व्यर्थ विकल्प न करना।।
शिव पथ में चरण बढ़ाते चलो।। 6।।
पर्यायों में भटक न जाना, ये तो आनी जानी।
इनतें भिन्न चिन्मूरति, निश्चय सिद्ध समानी।।
सहज आनन्द मनाते चलो।। 7।।

(494)

लगन सु मेरे एकहि लागी, ध्याऊँ आतमराम को।
निज ज्ञायक प्रभु आश्रय से ही, पाऊँ मैं शिव धाम को।। टेक।।
मोही बनकर जीवन खोया, झूठे जग जंजाल में।
अंधा हो विषयन में धायो, भ्रमत फिरो संसार में।।
साँचो मार्ग मिलो न अब तक, परम धर्म कल्याण को।। 1।।
धन्य दिवस धनि घड़ी आज, मैं जिनवर दर्शन पाया है।
श्री गुरु का उपदेश श्रवणकर, आतम तत्त्व सुझाया है।।
अब तो निज में ही रम जाऊँ, सब जग से निष्काम हो।। 2।।
अन्तर के पट खुले आज, निज प्रभुता पड़ी दिखाई है।
सशंय-विभ्रम-मोह पलायो, सम्यक् वृत्ति सुपाई है।।
रही जरूरत अब न किसी की, स्वयं पूर्ण गुणधाम हो।। 3।।
मैं ज्ञायक हूँ ये विकल्प भी, बाधक है स्वानुभूति में।
निर्विकल्प निज आराधक ही,मुक्तिमार्ग का साधक है।।
निर्निमेष निज नाथ निहारूँ, सहज सुख अभिराम है।। 4।।

(495)

(तर्ज : श्री अरहंत छवि...)

प्रभु निर्ग्रन्थ स्वरूप निरखते, सहज शीश झुक जावे।
परमानन्दमय अक्षय प्रभुता, अन्तर माँहि दिखावे।।टेक।।
अनन्त चतुष्टय नाथ आपका, मन में हौंस जगावे।
आराधूँ अपना स्वरूप अब, और न कछु सुहावे।। 1।।
रंग-राग भेदों से न्यारा, आतम अनुभव आवे।
सहजपने ही स्व-पर भेद-विज्ञान उदित हो जावे।।2।।
शरणभूत इक सार रूप, चिद्रूप समझ में आवे।
नित्य मुक्त परमातम भासे, नहिं संसार दिखावे।। 3।।
हुई प्रतीति जगी सु-प्रीति, साधु दशा प्रगटावे।
अविरल ध्याऊँ निज पद पाऊँ, मुक्ति दशा विलसावे।।4।।

(496)

भो आत्मन्! तजो विकल्प सभी,
कुछ कार्य न होय विकल्पों से।
स्वयमेव परिणमित होय वस्तु,
बस हो संकल्प-विकल्पों से।। टेक।।
परिपूर्ण स्वाभाविक आनन्द से,
परिपूर्ण स्वाभाविक प्रभुता से।
ध्रुव रूप अहो! निरपेक्ष लखो,
परिपूर्ण सदा निज में निज से।।
अन्तर में अन्तर्मुख होकर,
सब जीव निहारो सिद्धों से।। 1।।

हैं स्वयं सिद्ध, है सहज सिद्ध,
समझो-समझो स्वीकार करो।
निर्मुक्त निरामय परमातम,
अवलोको निज रस पान करो।।
प्रभु होकर भी पहिचान बिना,
तुम भटक रहे हो कल्पों से।। 2।।
जिन-अर्चा, तत्त्वों की चर्चा,
आवश्यक है, पर्याप्त नहीं।
निर्णय कर भेद-विज्ञान करो,
बाहर में तेरा साध्य नहीं।।
है स्वानुभूति के गम्य तत्त्व,
कैसे पायेगा जल्पों से।। 3।।
चिन्ता झूठी, आशा झूठी,
पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।
निर्मोही हो, निर्द्वन्द्व रहो,
निर्ग्रन्थ रहो, है सार यही।।
आकुलता का कुछ काम नहीं,
संतुष्ट रहो निज में निज से।। 4।।

(497)

(तर्ज : मनुआ मन की घुंडी खोल ...)

शुद्ध-बुद्ध है रूप तुम्हारा, पर भावों से अति ही न्यारा,
चेतन अपनी ओर निहारो, तुम हो स्वयं सिद्ध भगवान।
तुम हो गुण अनंत की खान।। टेक।।

जग से अनुपम विभव तुम्हारा, श्री सर्वज्ञ अनंत निहारा।
तुम हो लोकोत्तम परधान।। 1।।
भूल स्वयं को क्यों दुख पाओ, समझो-समझो निज घर आओ।
विलसो ज्ञानानन्द महान।। 2।।
सार नहीं कुछ है बाहर में, अक्षय प्रभुता है अन्तर में।
पाओ रत्नत्रय अम्लान।। 3 ।।
उत्तम अवसर चूक न जाना, करो स्वानुभव हो कल्याणा।
धारो निर्ग्रन्थ रूप महान।। 4।।
आत्मध्यान से कर्म नशाओ, निजानंदमय शिवपद पाओ।
जग में कहलाओ भगवान।। 5।।

(498)

जानूँ जाननहार सहज ही, जाननहार ज्ञायक हूँ।
राग भाव दुःख कारण भासे, राग भाव को नहीं नमूँ।। टेक।।
राग भाव प्रति नहीं प्रशंसा, नहीं अनुमोदन राग भाव का कभी करूँ।
नहीं निमित्त भी मुक्तिमार्ग के कुदेवादि प्रति नहीं नमूँ।। 1।।
नहीं प्रयोजन उनसे सधता, द्वेष नहीं माध्यस्थ धरूँ।
भय आशा स्नेह लोभ से, नहीं नमूँ, नहीं नमूँ।। 2।।
वीतराग सर्वज्ञ आप को, राग भाव से नहीं नमूँ।
भेदज्ञान कर स्वानुभूतिमय, सहज नमन परमार्थ करूँ।। 3।।
वीतरागता प्रगटाने को, अन्तर्मुख पुरुषार्थ करूँ।
कारण विषय-कषायों के लख, उनसे क्षण-क्षण दूर रहूँ।। 4।।
हो निवृत्त निर्ग्रन्थ सहज ही, ज्ञान सुधारस पान करूँ।
ख्याति लाभ की नहीं अभिलाषा, निज में ही संतुष्ट रहूँ।। 5।।

चाहे जैसे जगत परिणमे, उर में समता भाव धरूँ।
घोर परीषह उपसर्गों में भय न करूँ अडिग रहूँ।। 6।।
ध्येय रूप ध्याते-ध्याते ही, सहज साध्य शिव प्राप्त करूँ।
निर्विकल्प परमानंद वर्ते, ब्रह्मचर्य निर्दोष धरूँ।। 7।।
निर्वांछक कृतकृत्य सहज ही, स्वयं-स्वयं में तृप्त रहूँ।
रह स्वाधीन अनंत आनंद में, काल अनंत हि सहज रहूँ।। 8।।

(499)

लगनी लागी आतम की निज घर करने वास।। टेक।।

जब तक जग में आनन्द लागे,
तब तक अनुभव दूरहिं भागे।
जब जग से होय उदास,
तब ही आवे निज के पास।। 1।।
सच्ची लगनी मार्ग दिखावे,
बाहर में कोई काम न आवे।
लागे सच्चे सुख की प्यास,
आवे खुद ही अपने पास।। 2।।
निज की परम प्रतीति होवे,
निज में ही स्थिरता होवे।
निजानंद में मग्न सदा,
सिद्धालय करे निवास।। 3।।

(500)

(तर्ज : सफल भई आज मेरी नजरिया...)

अब तो ज्ञाता-दृष्टा रहना,
मोह किसी से भी नहीं करना।

प्रभु ने मुक्तिमार्ग दरशाया,
उस पर चलना, नहीं भव धरना।। टेक।।
पुण्य उदय से अवसर आया,
फिर भी अंध हो विषयन धाया।
आज प्रभु का दर्शन पाया,
विषय छोड़ कर निज हित करना।। 1।।
पावन सम्यग्दर्शन पावें,
मोह अंधेरा दूर भगावें।
प्रभु जैसा ही ध्यान लगावें,
भक्त नहीं हमको प्रभु बनना।। 2।।
वस्तु न कोई सुख-दुःख दाता,
व्यर्थ जगत में मैं भरमाता।
आतम को आतम में साता,
सुख अतीन्द्रिय मुझको भरना।। 3।।
जो होना है सो ही होता,
मैं तो मूर्खपने से रोता।
धर्मध्यान का अवसर खोता,
अब न मुझे कुछ विकल्प करना।। 4।।
यह भव पाया भव हरने को,
पावन रत्नत्रय धरने को।
समता रस आस्वादी बनकर,
निज शाश्वत् शिवपद को वरना।। 5।।

(501)

ज्ञान ही सुख है, राग ही दुःख है।
ज्ञान करते रहो, राग तजते रहो।। टेक।।

लोक सम्बन्धी, सब राग अति दुःखमय,
और व्यवहार तल्लीनता क्लेशमय।
द्रव्य जिसका अलग, क्षेत्र जिसका पृथक,
काल भाव जुदा उससे हटते रहो।। 1।।
हैं सभी द्रव्य वस्तुत्व द्रव्यत्वमय,
परिणमन वे स्वयं प्रति समय कर रहे।
है किसी को जरूरत तुम्हारी नहीं,
तुम जरूरत सभी की विसरते रहो।। 2।।
अपनी चिन्ता से पर को भी सुख-दुःख नहीं,
निज को दुःखमय करमबन्ध होता सही।
इसीलिए व्यर्थ चिंता जगत की तजो,
आत्म कल्याण दृष्टि में धरते रहो।। 3।।
आशा त्यागो कोई सुख देगा तुम्हें,
लेने देने में प्रभु भी तो असमर्थ हैं।
आश प्रभु की तजो, लक्ष्य प्रभु सम धरो,
निज में आनन्द रस पान करते रहो।। 4।।

(502)

(तर्ज : तुमसे लागी लगन...)

ज्ञानी आत्मा ही निज रूप धारे, भेद-विज्ञान ऐसे विचारे।
मैं तो चेतन प्रभु ये अचेतन सभी घर और द्वारे।।
व्यर्थ कहता हूँ महल हमारे।। टेक।।
मात-पित-सुत-कुटुम्बी संगाती, मात्र मतलब के सब ही हैं साथी।
स्वार्थ वश निज कहें अंत मुझको तजें, होवें न्यारे।।
झूठ कहना कुटुम्बी हमारे।। 1।।

वैश्या सम होती लक्ष्मी है चंचल, इसके मिलने से होते न मंगल।
मुझको अंधा करे और दुःख में धरे, सुख उजाड़े।।
वस्त्र-भूषण भी ना हैं हमारे।। 2।।
रूपी काया जो बाहर दिखाती, आत्म रूप से मेल न खाती।
क्षेत्र निज में रहे, कार्य निज ही करे, गुण हैं न्यारे।।
मिथ्या नो-कर्म माने हमारे।। 3।।
औदारिक में है कान्ति जो आयी, तैजस कर्म के निमित्त पाई।
आत्म अंश नहीं, मेरा वंश नहीं, पुद्गल सारे।।
कैसे तैजस को अपना उचारे।। 4।।
अष्ट कर्म रूप कार्माण शरीरा, भिन्न उसको भी तू सोच धीर।
पुद्गल निर्मित है वह, घटता-बढ़ता है वह,अन्तर धारे।।
व्यर्थ निज मानूँ ये कर्म सारे।। 5।।
राग-द्वेष हैं मेरी अवस्था फिर भी भिन्न है उसकी व्यवस्था।
पर के लक्ष्य से हों कारण दुःख के अहो सुख तू धारे।।
भावकर्म को निज क्यों उचारे।। 6।।
केवलज्ञानादि शुद्ध भाव जो हैं, आत्म लक्ष्य से निश्चय वे हों।
शुद्ध तो हैं सही, लक्ष्य योग्य नहीं, व्ययता धारे।।
शुद्ध परिणति को भी क्यों निहारे।।7।।
दर्श-ज्ञानादि गुण आत्म-धारे, भेद दृष्टि के कथन हैं सारे।
गौण सबको करे, द्रव्यदृष्टि धरे, ध्रुव चितारे।।
सच्चा सुख तब ही प्रकटेगा प्यारे।।8।।

(503)

(तर्ज : आज अद्भुत छवि निज निहारी...)

ज्ञान गंगा में नित प्रति नहाओ, मैल रागादि का तुम छुड़ाओ।
तोष अमृत पियो अरु पिलाओ, प्यास-तृष्णा की दुःखमय बुझाओ।। टेक।।

ज्ञान गंगा बहे आत्मा से, आत्मा ही सहज पूर्ण शंकर।
करता पापों का तत्क्षण विलय है, सुख अनुपम का आत्मा निलय है।।
आत्म आश्रय ले पातक भगाओ।।1।।

बहता समता का निर्मल सु-पानी, सप्तभंगी तरंगें उछलती।
दूर करती सु-एकान्त मल को, अनेकान्त स्वभाव दिखाती।।
ज्ञान सम्यक् सहज ही सु-पाओ।।2।।

सम्यक् दृग-ज्ञान-चारित्र त्रिवेणी, तीर्थ पावन सु-अनुपम यही है।
एक बार जो डुबकी लगावे, पार भवोदधि से निश्चय ही जावे।।
दर्श पाओ, स्वयं पार जाओ।। 3।।

स्वार्थी पंडों की ना जरूरत, भेद-विज्ञान बुद्धि ही पंडा।
आस झूठी तजो तुम बिरानी, मोह की भेद कर भव्य प्राणी।।
परिणति में सु-गंगा बहाओ।। 4।।

(504)

सम्यग्दर्शन माहात्म्य

सम्यग्दर्शन बिना जगत में, सुख नहीं मिल पायेगा।
केवल दुःख ही दुःख मिलेगा, दूर सुख से जायेगा।। 1।।
या यों कहिए सम्यग्दर्शन, मूल सुख सम्पद का है।
इसके बिना व्यर्थ सब जप-तप हेतु सभी आपद का है।।2।।
सम्यग्दर्शन बिना जगत में काल अनादि गँवाया है।
मुनिव्रत भी धारा है मैंने, पर ग्रैवयक उपजाया है।। 3।।
अपने आत्म के भान बिना, पर को निज, निज पर माना है।
तन से भी अत्यन्त भिन्न मैं, किया न यह विज्ञाना है।। 4।।

(505)

अपने चेतन का सुध्यान धरूँगा।
ध्यान धरूँगा, करम हरूँगा, भवदधि पार करूँगा।। टेक।।
चाह विषय भोगों की झूठी, मन में कभी न लाऊँ।
स्वारथ का संसार सभी, चित्त क्यों अपना भरमाऊँ।।
मैं तो ममता की सारी पीर हरूँगा।। 1।।
सच्चे देव-शास्त्र-गुरु शासन पर, अपना निश्चय लाऊँ।
अर्थ सहित सातों तत्त्वों को, समझ के मन समझाऊँ।।
मैं तो हृदय में सत्य श्रद्धान करूँगा।। 2।।
किसके मात-पिता-सुत-दारा, किससे प्रीति बढ़ाऊँ।
हम न किसी के कोई न हमारा, किस पर नेह लगाऊँ।।
मैं तो निज-पर का भेद-विज्ञान करूँगा।।3।।
घट अन्दर मिथ्यात्व अंधेरा, ताका नाश कराऊँ।
करम-करमफल द्विविध चेतना, छिन में दूर भगाऊँ।।
मैं तो अपने में अपना ही ज्ञान करूँगा।।4।।
शुद्ध उपयोग जला दीपक निज आतम दर्शन पाऊँ।
ज्ञान चेतना जगे अन्दर, अन्तर लीन हो जाऊँ।।
मैं तो आतम के गुणों का ज्ञान करूँगा।।5।।
आतम अनुभव करूँ आप में, ज्ञान उपयोग लगाऊँ।
पर में निज उपयोग न जावे, ऐसा यतन कराऊँ।।
मैं तो अपने में अपना उपयोग धरूँगा।।6।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण तीनों को एक बनाऊँ।

शुद्ध चिदातम जाप जपूँ, कर्मों का जोर हटाऊँ।।
मैं तो निज का आनंद रस पान करूँगा।।7।।

(506)

(तर्ज : हमें संस्कार सिखलाती...)

जरा सी सम्पदा पाकर, अरे! मदहोश मत होना।
कि तेरी जिंदगी कितनी, पाप के बीज मत बोना।। टेक।।
है लक्ष्मी चंचला चपला, नहीं टिकती कहीं इक जा।
ढलती फिरती है छाया, बड़ी कुल्टा है ये माया।।
सदा चक्कर लगाती है कि तुम विश्वास मत करना।।1।।
ये जीवन एक तमाशा है, और पानी का पताशा है।
करे सामान सदियों का, न पूरी होती आशा है।।
काल सिर पर खड़ा तेरे कि अवसर व्यर्थ मत खोना।।2।।
घड़ा है माँस मिट्टी का, तथा पेशाब टट्टी का।
है चिकना चाम से लिपटा, है तन तेरा बड़ा गंदा।।
सरासर बेबफा है ये कि तुम आसक्त मत होना।। 3।।
दान देकर सफल कर धन, लगे उपकार में जीवन।
तपस्या से गला दे तन, करो निज आत्म का चिन्तन।।
इसी से आत्मन्! तेरा, सदा कल्याण है होना।। 4।।

(507)

फल भोगत नहीं जड़ कर्मों का,इनसे लड़ने का काम नहीं।
फल कर्मों का है बाहर में,तुझमें झगड़े ये तमाम नहीं।। 1।।
पापोदय से जो कुष्ट हुआ,उससे मुनि खेद न माना था।
पुण्योदय से भरतेश्वर के,उर हर्ष न किंचित् माना था।। 2।।

नहीं भोगे राम अरु सीता ने,पाण्डवों के भी क्लेश का नाम नहीं।
जो किए सो किए उनको भूलो,फल में नहिं हर्ष-विषाद करो।।3।।
कर्त्ता-भोक्ता नहिं आत्मा है,निश्चय निर्णय चित्त माँहि धरो।
देनी न तुझे इक भी पाई,समता में दुःख छदाम नहीं।। 4।।

(508)

द्रव्य प्राणों का, होवे वियोग जहाँ।
पर 'मरा मैं तो' ऐसी न अनुभूति हो।।टेक।।
परिणति हो जुड़ी, ज्ञानमय भाव में।
मात्र आनन्द की, ही तो प्रसूति हो।। 1।।
हो उपाधि नहीं, आधि-व्याधि नहीं।
राग-द्वेषमयी भी, न भव-भूति हो।। 2।।
होवे परमात्मा, आत्मा यह स्वयं।
मात्र शेष जहाँ , पर वो शिवभूति हो।।3।।

(509)

मेरी परिणति में चार-चार भूल।
निश्चय किया आज छोड़ूँगा भूल।। टेक।।
पहली भूल पर को निज माना,श्रद्धा में आया न मूल।
आत्मप्रभु को देखे बिना मैं,पाया नहीं भव कूल।। 1।।
दूजी भूल पर का कर्त्ता माने,नहिं आतम अकर्त्ता कबूल।
अजर-अमर अविनाशी आत्मा से तो रहा प्रतिकूल।। 2।।
तीजी भूल शुभ भावों में मानता,शुभ भाव लगें अनुकूल।
आस्रव की जाति के ही ये तो भाई,इनमें मिलेंगे भव शूल।।3।।

चौथी भूल प्राप्त पर्याय में तन्मय,द्रव्यदृष्टि रही दूर।
ध्रुव स्वभाव जाना न अभी तक,कैसे खिले सुख फूल।। 4।।

(510)

जगत व्यवस्था यदि देखोगे, सुखी नहीं हो पाओगे।
मिथ्या कर्त्ता बुद्धि से तो, भारी दुःख उठाओगे।। 1।।
सुख का साधन संयोगों को नहीं जुटाने से मिलता।
वस्तु व्यवस्था को यथार्थ समझे से सच्चा सुख होता।। 2।।
जितने द्रव्य जगत में दिखते हैं अत्यंत व्यवस्थित वे।
सदा अवस्थित निज स्वभाव में गुण पर्ययमय स्थित वे।। 3।।
जो जिस समय अवस्था दिखती, यथा योग्य है वह भाई।
पूर्व अवस्था व्यय होने पर, वह तो निज क्रम से आई।। 4।।
तुम अज्ञान मोह से उसको, इष्ट-अनिष्ट मान लेते।
अरे! भ्रान्तिवश आकुल-व्याकुल होते नाना दुःख सहते।। 5।।
जब निज आत्म गुणों की भी तो स्वयं अवस्थाएँ होतीं।
करते तुम नाना विकल्प, किंचित् नहीं तदनुसार होती।। 6।।
फिर भी दृष्टि नहीं बदलते, पर अनुकूल चाहते हो।
इच्छाओं का जाल बिछाकर, स्वयं दुःखी तुम होते हो।। 7।।
निज स्वभाव की तिरस्कारिणी पर्यय दृष्टि ही दुःखदायी।
सहज अकर्त्ता ज्ञायक लखती, द्रव्यदृष्टि ही सुखदायी।। 8।।

(511)

सम्यग्दर्शन मूल धर्म का, ये सर्वज्ञ उचारा है।
प्रकट करें निज-निज परिणति में, पहला साध्य हमारा है।। 1।।

सम्यग्दर्शन बिना जगत में, भारी दुःख उठाए हैं।
झूठे सुख में मग्न हुए, अरु भव अनंत भरमाए हैं।। 2।।
दैव योग जिनवृष पाकर भी अशुभ छोड़ शुभ में आया।
मंदराग को धर्म मानकर वीतराग पद नहीं ध्याया।। 3।।
सच्चे देव-धर्म-गुरु का भी, रूप न सच्चा पहिचाना।
सच्चे तत्त्व का मर्म न जाना, भेद-विज्ञान नहिं ठाना।। 4।।
देह को अपना माना है, उसमें ही सुख खोजा निशदिन।
मिथ्या भोगों में सुख माना, उनमें लीन रहा-निशदिन।। 5।।
दूर हुआ मिथ्यात्व न अब तक, इससे दुःख ही उपजाया।
बाह्य ज्ञान अरु क्रियाकाण्ड से भी सुख नहीं पाया।। 6।।
अंश मात्र मिथ्यात्व बुरा है सत्य ज्ञानियों ने गाया है।
आज हुई मम अन्तर्दृष्टि, निज ज्ञायक का भान हुआ है।। 7।।
भाव शुभाशुभ दुःखमय भासे, निजानंद निज में पाया।
अन्य नहीं कुछ मुझे सुहावे, एक मात्र ज्ञायक भाया।। 8।।
अब तो यही भावना मेरी, सदा आत्मा ही ध्याऊँ।
छोड़ सकल जग द्वन्द्व-फन्द बस निज स्वरूप में रम जाऊँ।।9।।

(512)

शुद्ध चैतन्य भाव अनुभवते, नय पक्षों के साक्षी हैं।
ज्यों सर्वज्ञ प्रभु साक्षी हैं, ज्ञानी भी त्यों साक्षी हैं।।
सहज भाव से साक्षी हैं, वे अखिल विश्व के साक्षी हैं।। टेक।।
स्वयं-स्वयं में तृप्त सहज ही, अक्षय प्रभुता प्रगट हुई।
पर के प्रति उत्साह न किंचित्, पर द्रव्यों के साक्षी हैं।। 1।।

द्रव्यदृष्टि प्रगटी अन्तर में, निर्विकल्प कृतकृत्य हुए।
नहीं प्रयोजन शेष रहा कुछ, द्रव्य-पर्यय के साक्षी हैं।। 2।।
कर्मोदय चाहे जैसा हो, कैसी भी हो देह-दशा।
हों संयोग भले ही कैसे, ज्ञानी रहते साक्षी हैं।। 3।।
मिथ्या अंहकार सब छूटा, कर्त्ता बुद्धि दूर हुई।
चाहे जैसा जगत परिणमे, ज्ञानी रहते साक्षी हैं।। 4।।
कोई निंदे, कोई प्रशंसे, कोई आवे या जावे।
हों उपसर्ग भंयकर चाहे, ज्ञानी रहते साक्षी हैं।। 5।।
साक्षी अथवा ज्ञाता दृष्टा, निर्मोही रागादि रहित।
शांत सहज निर्मुक्त अहो! वे बंध मोक्ष के साक्षी हैं।। 6।।

(513)

सम्यग्दर्शन माहात्म्य

सम्यग्दर्शन मित्र हमारा, देता सुख अपारा।
वीतराग विज्ञान सार है, सब संसार असारा।। 1।।
ये संसार के दुःख से बचावे, करता भव से पारा।
हमको अपनी निधि दिखाये, हो कर्मों से छुटकारा।। 2।।
एक बार यदि दर्शित होवे, आत्म झलक सुखकारा।
तो फिर नरक-नपुंसक-स्त्री, हीन देव दुखकारा।। 3।।
नीच गोत्र में जन्म न होवे, अल्पायु दारिद्र न धारा।
जिनवृष-धन-वैभव सुख पावे, ऋद्धि सिद्धि परिवारा।। 4।।
उनकी कीर्ति आज तक कायम, जिनने सम्यक् धारा।
अतः आत्मन्! प्राप्ति हेतु अब निज की ओर चितारा।। 5।।

(514)

अन्तर्दृष्टि की प्रेरणा

स्वतंत्र है प्रत्येक वस्तु, सर्वदा ही जान तू।
बाह्य दृष्टि छोड़कर, आत्मा पिछान तू।। 1।।
ज्ञानमयी आत्मा, रागादि से भी है परे।
व्यर्थ पर पदार्थों में, राग-द्वेष तू क्यों करे।। 2।।
पर पदार्थ ज्ञेय हैं, आत्मीक ज्ञान के।
किन्तु रहा पर में जीव, इष्ट-अनिष्ट मान के।। 3।।
दुख हेतु ये ही मान्यता, नहीं अन्य दुःख का हेतु है।
जीव के सुख-दुःख में अवरोध निज का हेतु है।। 4।।
छोड़ मिथ्यादृष्टि यदि, श्रद्धान सम्यक् जो धरे।
तो सहज ही मुक्त होवे, सुख स्वयं में अनुभवे।। 5।।
रे आत्मन्! अब शीघ्र ही तू सीख गुरु की मान ले।
बाह्य सुखाभास तज, आत्म सुख जान ले।। 6।।
अन्यथा भव सिन्धु में ही गोते खाता जायेगा।
चाहे कुछ भी कर उपाय, मोक्ष नहीं पायेगा।। 7।।
एतदर्थ शीघ्र चेत, समय अल्प जान तू।
स्वतंत्र है प्रत्येक वस्तु, सर्वदा ही मग्न तू।। 8।।

(515)

परमार्थ से गुरु आत्मा का आत्मा।
व्यवहार से निर्ग्रन्थ गुरु शुद्धात्मा।। टेक।।
आत्मा ही सुख की इच्छा करे,
आत्मा ही सुख का उद्यम करे।

स्वयं की ही भूल से भव में भ्रमे,
भूल तजकर मोक्षमार्गी भी बने।।
साधना से स्वयं हो परमात्मा।। 1।।
तत्त्व समझे शिष्य होकर स्वयं ही,
अन्तरंग में फिर विचारे स्वयं ही।
तत्त्व निर्णय भी करे जब स्वयं ही,
भेद-विज्ञानी बने जब स्वयं ही।।
स्वयं ही अनुभव करे शुद्धात्मा।। 2।।
आत्महित की भावना भाता जभी,
हेय तज उपादेय को पाता तभी।
जग प्रपंचों को तजे निर्ग्रन्थ हो,
सहता परीषह सहज निर्द्वन्द्व हो।।
आत्म दृष्टि में वर्ते सदा आत्मा।। 3।।
परम आनन्दमय सहज ही तृप्त हो,
क्षपक श्रेणी भी चढ़े तब सहज हो।
घाति कर्मों से सहज ही रहित हो,
अनन्त चतुष्टय रूप तब परिणमित हो।।
हो स्वयंभू स्वयं ही परमात्मा।। 4।।
जिनमार्ग की होवे परम प्रभावना,
आराध्य होके कर स्वयं आराधना।
सर्व कर्मों से रहित ध्रुव सिद्ध हो,
सहज शाश्वत रूप ही प्रसिद्ध हो।।
आवागमन से रहित हो सिद्धात्मा।। 5।।

'आत्मन्' अब तो पराई आश तज,
निःशंक हो निरपेक्ष हो निज भाव भज।
सहज पाने योग्य सब ही पायेगा,
छूटने के योग्य सब छूट जायेगा।।
पूर्ण वैभववान निज शुद्धात्मा।। 6।।
स्मरण करता गुरो मैं भक्ति से,
देखता निज में ही निज की शक्ति से।
निश्चिंत हो एकाग्र हो ध्याऊँ गुरु,
आप सम निर्ग्रन्थ पद पायें गुरु।।
उपकार गुरुवर मैं लखा शुद्धात्मा।। 7।।

(516)

(तर्ज : धन्य-धन्य आज घड़ी...)

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जीवन हमारा है।
मुक्ति का मार्ग ये ही, गुरुवर उचारा है।। टेक।।
संसार असार जान गुरुवर ने छोड़ा है,
देहादिक भिन्न मान, निज को निज में जोड़ा है।
झूठे सब विकल्प त्याग, परिणाम सम्हारा है।। 1।।
अंतर में देखते हो, अपने को आप ही,
सहज आनंद हो, उपजे न पाप ही।
आदर्श निष्पाप जीवन निहारा है।। 2।।
स्वाधीन दृष्टि है, स्वाधीन चिन्तन,
स्वाधीन चर्या है, निज में रहें मगन।
ऐसे सर्व साधुओं को, नमन हमारा है।। 3।।

तत्त्वों का ज्ञान और श्रद्धान होवे,
आर्त-रौद्र हो न कदा, धर्मध्यान होवे।
ऐसा ही संकल्प गुरुवर हमारा है।। 4।।

(517)

आ जा रे! आ जा रे!! निज स्वभाव में आ जा।
पर में ना भरमाना रे।। टेक।।
मात-पिता-भ्रात-सुत-पत्नी सब स्वारथ की प्रीति रे।
मरण समय कोई साथ न देगा, यही जगत की रीति रे।।
चेतो रे! चेतो रे!! चेतन अब तो चेतो, पर का आश्रय छोड़ो रे।।1।।
अज्ञानी बनकर मत डोलो, ज्ञान तो तेरा स्वभाव रे।
पुद्गल में ना अटको-भटको, स्व आतम को ध्याओ रे।।
यही है रे यही है समय का सार, चेतन स्व समय में आजा रे।।2।।
बीत गयी सो बीत गयी, तू उसे ध्यान में ना ले रे।
होना है सो होके रहेगा, तेरे व्यर्थ विकल्प रे।।
तजना रे झूठे सर्व विकल्पों को, तजना ज्ञाता-दृष्टा रहना रे।।3।।
जीव और पुद्गल में भैया, है अत्यन्ताभाव रे।
अलग-अलग सबके गुण-पर्यय, कोई किसी रूप ना हो रे।।
रहते हैं सब अपने-अपने में स्थित, पर को तज निज भजना रे।।4।।
शब्द-रूप-रस-गंध रहित है, जीव चेतना मात्र रे।
अलिंग ग्रहण इन्द्रिय-अगोचर, स्वानुभूति के गम्य रे।।
वह तो कोई अमूल्य निधि है, कर पुरुषारथ पाना रे।। 5।।

(518)

जिया अब आतम हित कर रे।
अनुपम चित्स्वरूप शुद्धातम, अनुभव में चित दे।। टेक।।
संयोगों का नहीं ठिकाना, झूठा मोह करे।
जल बुद-बुद क्षण में विनशे नर पर्याय अरे।। 1।।
मृग तृष्णा में व्यर्थ भटकता, निज में तृप्ति धरे।
ज्ञानानन्द की खान अहो! भगवान आत्मा रे।। 2।।
आतम दर्शन सम्यग्दर्शन ज्ञान अनुभवन रे।
आत्मलीनता सम्यक् चारित्र, इनसे मुक्ति लहे।। 3।।
आत्मन्! अवसर चूक न जाना भेदज्ञान कर रे।
निज में रत, पर से हो निवृत्त, ये ही सार अरे।। 4।।

(519)

चेतन प्रभु के गुण गा ले, निज दर्शन निज में पा ले,
गुण गा ले, प्रभु गुण गा ले, चेतन प्रभु के।
सारा दुख मिट जायेगा, भव बन्धन कट जायेगा।। टेक।।
हिल-मिल कर जिनमंदिर आए आज,दर्शन पावें धन्य घड़ी धन्य भाग्य।
आनंद अपार प्रभु जय-जयकार,हम बार-बार करें नमस्कार।।
जो जिनवाणी सुन पायेगा, वह भेद-विज्ञान जगायेगा।। 1।।
देव-शास्त्र-गुरु का सच्चा श्रद्धान,फिर तत्त्वों का पाओ सम्यग्ज्ञान।
पुनि कर विचार निज को निहार,मिथ्यात्व टार, सम्यक्त्व धार।।
जो यों पुरुषार्थ जगाएगा, वह शिव मारग लग जायेगा।। 2।
अखिल विश्व में आतम तत्त्व महान,जिससे प्रगटे वीतराग-विज्ञान।
ये त्रलोक्यसार, आनंदकार,सब दु:खहार, हो नमस्कार।।
जो निज में ही रम जायेगा, वह स्वयं सिद्धपद पायेगा।। 3।।

(520)

कालिमा मत पोत रे, कालिमा मत पोत रे।
स्वच्छता के नाम पर तू, कालिमा मत पोत रे।। टेक।।
करके भेदविज्ञान रे, निज भवन पहिचान रे।
कर धर्म उद्योत रे, कालिमा मत पोत रे।। 1।।
परिग्रह में गहरा धँसा है, मोह वश तू क्यों फँसा है।
बीज दुःख के बोत रे, कालिमा मत पोत रे।। 2।।
मूढ़ हो निज सुख न जाने, अनुकूलता में हर्ष माने।
प्रतिकूलता में रोत रे, कालिमा मत पोत रे।। 3।।
स्वानुभवमय धर्म को पा, ज्ञानमय निर्भारता ला।
फैंक कर्त्तृत्व जोत रे, कालिमा मत पोत रे।। 4।।
रह सदा निश्चिंत चेतन, रह सहज निश्चिंत चेतन।
होनहार सु होत रे, कालिमा मत पोत रे।। 5।।
हो परम निरपेक्ष ज्ञाता, जीव शाश्वत सुख पाता।
यही मन में धोंक रे, कालिमा मत पोत रे।। 6।।

(521)

जन्म सफल कर लो भवि प्राणी, अपना जन्म सफल कर लो।
जन्म-मरण से रहित अहो! शुद्धातम का अनुभव कर लो॥ टेक॥
छोड़ो रे! पर्याय मूढ़ता, द्रव्यदृष्टि अब प्रगटाओ।
आदि अंत से रहित परम प्रभु, निर्विकल्प होकर ध्याओ॥ 1॥
जिस सुख को चाहें सब प्राणी, वह तो सहज स्वभाव है।
भेदज्ञान कर थिर हो देखो, नित्य व्यक्त निज भाव है॥ 2॥
देखो-देखो अहो! जिनेश्वर, अपने में ही तृप्त हुए।
धन्य जितेन्द्रिय योगीश्वर भी, निज में ही संतुष्ट हुए॥ 3॥

दुर्विकल्प सब ही मिथ्या हैं, इनसे कार्य नहीं होता।
आकुलता बढ़ती ही जाती, व्यर्थ व्यथित बोझा ढोता॥ 4॥
समाधान हो सर्व ज्ञान से, मिथ्या कर्त्ता बुद्धि मिटे।
सम्यक् वस्तु स्वरूप दिखाता, भय शंका सब सहज नशे॥ 5॥
ज्ञान-ज्ञान में होय प्रतिष्ठित, ज्ञानानंद प्रगट होता।
निज स्वरूप को ध्याते-ध्याते, जिनवर जीव स्वयं होता ॥ 6॥
यही मार्ग है सच्चे सुख का, कर प्रमाण स्वीकार करो।
बढ़ो मुमुक्षु इसी मार्ग में, परम साध्य को प्राप्त करो॥ 7॥

(522)

आत्मन्! दुश्चिंतन नहीं करो, सम्यक् चिंतन ही सदा करो।
समाधान अंतर में होगा, अन्तर्मुख पुरुषार्थ करो॥ टेक॥
पर द्रव्यों का दोष नहीं है, दुर्विकल्प दुःखरूप तजो।
ज्ञानानंदमयी शुद्धातम, सहजपने स्वीकार करो॥ 1॥
मत भटकाओ अपने मन को, कहीं नहीं सुख प्राप्त करो।
झूठी पर की आशा त्यागो, सम्यक् तत्त्व विचार करो॥ 2॥
अपना सुख तो अपने में ही, प्रभुवर का विश्वास करो।
सच्ची भक्ति यही प्रभुवर की, अपने में ही तृप्त रहो॥ 3॥

(523)

(तर्जः अमृत से गगरी भरो...)

ज्ञानाभ्यास करो मुक्तिमार्ग मिले।
मिथ्या मोह तजो,संकट सब ही टलें ॥ टेक॥
आतम देखन-जानन हारा, शाश्वत गुण अनंत भंडारा।
प्रत्यक्ष अनुभव करो, सम्यक् भाव जगे॥ 1॥

भाओ नित वैराग्य-भावना, वीतरागता सहज साधना।
अरु पुरुषार्थ करो, समता भाव बढ़े ॥ 2 ॥
छोड़ों पर की मिथ्या आशा, देव-धर्म-गुरु का विश्वासा।
अन्तर माँहि जगे, जगत असार दिखे ॥ 3 ॥
पर का तो किंचित् नहीं दोष, व्यर्थ करे तू राग अरु रोष।
ज्ञाता भाव धरो, निज पद सहज मिले ॥ 4 ॥
गुरुवर का उपदेश सुहाना, आत्मन् अवसर चूक न जाना।
आतम ध्यान धरो, कर्म कलंक जले ॥ 5 ॥

(524)

(तर्ज : निरखी-निरखी मनहर मूरत...)

सहज स्वयं में तृप्त सदा ही,
पर द्रव्यों का करना क्या।। टेक।।
सोचो स्वानुभूति बिन जग में,
विषयों से सुख मिलना क्या।
भव-भव में दुख ही दुख पाये,
अब ही भव-भव रुलना क्या।। 1।।
सोचो शुद्धातम बिन तेरा,
बाह्य जगत में अपना क्या।
पर पदार्थ अपने नहिं होवें,
झूठी ममता करना क्या।। 2।।
झूठी आश संयोग एक दिन,
व्यर्थ आकुलित होना क्या।

दु:ख के कारण क्षणिक विकारों,
का भी पोषण करना क्या।। 3।।
आज सुनहरा अवसर पाया,
होय प्रमादी खोना क्या।
तत्त्वज्ञान हो आत्म रुचि हो,
फिर कर्मों से डरना क्या।। 4।।
हो निर्ग्रन्थ रमें निज में ही,
फिर संसार में रहना क्या।
शीघ्र सहज ही शिवपद पावे,
फेर जन्मना-मरना क्या।। 5।।

(525)

कर्त्ता तो नित मरता है, बस ज्ञाता शिव सुख पाता है।
कर्त्ता तो बोझा ढोता है, ज्ञाता निर्भार रहाता है॥ टेक॥
कर्त्ता तो नित कर्म बाँधता, ज्ञाता कर्म खिपाता है।
निज में तृप्त विरक्त बाह्य में सहज अकर्त्ता ज्ञाता है॥ 1॥
भेदज्ञान से शून्य है कर्त्ता, भव-भव में दु:ख पाता है।
आकुलतामय जीवन उसका, क्षण भी लहे न साता है॥ 2॥
हो विकल्प अनुसार कदाचित, अभिमानी हो जाता है।
जब इच्छा अनुसार न होवे, क्रोध माँहि झुलसाता है॥ 3॥
करो तत्त्वाभ्यास, नशे कर्त्तृत्व महा दु:खदाता है।
स्वयं सदा क्रमबद्ध परिणमन, सहज समझ में आता है॥ 4॥
अन्तर्मुख पुरुषार्थ ढले, आतम अनुभव हो जाता है।
मोह महातम नशे तभी, ज्ञाता साक्षात् कहाता है॥ 5॥

ज्ञाता अन्तर्दृष्टि के बल से सहज विरक्ति पाता है।
ज्ञेयों से निरपेक्ष ज्ञान-आनन्दमय जीवन होता है॥ 6॥
वीतरागता बढ़ती जाती, निर्ग्रन्थ पद प्रगटाता है।
विषय-वासना शून्य हृदय से, निश्चल ध्यान लगाता है॥ 7॥
नशे कर्म बंधन दुःखदायी, परमातम पद पाता है।
अहो! परम निर्दोष मुक्त, ज्ञाता ही सदा रहाता है॥ 8॥

11. विविध भक्ति

(526)

वह शक्ति हमें दो दया निधे, हम मोक्षमार्ग में लग जावें।
करि शुद्ध रत्नत्रय भेद त्याग, निज शुद्धातम में रमि जावें।। टेक।।
तज इष्टानिष्ट विकल्प सभी, समता रस निज में भरि लावें।
करि साम्यभाव स्वाभाविक परिणति, पाय उसी में रमि जावें।। 1।।
है गुण अनंतमय शुद्ध निजातम, शक्ति प्रगट कर दिखलावें।
फिर काल अनंता रहें उसी में, ज्ञाता-दृष्टा बन जावें।। 2।।
सब झलकें लोकालोक काल त्रय, परिणति निज में मिल जावे।
स्वाधीन निराकुल ज्ञान चन्द्रिका, आस्वादी हम बन जावें।। 3।।

(527)

बाहर से मीचो आँख रे।। टेक।।

कोई आवे, कोई जावे, उदय रंग नाना दिखलावे।
पर्यायें बदलें क्षण-क्षण में, तू उनमें नहिं राच रे।। 1।।
बहिर्दृष्टि ही है संसारा, प्रतिपल दुःख का जहाँ पसारा।
तब ही पावे भव से पारा, जब निज अंतर झाँक रे।। 2।।

कर्मादिक तो बहुत दूर हैं, पर्यायों का चले पूर है।
दृष्टि हटा ले उनसे भी, नहिं तुझको किंचित् आँच रे।। 3।।
तेरा वैभव बाहर नाँहि, ज्ञान सुख निज अंतर माँहि।
निज में तृप्ति अविचल पाओ, करो प्रतीति साँच रे।। 4।।
जब ही आतम अनुभव आवे, प्रभुतामय निज में रम जावे।
होय विकास पूर्ण परिणति में, बने लोक का नाथ रे।। 5।।

(528)

मेरे लागी है लगन, छूटत नाँहि, छूटत नाँहि।। टेक।।
मेरे मन में ऐसी आवे, जिनवाणी अभ्यास करावे।
सप्त तत्त्व का निर्णय होवे, सम्यग्दर्शन सूर्य उगावे।। 1।।
मेरो मन जिन भक्ति रचावे, जिन में भी निज दर्शन पावे।
जिन जैसा फिर निज को ध्यावे, साहब सेवक भेद मिटावे।।2।।
मुनिदीक्षा को हिय हुलसावे, धन्य दशा वह अब प्रगटावे।
रागादि रहित निज में रम जाऊँ, परमातम खुद ही बन जाऊँ।।3।।
सहज अयोग दशा रह जावे, क्षण भर में शिवपुर पधरावे।
लौट के फिर नहीं भव में आवे, सुखमय काल अनंत रहावे।।4।।

(529)

जागृति गीत

जागो-जागो रे जागो रे जागो आज,
उमर यूँ ही बीत रही।। टेक।।
हित करने का ये समय, विषयों माँहि गँवाया।
मूरखता ये ना कर, फिर पीछे पछताय।। 1।।

धन परिकर परिवार ये, कछु न आवे काम।
तन भी माटी में मिले, चेतो आतम राम।। 2।।
पुण्य भाव भी जो करे, आत्म ज्ञान बिन जीव।
पावे सुख किंचित् नहीं, भव में रुले सदीव।। 3।।
जिनवर का उपदेश सुन, पहिचानो निज भाव।
मोह नाश शिवपद लहो, अन्य न कोई उपाय।। 4।।

(530)

करलो-करलो सम्यक् ज्ञान,जीवन थोड़ा रहा।। टेक।।
सब प्रकार अवसर है आया,तत्त्वोपदेश सहज है पाया।
करलो-करलो स्व-पर विज्ञान।। जीवन.।। 1।।
निर्णय कर आगम युक्ति से, करो प्रमाण सु स्वानुभूति से।
अनुभूति स्वरूप भगवान।। जीवन.।। 2।।
आत्मज्ञान बिन पायी व्यथा,जिनवाणी से सुन लो कथा।
छोड़ो-छोड़ो प्रमाद दुख खान।। जीवन.।। 3।।
अखिल विश्व में है आदेय,शुद्ध चिद्रूप अन्य सब हेय।
पाओ स्वाश्रय से सुख महान।। जीवन.।। 4।।
तज प्रपंच होओ निर्ग्रन्थ,साक्षात् मुक्ति का पंथ।
धारो-धारो सु अविचल ध्यान।। जीवन.।। 5।।
आत्मध्यान धरि कर्म नशाओ,दुखमय आवागमन मिटाओ।
पाओ-पाओ स्व-पद निर्वाण।। जीवन.।। 6।।

(531)

भविजन! बिन विवेक मत खोओ।
मुमुक्षु! सद् विवेक उर लाओ।। टेक।।
साँचे देव-शास्त्र-गुरुवर प्रति, परम प्रतीति जगाओ।
तत्त्वाभ्यास अरु भेदज्ञान करि, स्वानुभूति प्रगटाओ।। 1।।
व्यसन पाप अन्याय अनीति, अभक्ष्य चित्त नहीं लाओ।
आतम हित का उत्तम उवसर, विषयों में न गँवाओ।। 2।।
इष्ट मानकर नहिं ललचाओ, दुख में ना घबराओ।
परम अतीन्द्रिय अनुभव अमृत, पान करो सुख पाओ।। 3।।
रागादिक विभाव नाशन कौं, आत्म-भावना भाओ।
ध्येय रूप ज्ञायक में थिर हो, अविनाशी पद पाओ।। 4।।

(532)

माला समझ बूझ कर फेर, जासों मन तेरो फिर जाय।
मन तेरो फिर जाय, तोकूँ निज की महिमा आय।। टेक।।
शुद्ध-बुद्ध चैतन्यमय, शुद्धातम गुण खान।
जाके आश्रय से बने, अहो! सिद्ध भगवान।। 1।।
आतम दर्शन से बने, सम्यग्दृष्टि महान।
अनुभव ज्ञान सु लीनता, चारित्र महिमावान।। 2।।
शुद्धातम अनुभव किये, आनंद अपरम्पार।
जाननहार सुतृप्त हो, उछले वीर्य अपार।। 3।।
सारभूत शुद्धात्मा, केवल जाननहार।
नित्य निरंजन देव है, समयसार अविकार।। 4।।

समयसार को नमन है, निर्विकल्प सुखकार।
द्वैत विकल्प सु मिट गयो, सहज दशा अविकार।। 5।।

(533)

(तर्ज : रे मन मुसाफिर ...)

देखो रे मेला, झूठा ये मेला।
आया अकेला तू, जाये अकेला।। टेक।।
चिर से पिये है महा-मोह डाला।
पापों से परिणति को, करता है काला।।
चहुँगति भटकता, असह्य दुःख सहता।
जाना नहीं किन्तु पर का झमेला।। 1।।
सौभाग्य से श्रेष्ठ जिनधर्म पाया।
विस्मय है विषयों में अवसर गँवाया।।
समय रहते चेतो! स्वयं को पिछानो।
विनशेगा क्षण में, निमित्तों का खेला।। 2।।
जिससे रहा आज तक तू विमुख है।
संकेत प्रभुवर का ध्रुव की तरफ है।।
सर्वथा बंद करके ये पर्याय चक्षु।
अहो शुद्ध ज्ञायक के अनुभव की बेला।।3।।

(534)

प्रभु नाम का सुमरन कर ले, पाया अवसर सुखदानी।
फिर मानुष कुल मिलन कठिन है, ये निश्चय जानो ज्ञानी।।
ना जाने जमराज कौन दिन, हरे प्राण रे अज्ञानी।। टेक।।
या से धरम करो तन-मन से, जो संग जावे सुखदानी।

हाथों से दान चतुर्विध दीजे, कानन सुनो जिनवानी।।1।।
आँखों से लख लो परमातम, मुख से कहो वीर वानी।
चखो जीभ से ज्ञानामृत को, सब शरीर तप में सानी।।2।।
ये ही तेरे संग में जाकर, वरि है सुख मुक्ति–रानी।
मात–पिता तिया सुत भाई, स्वारथ के सब जग–प्रानी।।3।।

(535)

शुद्ध वस्त्र तन पर धारण कर,
जिनमंदिर की और चला।
प्रभु प्रक्षाल किया घिस–घिस कर,
पर निज मन नहीं चमक सका।। टेक।।
मंगल पाठ पढ़ लिए सस्वर,
पर निज मन का भाव न जागा।
चरणोदक ले लिया किन्तु नहीं,
प्रभु चरणों में चित अनुरागा।। 1।।
अष्ट द्रव्य का थाल सजाना,
कोई मुश्किल काम नहीं है।
घिस चंदन का तिलक लगाना,
कष्ट साध्य का काम नहीं है।। 2।।
पुष्पाजंलि छेप कर देना,
भाव भक्ति पहिचान नहीं है।
करतल बजा उच्च स्वर गाना,
भी प्रभु का गुणगान नहीं है।। 3।।

शान्ति पाठ पढ़ लिया किन्तु,
मन में शान्ति अप्राप्त रही।
पाठ विसर्जन किया किन्तु,
नहीं भाव निर्जरा प्राप्त हुई।। 4।।
सामायिक कर चुके किन्तु नहिं,
हुआ समय का किंचित् भान।
बहुत किया स्वाध्याय किन्तु,
फिर भी न हुआ कुछ आतम भान।। 5।।
बिन अन्तर की ओर निहारे,
ऊपर मन से ध्यान वृथा है।
अगर भक्ति कुछ नहीं हृदय में,
तो पूजन और ध्यान वृथा है।। 6।।
षट् रस भोजन त्याग कर दिये,
त्याग दिये चऊविध आहार।
किन्तु लालसा मिटी न मन की,
तो उपवास हुआ बेकार।। 7।।
चार संघ को दान दे दिये,
खर्चे लाख कोटि दीनार।
किन्तु मान-यश रहा मूल में,
तो सब दान हुआ बेकार।। 8।।
बिना ज्ञान और बिना भाव के,
किया हुआ श्रम दान वृथा है।
बिना विनय और बिना भाव के,
किया हुआ सम्मान वृथा है।।9।।

(536)

घर-घर मंगल दीप जलावो, घर-घर तोरण वंदनवार सजावो।
ये तो आया रे अवसर आनन्द का।।
मंगल साथिया बनावो, मंगल गीत सब गावो।
ये तो आया रे अवसर आनन्द का।। टेक।।
आज परम आगम मिला, भव दुख मेटनहार।
ध्रुव निज शुद्धातम अहो! जाना शिव भरतार।।
आतम अनुभव आज जगाओ, सम्यक् दर्शन भवि प्रगटाओ।
ये तो आया रे अवसर आनन्द का।। 1।।
जगे परम पुरुषार्थ अब, सर्व विकल्प मिटाय।
निज से निज में सहज ही, स्थिरता प्रगटाय।।
झूठी चिंता दूर भगाओ, निज में परमानन्द सु पाओ।
ये तो आया रे अवसर आनन्द का।। 2।।
सोच तजो भूतकाल का, मत भविष्य को देख।
जो त्रिकाल मंगलमयी, ध्रुव ज्ञायक प्रभु देख।।
पर्याय दृष्टि दूर भगाओ, अब तो द्रव्यदृष्टि प्रगटाओ।
ये तो आया रे अवसर आनन्द का।। 3।।

(537)

तुम मान अनिष्ट न क्रोध करो, परिणमन वस्तु का सहजहिं हो॥ टेक॥
जो कर्म किए पूरब खोटे, वे सहज उदय में आए हैं।
हैं मात्र ज्ञान के ज्ञेय अहो, तुम सावधान प्रति समय रहो॥ 1॥
कर्मों का कोई दोष नहीं, वे अरे अचेतन निर्विकार।
नो कर्म स्वयं से न्यारे हैं, स्वाश्रय से ज्ञाता सहज रहो॥ 2॥
कल्पना अरे मिथ्या तेरी, पर द्रव्य न कुछ भी करता है।
यदि तत्त्वदृष्टि से देखो तो, आनन्दित निज में सहज रहो॥ 3॥

नहिं कर्म बन्ध होवे नवीन, अरु वर्तमान में समता हो।
इसमें ही हित सबका आत्मन्! अरु पूरब कर्म निर्जरित हो॥ 4॥
जो परम पुरुष हो चुके सभी, अरु आज जगत में विद्यमान।
है उन सबका आदर्श यही निज स्वभाव मंगलमय हो॥ 5॥

(538)

त्यागो लोभ महा दुखकार, पाओ लाभ महा अविकार ॥ टेक॥
जड़ विषयों के लोभी होकर, पायो क्लेश अपार।
अब तो अपना विषय पिछानो, सहजहिं जाननहार॥ 1॥
रे! चैतन्य प्राणमय जीवन, नहिं जानो सुखकार।
पर जीवन का मोही होकर, भ्रमत फिरो संसार ॥ 2॥
ज्ञायक को ही ज्ञेय न जाना, तीन भुवन में सार।
ज्ञेय लुब्ध होकर रे मूरख, पाया सुख न लगार॥ 3॥
पुण्योदय में सुख मानकर, उलझा रहा गँवार।
दिन-दूनी तृष्णा ही बढ़ती, सब संसार असार॥ 4॥
महाभाग्य से अवसर आया, ध्याओ निज पद सार।
अपने में ही तुष्ट तृप्त हो, होओ भव से पार ॥ 5॥

(539)

देख दूसरों के वैभव अरु, भोग कभी नहीं ललचाऊँ।
जग की झूठी सुख-सुविधाओं में, नहिं मन को मैं भरमाऊँ ॥ टेक॥
ख्याति-लाभ जग के मिथ्या पद, अहो! जिनेश्वर नहीं चाहूँ।
किंचित् शुभ परिणामों के फल से, स्वर्गादिक नहीं भाऊँ॥ 1॥
हे जिन स्वामी यही भावना, अब सम्यक् श्रद्धान लहूँ।
सम्यक् ज्ञानाभ्यास करूँ नित, विषय चाह में नहीं रहूँ॥ 2॥

भेदज्ञान को भाते-भाते, मैं वैराग्य बढ़ा पाऊँ।
धारूँ साधु दशा अविकारी, निज स्वभाव में रम जाऊँ॥ 3॥
विनशें राग-द्वेष दुःखकारी, ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ।
होवे प्रगट स्वयं की प्रभुता, ध्रुव परमातम पद पाऊँ॥ 4॥
अहो! परम आदर्श महेश्वर, अशरीरी अविकारी हो।
भाव वंदना ज्ञानमयी नित ही, चैतन्य विहारी हो॥ 5॥

(540)

प्रभु भक्ति आनंदमय, गुरु भक्ति आनंदमय॥ टेक॥
जिनवाणी आनंदमय, जिनशासन आनंदमय।
प्रभुवर हैं आनंदमय, गुरुवर हैं आनंदमय॥ 1॥
शुद्धातम आनंदमय, अध्यातम आनंदमय।
श्रद्धान है आनंदमय, अनुभव है आनंदमय॥ 2॥
आचरण है आनंदमय, रत्नत्रय है आनंदमय।
शिवपथ है आनंदमय, शिवरूप है आनंदमय॥ 3॥
साधक हैं आनंदमय, सिद्ध प्रभु हैं आनंदमय।
आदीश्वर आनंदमय, महावीर हैं आनंदमय॥ 4॥
स्वरूप आनंदमय, अनुभूति आनंदमय।
जीवन हो आनंदमय, चर्या हो आनंदमय॥ 5॥

(541)

रत्नत्रय ही शिव स्वरूप शिव का साधन।
शाश्वत सुख स्वरूप शुद्धातम आराधन॥ 1॥

सुख-दुःख का पर से, कुछ भी सम्बन्ध नहीं।
बंध काल में भी शुद्धनय से बन्ध नहीं॥ 2॥
स्वयं स्वयं को जाने बिन हैरान हुआ।
जिसने समझा, ध्याया वह भगवान हुआ॥ 3॥
अज्ञानी तो पर को देता दोष सही।
ज्ञानी अपना दोष लखे परमार्थ यही॥ 4॥
दोष छोड़ने का ही वह उद्यम करता।
परमातम निर्दोष हुए उनको भजता॥ 5॥
गुरुओं की संगति में ज्ञानाभ्यास करें।
भेदज्ञान कर ध्रुव स्वभाव निर्दोष भजें॥ 6॥

(542)

संबोधन!

बहुत घूमे जगत में हम, न सुख किंचित् भी पाया है।
जहाँ की सुख की आशा, वहाँ भी दुःख ही पाया है।। 1।।
कभी फिर भी विचारा ना, कहाँ गलती हमारी है।
हो गये मग्न दुःख में ही, दुःख की ही तैयारी है।। 2।।
भूल वह शास्त्र बतलाते, कि जिससे दुःख उठाया है।
हमारी मान्यता उल्टी ने, दर-दर पै फिराया है।। 3।।
हलाहल विष को पीते हैं, चाहते अमर होना है।
परन्तु विष को पीने से, मात्र वश प्राण खोना है।। 4।।
ठीक यह हाल हमारा, पुण्य में धर्म माना है।
जीव अस्तित्व को भूले, देह ही जीव माना है।। 5।।
देह की क्रिया स्व मानी, किया नहिं भेद-विज्ञाना।
भूल तत्त्वार्थ को बैठे, धर्म का मर्म नहिं जाना।। 6।।

पुण्य अरु पाप दोनों ही, एक आश्रव के बेटे हैं।
दोनों ही बंध के कारण, मोक्ष से दूर करते हैं।। 7।।
आत्म-अवलम्ब लेने से, कर्म रुकते व झड़ते हैं।
शुद्ध भावों से मुक्ति हो, दुःख सब दूर होते हैं।। 8।।
परन्तु उल्टा माना है, पुण्य से मोक्ष होता है।
पुण्य ही धर्म है निश्चय, न आगे कुछ भी होता है।। 9।।
विचारो शान्त चित होकर, जो बेड़ी बन्ध का कारण।
उसे मजबूत करने से, हो कैसे भव का निवारण।। 10।।
अरे चेतन! कहाँ भटके, तत्त्व अभ्यास चित लाओ।
सत्य तत्त्वार्थ की श्रद्धा, विरागी भाव जगाओ।। 11।।
बीज जब आम का बोओ, तभी तो आम पाओगे।
वृक्ष बबूल लगाकर, व्यर्थ काँटे चुभाओगे।। 12।।
अगर सुख चाहते हो, तुम व्यर्थ मत काल गँवाओ।
छोड़कर मान्यता उल्टी, मुमुक्षु पंक्ति में आओ।। 13।।
पंक्ति में लगने से 'आत्मन्' अवश्य ही बारी आवेगी।
अन्यथा रत्न सम दुर्लभ, मनुष्य पर्याय जायेगी।।14।।
पुनः मिलना भी दुर्लभ है, अतः चेतो अरे चेतो।
करो अब भेद-विज्ञान, स्व-पर को भिन्न तुम देखो।। 15।।
एक ही मार्ग है सुख का, मूल भी सम्यक् दर्शन है।
बिना इसके हुए आत्मन्, व्यर्थ ये सर्व जप-तप हैं।। 16।।
यही वाणी प्रभु की है, इसी पर श्रद्धा तुम लाओ।
तोड़कर सर्व विकल्प, सिद्धपद अपना तुम पाओ।। 17।।

नोट :-

नोट :-

रजि. -2/09-10/B-113(1)

श्री वर्द्धमान न्यास (पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)

अमायन, जिला - भिण्ड(म.प्र.)-४७७२२७

(रजि. AAJTS769D/03/15-16/T-268/80G आयकर अधिनियम १९७१ की धारा 80-G के अन्तर्गत छूट की पात्रता है)

द्वारा संचालित गतिविधियाँ -

१. श्री वर्द्धमान दि. जैन विद्यार्थी गृह

२. श्री वर्द्धमान दि. जैन कन्या विद्यार्थी गृह

३. वर्द्धमान औषधालय

४. वर्द्धमान पुस्तकालय

५. सत्-साहित्य प्रकाशन

६. मेधावी/निर्धन छात्र एवं छात्राओं को छात्रवृत्ति

७. श्री वर्द्धमान प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान
(आयुर्वेदिक एवं एक्यूप्रेशर)

(NDDY चिकित्सक एवं सहायक चिकित्सक - डिप्लोमा कोर्स)

श्री वर्द्धमान न्यास, अमायन (भिण्ड, म.प्र.)
द्वारा प्रकाशित, उपलब्ध सत्साहित्य-

(श्री ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्' विरचित)

क्र.	नाम	न्योछावर राशि
1.	अमृत वचन	50/-
2.	स्वानुभव पत्रावलि	50/-
3.	जीवन पथ दर्शन	30/-
4.	जीवन पथ दर्शन (संक्षिप्त)	20/-
5.	लघु बोध कथाएँ	30/-
6.	जिनवर स्तवन	30/-
7.	स्वरूप-स्मरण	40/-
8.	जिन-भक्ति सिंधु	50/-
9.	रत्नत्रय विधान	10/-
10.	चौंसठ ऋद्धि विधान	10/-
11.	रत्नत्रय-चौंसठ ऋद्धि विधान	10/-
12.	नीति वचन	20/-
13.	उन्नति	30/-
14.	प्रेरणा	30/-
15.	बाल भावना	05/-
16.	वैराग्य पाठ संग्रह	30/-
17.	वैराग्य पाठ संग्रह (सजिल्द)	40/-
	(श्रीमती रूपवती 'किरण' विरचित)	
16.	अनुबंध	20/-
17.	पावन मन	15/-
18.	जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य	30/-
19.	बसंततिलका	25/-
	(श्री भगवत् जैन विरचित)	
20.	पूर्णिमा	22/-

विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से सत्साहित्य आप घर-घर पहुँचाकर नैतिकता के प्रसार में अपना योगदान दें।

सम्पर्क : प्रवीण भैया, अमायन, मोबा. 9926316216